CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ज्ञानलोक

नई पीढ़ी का ज्ञानकोश

१

आकाश के कौतुक

: ज्योतिष-विज्ञान : ग्रह-नक्षत्रों की कहानी :

: लेखक :

कृष्ण वल्लभ द्विवेदी

4640

State Museum Library Lucknow

प्रकाशन-गृह

ज्ञानवर्द्धक साहित्य के प्रकाशक

◆ पानदरीबा,
◆ ल ख न ऊ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकाशकीय वक्तव्य

नए भारत के उदय के साथ हमारे ऊपर अनेक नवीन उत्तर-दायित्वों का भार आ गया है ! इनमें से एक है—देश के भावी नागरिकों का स्थान ग्रहण करनेवाली नई पीढ़ी की उचित शिक्षा-दीक्षा का !

उक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्कूलों में पढ़ाई जानेवाली पाठ्य-पुस्तकों के साथ-साथ ज्ञान-विज्ञान की सामान्य जानकारी करानेवाली अन्य सहायक पुस्तक-पुस्तिकाओं की कितनी अधिक आवश्यकता है, यह बताने की जरूरत नहीं है ।

आज यह निर्विवाद स्वीकार किया जा रहा है कि केवल भाषा, गणित या इतिहास-भूगोल की टकसाली जानकारी कराकर ही शिक्षा की लक्ष्य-पूर्ति नहीं की जा सकती ।

आज का युग 'विज्ञान-युग' है ! 'विज्ञान' ही इस युग का मेरुदण्ड है । आज आदमी रेडियो-टेलिविजन, जेट-वायुयान और रॉकेट-भूउपग्रह आदि चमत्कारों के द्वारा तो पृथ्वी को मानो एक तिलिस्म बना ही रहा है, साथ ही परमाणु-शक्ति की कुंजी पाकर, आज वह अन्य लोकों की सैर करने के लिए अंतरिक्ष में छलाँग मारने को भी तैयार खड़ा है !

अतः आज की शिक्षा की पुकार है—नई पीढ़ी को ज्ञान-विज्ञान से सुसज्जित कर वैज्ञानिक दृष्टि से अभिभूत कर देना !

यही है 'ज्ञानलोक' के आविर्भाव की पृष्ठभूमि और यही इस प्रकाशन का बीड़ा उठाने के लिए सन्नद्ध करनेवाली मुख्य प्रेरणा है !

हिन्दी के प्रकाशन-क्षेत्र में ज्ञानवर्द्धक साहित्य का नवीन कीर्तिमान स्थापित करनेवाली इस ग्रंथमाला की विशेषता यह है कि इसका प्रत्येक भाग अपने विषय की एक स्वतंत्र और परिपूर्ण पुस्तक है । ये पुस्तकें अपने-अपने विषयों के शुष्क टकसाली संकलन जैसी नहीं, वरन् पाठकों की मानसिक पृष्ठभूमि के अनुरूप विशेष रूप से लिखी गई ज्ञान-विज्ञान के विविध अंगों की रोचक कहानियाँ हैं !

संशोधित नवीन संस्करण

१९६८ ई०

: सर्वाधिकार स्वरक्षित :

मूल्य

प्रति भाग दस रुपए

मुद्रक नव ज्योति प्रेस, लखनऊ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ज्ञा
न
लो
क

क्या और क्यों ?

उगती हुई पीढ़ी के पाठको ! ०००

'ज्ञानलोक' के नाम से तुम्हें भेंट की जा रही यह सचित्र पुस्तकमाला आसमान, धरती, पेड़-पौधे, जीव-जन्तु और मनुष्य की अचरज से भरी उस दुनिया का एक मनोरंजक चित्रपट है, जिसके रहस्यभरे परदे के उस ओर ताकने-झाँकने को शायद तुम्हारा जी हर घड़ी ललका करता होगा । भला, तुममें से क़ौन होगा, जोकि उस दुनिया की सैर करना पसन्द न करेगा ? किसका मन उसकी रंग-बिरंगी झाँकियाँ देखने को एकबारगी ही न उमग पड़ेगा ? शायद तुम्हें खेल-तमाशा देखना सबसे ज्यादा पसंद है ! भला, इससे अधिक रोचक और बढ़िया खेल-तमाशा दूसरा क्या होगा, जिसे कि प्रकृति ने चारों ओर रच रक्खा है ?

तो फिर आओ, इस चित्रपट के द्वारा प्रकृति की उस अनूठी दुनिया की ओर तुम्हें ले चलें ! और, सबसे पहले तुम्हें दिखाएँ उस अद्‌भुत आकाश के कौतुकों की एक झलक, जोकि अपने अनंत पसार में अनगिनत लट्टुओं की तरह सूरज, चाँद, पृथ्वी, ग्रह, नक्षत्र, नीहारिकाओं आदि को लगातार नचाता हुआ न जाने कब से कौन-सा खेल किसके लिए रचाए हुए है !

तब दिखाएँ उस हरी-भरी प्यारभरी धरती माता के अनोखे रूप की भी कुछ झाँकियाँ, जिसकी कि गोद में पलकर हम सब अपने जीवन का खेल खेलते, हँसते-रोते, लड़ते-झगड़ते और भाँति-भाँति के खेल-खिलौनों की रचना करते हुए आसमान में सूर्य के आसपास लगातार चक्कर लगा रहे हैं !

और, इसी तरह बारी-बारी से देखें पेड़-पौधों, जीव-जंतुओं और मनुष्य की उस चहलपहल से भरी अनोखी दुनिया को भी, जिसकी कि बदौलत यह धरती इतनी रंगीन और सजीव है और मनुष्य होने के नाते जिससे हमारा इतना ज्यादा लगाव है !

यह सब तुम्हारे लिए बड़ा आवश्यक कर्त्तव्य है—केवल इसीलिए नहीं कि इससे तुम्हारा जी बहले, बल्कि इसलिए भी कि तुम्हारे ज्ञान का भंडार भरता चला जाय और सच्चे अर्थ में तुम इस 'धरती के लाल' बन सको !

यह है तुम्हारे लिए अँधेरे से उजाले की ओर बढ़ने का पहला पाठ—इस दुनिया के बाहरी रूप की झाँकी पाकर, अंत में उसके भीतर रहस्य की खोज करने और उसी प्रयत्न में अपने आपको भी पहचानने की पहली तैयारी ! ०००

कृष्ण वल्लभ द्विवेदी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय-सूची

अचरजभरा आकाश :

अँधेरे-उजाले की लुकाछिपी का अनोखा खेल—रोशनी और आग का तमतमाता गोला—आसमान की अनूठी दिवाली—मनुष्य ज्योतिषी बना—पंचांगों या तिथिपत्रों का जन्म—प्राचीन भारत की ज्योतिष-संबंधी साधना—बाबुल, मिस्र, चीन और यूनान की देन—ज्योतिष का नया मोड़ : कापर्निकस और गैलीलियो—आज के विज्ञान के आँगन में—आकाश के कौतुकों का पारावार कहाँ—सच तो यह है कि इतना सब जानकर भी हम अभी अँधेरे में ही हैं।

(पृ० ७–१६)

ज्योतिषी की आँखें :

दूरदर्शक का जन्म—गैलीलियो ने क्या देखा—दूरदर्शक का सिद्धान्त—सबसे बड़े लेंसवाले दूरदर्शक—यर्किज-वेधशाला का १०२ सेंटीमीटर व्यास का महान् यंत्र—दर्पणवाले दूरदर्शक—माउण्ट विल्सन का महान् यंत्रराज—साढ़े चार हजार किलोग्राम वजनी आईना—इसकी गगनभेदी दृष्टि का रहस्य क्या है—दूरदर्शकों का राजा : माउण्ट पालोमर का यंत्र-सम्राट्—१६,००० किलोग्राम वजनी काँच की शिला—यंत्र-जाल का अद्भुत जमघट—रेडियो-दूरदर्शक—ज्योतिषियों के अन्य महत्वपूर्ण यंत्र—संसार की प्रमुख वेधशालाएँ।

(पृ० १७–३४)

सूर्य और उसका परिवार :

हमारे जीवन का सबसे बड़ा सहारा—सूर्य भी एक नक्षत्र या तारा है—लाखों किलोमीटर लंबी लपटें लपलपानेवाली प्रचंड भट्टी—चौदह करोड़ पच्चानवे लाख किलोमीटर की दूरी का अर्थ क्या है—तेरह लाख पृथ्वियों के बराबर गोला—सूर्य की बाहरी-भीतरी बनावट—सूर्य के आसपास भी वायुमंडल है—सूर्य-कलंक—सूर्य-ग्रहण—पूर्ण ग्रहण की अद्भुत छवि—सूर्य कितनी शक्ति उपजाता है—इस तरह निरन्तर जलते रहने पर भी सूर्य राख क्यों नहीं हो जाता—सौर परिवार : ग्रह और उपग्रह—ग्रहों की दूरी और आकार का तुलनात्मक मान।

(पृ० ३५–५०)

आकाश में पृथ्वी :

पृथ्वी भी एक ग्रह है—पृथ्वी के आकार-प्रकार संबंधी कुछ रोचक आँकड़े—पृथ्वी की गतिविधि—पृथ्वी पर सूर्य का प्रभाव।

(पृ० ५१–५४)

हमारा निकट पड़ोसी – चन्द्रमा :

धरती के साथ चाँद का गहरा नाता—चन्द्रलोक की वास्तविक छवि : पहाड़, खाई-खंदक और ज्वालामुख—दूर से लुभावना देख पड़ने पर भी चन्द्रलोक निरा प्रेतलोक-सा डरावना है—आज चन्द्रमा के बारे में हम क्या जानते हैं—गगनचुंबी पर्वत और सैकड़ों किलोमीटर लंबी दरारें—ज्वालामुख : क्या और क्यों—चन्द्रमा की कलाएँ—चन्द्र-ग्रहण—चन्द्रमा के बारे में अन्य रोचक बातें।

(पृ० ५५–६४)

पृथ्वी के भाई-बन्धु–(१) बुध, शुक्र, मंगल और अवान्तर ग्रह :

कुलपति सूर्य की सबसे निकटवर्ती संतान : बुध—दूरी, गति, आकार, चमक आदि—चन्द्रलोक से भी अधिक डरावनी झाँकी—सबसे अधिक चमकीला ग्रह : शुक्र—वायुमंडल का लिहाफ—आकार-प्रकार, दूरी, गति आदि—रहस्यपूर्ण ग्रह मंगल—दूरदर्शक से मंगल की अनूठी झाँकी—क्या मंगल पर कृत्रिम नहरें हैं—सौर परिवार के सदस्यों का एक अनोखा समूह : अवान्तर ग्रह।

(पृ० ६५–७४)

पृथ्वी के भाई-बन्धु–(२) बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेपच्यून, प्लूटो :

ग्रहों का सरदार : बृहस्पति—रहस्यपूर्ण विशाल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लाल धब्बा और समानान्तर पट्टियाँ—बृहस्पति की रचना और अन्य बातें—ग्रहों के सरदार के ग्यारह उपग्रह—सबसे सुन्दर ग्रह : शनि—शनि का अद्‌भुत छल्ला : क्या और क्यों—ये वलय दरअसल क्या हैं—शनि के दस चन्द्रमा हैं—यूरेनस और नेपच्यून—सौर जगत् के सीमान्त का पहरेदार : प्लूटो।

(पृ० ७५–८४)

पुच्छल तारे और उल्काएँ :

पुच्छल तारों की चालढाल और कक्षाएँ—पुच्छल तारों की रचना किस प्रकार की है—कुछ मशहूर पुच्छल तारे—उल्काएँ : क्या और क्यों—हजारों मीट्रिक टन वजन के उल्कापिंड।

(पृ० ८५–९०)

सौर जगत से परे–नक्षत्रों की दुनिया :

मंदाकिनी—करोड़ों प्रकाश-वर्ष की दूरी तक फैले हुए कोटि-कोटि ज्योतिपुंज—तारा-समूह—राशि-चक्र—सभी तारे सूर्य हैं—'ध्रुवतारा' और 'सप्तर्षि' तारा-समूह—अन्य प्रसिद्ध तारा-समूहों एवं नक्षत्रों की पहचान—चमक के अनुसार तारों का वर्गीकरण—तारों की संख्या, दूरी, गरमी और वर्ण—तारों की बनावट—तारों का डीलडौल : दैत्य और बौने—दोहरे और बहुरूपिए तारे—नूतन तारे, जो एका-एक भभक उठते हैं—आकाशगंगा—तारापुंज—दस खरब प्रकाश-वर्षों तक की दूरी के रहस्यमय महानक्षत्र : 'क्वासार'।

(पृ० ९१–१०४)

नीहारिकाएँ :

अनियमित आकार की नीहारिकाएँ—नियमित आकृतिवाली नीहारिकाएँ—'एम–३३' : हमारी सबसे निकटवर्ती पड़ोसी नक्षत्र-संस्था—'देवयानी' क्षेत्र का महान् विश्व-द्वीप—नीहारिकाएँ : क्या और क्यों—सभी नीहारिकाएँ भीषण वेग से दूर भागती चली जा रही हैं।

(पृ० १०५–११०)

विश्व-ब्रह्माण्ड :

विश्व कितनी दूर तक पसरा हुआ है : वह 'अनंत' है या 'सान्त'—आइन्स्टाइन के सापेक्षता-सिद्धान्त द्वारा प्रस्तुत समाधान—सीमारहित होकर भी अपरिमित नहीं—सृष्टि-विज्ञान : ग्रह-नक्षत्र कैसे जनमे—सृष्टि की उत्पत्ति विषयक प्रमुख आधुनिक प्रस्थापनाएँ।

(पृ० १११–११४)

पृथ्वी से परे–अन्य लोकों की यात्रा :

पहला कदम : 'कृत्रिम भूउपग्रह'—अंतरिक्ष में मनुष्य के पैर जमे—चन्द्रमा पर रॉकेट उतरा—अंतरिक्ष में आदमी : इतिहास का एक नया मोड़—अमेरिकन उपलब्धियाँ—पहले चन्द्रमा, फिर शुक्र और मंगल भी।

(पृ० ११५–१२०)

शुद्धि-पत्र

छापते समय रह जानेवाली निम्न अशुद्धियों को कृपया सूचित पृष्ठों पर शुद्ध कर लें :

पृष्ठ	स्थल	अशुद्धि	शुद्ध रूप	पृष्ठ	स्थल	अशुद्धि	शुद्ध रूप
१३	ऊपरी टिप्पणी	युगप्रर्वतक	युगप्रवर्तक	४३	टिप्पणी	तीव्र ही उठती	तीव्र हो उठती
,,	,,	उलझी	उलझी	५८	पंक्ति ९	जैसे	जैसी
१८	पंक्ति २८	ओर	और	,,	पंक्ति १०	पड़ते	पड़ती
२१	पंक्ति ५	जा-	जा	,,	पंक्ति ३३	लुभावन	लुभावना
२६	टिप्पणी	जिसंम	जिसमें	६३	पंक्ति २८	२६।।	२७।।
२७	पंक्ति ३२	सैंकड	सैकंड	६६	पंक्ति ९	यह	यहाँ
२९	टिप्पणी	बड़ा	बढ़ा	६८	पंक्ति ३	एसी	ऐसी
३२	पंक्ति २६	कसा	कैसा	,,	पंक्ति ३३	से	में
३३	पंक्ति ३०	वर्ष	प्रकाश-वर्ष	७०	पंक्ति ३२	वह	वहाँ
४०	पंक्ति १३	किलीमीटर	किलोमीटर	,,	पंक्ति ३३	यह	यहाँ
,,	,,	पंद्रह	पंद्रह करोड़	७२	पंक्ति १	अतरक्त	अतिरिक्त
४३	टिप्पणी	उस	उस समय	८७	पंक्ति १	क	के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय-सूची

अचरजभरा आकाश :

अँधेरे-उजाले की लुकाछिपी का अनोखा खेल—रोशनी और आग का तमतमाता गोला—आसमान की अनूठी दिवाली—मनुष्य ज्योतिषी बना—पंचांगों या तिथिपत्रों का जन्म—प्राचीन भारत की ज्योतिष-संबंधी साधना—बाबुल, मिस्र, चीन और यूनान की देन—ज्योतिष का नया मोड़ : कापर्निकस और गैलीलियो—आज के विज्ञान के आँगन में—आकाश के कौतुकों का पारावार कहाँ—सच तो यह है कि इतना सब जानकर भी हम अभी अँधेरे में ही हैं।

(पृ० ७–१६)

ज्योतिषी की आँखें :

दूरदर्शक का जन्म—गैलीलियो ने क्या देखा—दूरदर्शक का सिद्धान्त—सबसे बड़े लेंसवाले दूरदर्शक—यर्किज-वेधशाला का १०२ सेंटीमीटर व्यास का महान् यंत्र—दर्पणवाले दूरदर्शक—माउण्ट विल्सन का महान् यंत्रराज—साढ़े चार हजार किलोग्राम वजनी आईना—इसकी गगनभेदी दृष्टि का रहस्य क्या है—दूरदर्शकों का राजा : माउण्ट पालोमर का यंत्र-सम्राट्—१६,००० किलोग्राम वजनी काँच की शिला—यंत्र-जाल का अद्भुत जमघट—रेडियो-दूरदर्शक—ज्योतिषियों के अन्य महत्वपूर्ण यंत्र—संसार की प्रमुख वेधशालाएँ।

(पृ० १७–३४)

सूर्य और उसका परिवार :

हमारे जीवन का सबसे बड़ा सहारा—सूर्य भी एक नक्षत्र या तारा है—लाखों किलोमीटर लंबी लपटें लपलपानेवाली प्रचंड भट्टी—चौदह करोड़ पच्चानवें लाख किलोमीटर की दूरी का अर्थ क्या है—तेरह लाख पृथ्वियों के बराबर गोला—सूर्य की बाहरी-भीतरी बनावट—सूर्य के आसपास भी वायुमंडल है—सूर्य-कलंक—सूर्य-ग्रहण—पूर्ण ग्रहण की अद्भुत छवि—सूर्य कितनी शक्ति उपजाता है—इस तरह निरन्तर जलते रहने पर भी सूर्य राख क्यों नहीं हो जाता—सौर परिवार : ग्रह और उपग्रह—ग्रहों की दूरी और आकार का तुलनात्मक मान।

(पृ० ३५–५०)

आकाश में पृथ्वी :

पृथ्वी भी एक ग्रह है—पृथ्वी के आकार-प्रकार संबंधी कुछ रोचक आँकड़े—पृथ्वी की गतिविधि—पृथ्वी पर सूर्य का प्रभाव।

(पृ० ५१–५४)

हमारा निकट पड़ोसी—चन्द्रमा :

धरती के साथ चाँद का गहरा नाता—चन्द्रलोक की वास्तविक छवि : पहाड़, खाई-खंदक और ज्वालामुख—दूर से लुभावना देख पड़ने पर भी चन्द्रलोक निरा प्रेतलोक-सा डरावना है—आज चन्द्रमा के बारे में हम क्या जानते हैं—गगनचुंबी पर्वत और सैंकड़ों किलोमीटर लंबी दरारें—ज्वालामुख : क्या और क्यों—चन्द्रमा की कलाएँ—चन्द्र-ग्रहण—चन्द्रमा के बारे में अन्य रोचक बातें।

(पृ० ५५–६४)

पृथ्वी के भाई-बन्धु—(१) बुध, शुक्र, मंगल और अवान्तर ग्रह :

कुलपति सूर्य की सबसे निकटवर्ती संतान : बुध—दूरी, गति, आकार, चमक आदि—चन्द्रलोक से भी अधिक डरावनी झाँकी—सबसे अधिक चमकीला ग्रह : शुक्र—वायुमंडल का लिहाफ—आकार-प्रकार, दूरी, गति आदि—रहस्यपूर्ण ग्रह मंगल—दूरदर्शक से मंगल की अनूठी झाँकी—क्या मंगल पर कृत्रिम नहरें हैं—सौर परिवार के सदस्यों का एक अनोखा समूह : अवान्तर ग्रह।

(पृ० ६५–७४)

पृथ्वी के भाई-बन्धु—(२) बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेपच्यून, प्लूटो :

ग्रहों का सरदार : बृहस्पति—रहस्यपूर्ण विशाल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लाल धब्बा और समानान्तर पट्टियाँ—बृहस्पति की रचना और अन्य बातें—ग्रहों के सरदार के ग्यारह उपग्रह—सबसे सुन्दर ग्रह : शनि—शनि का अद्भुत छल्ला : क्या और क्यों—ये वलय दरअसल क्या हैं—शनि के दस चन्द्रमा हैं—यूरेनस और नेपच्यून—सौर जगत् के सीमान्त का पहरेदार : प्लूटो।

(पृ० ७५–८४)

पुच्छल तारे और उल्काएँ :

पुच्छल तारों की चालढाल और कक्षाएँ—पुच्छल तारों की रचना किस प्रकार की है—कुछ मशहूर पुच्छल तारे—उल्काएँ : क्या और क्यों—हजारों मीट्रिक टन वजन के उल्कापिंड।

(पृ० ८५–९०)

सौर जगत से परे–नक्षत्रों की दुनिया :

मंदाकिनी—करोड़ों प्रकाश-वर्ष की दूरी तक फैले हुए कोटि-कोटि ज्योतिपुंज—तारा-समूह—राशि-चक्र—सभी तारे सूर्य हैं—'ध्रुवतारा' और 'सप्तर्षि' तारा-समूह—अन्य प्रसिद्ध तारा-समूहों एवं नक्षत्रों की पहचान—चमक के अनुसार तारों का वर्गीकरण—तारों की संख्या, दूरी, गरमी और वर्ण—तारों की बनावट—तारों का डीलडौल : दैत्य और बौने—दोहरे और बहुरूपिए तारे—नूतन तारे, जो एका-एक भभक उठते हैं—आकाशगंगा—तारापुंज—दस खरब प्रकाश-वर्षों तक की दूरी के रहस्यमय महानक्षत्र : 'क्वासार'।

(पृ० ९१–१०४)

नीहारिकाएँ :

अनियमित आकार की नीहारिकाएँ—नियमित आकृतिवाली नीहारिकाएँ—'एम–३३' : हमारी सबसे निकटवर्ती पड़ोसी नक्षत्र-संस्था—'देवयानी' क्षेत्र का महान् विश्व-द्वीप—नीहारिकाएँ : क्या और क्यों—सभी नीहारिकाएँ भीषण वेग से दूर भागती चली जा रही हैं।

(पृ० १०५–११०)

विश्व-ब्रह्माण्ड :

विश्व कितनी दूर तक पसरा हुआ है : वह 'अनंत' है या सान्त'—आइन्स्टाइन के सापेक्षता-सिद्धान्त द्वारा प्रस्तुत समाधान—सीमारहित होकर भी अपरिमित नहीं—सृष्टि-विज्ञान : ग्रह-नक्षत्र कैसे जनमे—सृष्टि की उत्पत्ति विषयक प्रमुख आधुनिक प्रस्थापनाएँ।

(पृ० १११–११४)

पृथ्वी से परे–अन्य लोकों की यात्रा :

पहला कदम : 'कृत्रिम भूउपग्रह'—अंतरिक्ष में मनुष्य के पैर जमे—चन्द्रमा पर रॉकेट उतरा—अंतरिक्ष में आदमी : इतिहास का एक नया मोड़—अमेरिकन उपलब्धियाँ—पहले चन्द्रमा, फिर शुक्र और मंगल भी।

(पृ० ११५–१२०)

शुद्धि-पत्र

छापते समय रह जानेवाली निम्न अशुद्धियों को कृपया सूचित पृष्ठों पर शुद्ध कर लें :

पृष्ठ	स्थल	अशुद्धि	शुद्ध रूप	पृष्ठ	स्थल	अशुद्धि	शुद्ध रूप
१३	ऊपरी टिप्पणी	युगप्रर्वतक	युगप्रवर्तक	४३	टिप्पणी	तीव्र ही उठती	तीव्र हो उठती
,,	,,	उलज्ञी	उलझी	५८	पंक्ति ९	जैसे	जैसी
१८	पंक्ति २८	ओर	और	,,	पंक्ति १०	पड़ते	पड़ती
२१	पंक्ति ५	जा-	जा	,,	पंक्ति ३३	लुभावन	लुभावना
२६	टिप्पणी	जिसंम	जिसमें	६३	पंक्ति २८	२६॥	२७॥
२७	पंक्ति ३२	सैंकड	सैकंड	६६	पंक्ति ९	यह	यहाँ
२९	टिप्पणी	बड़ा	बढ़ा	६८	पंक्ति ३	एसी	ऐसी
३२	पंक्ति २६	कसा	कैसा	,,	पंक्ति ३३	से	में
३३	पंक्ति ३०	वर्ष	प्रकाश-वर्ष	७०	पंक्ति ३२	वह	वहाँ
४०	पंक्ति १३	किलीमीटर	किलोमीटर	,,	पंक्ति ३३	यह	यहाँ
,,	,,	पंद्रह	पंद्रह करोड़	७२	पंक्ति १	अतरक्त	अतिरिक्त
४३	टिप्पणी	उस	उस समय	८७	पंक्ति १	क	के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

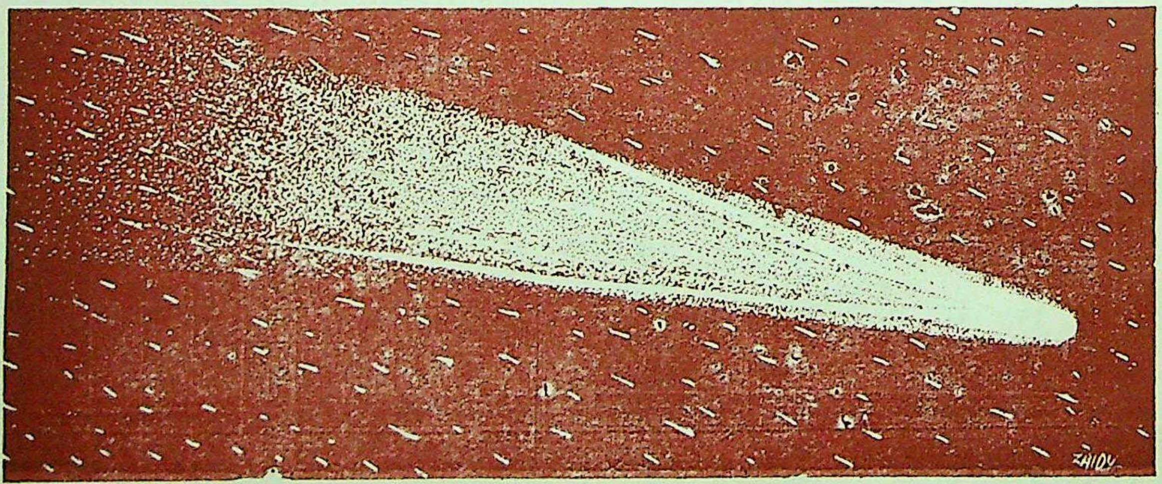

अचरजभरे आसमान के दो महान् कौतुक

(ऊपर) 'देवयानी' तारा-समूह के क्षेत्र में स्थित 'महान् नीहारिका'! अरबों-खरबों तारों से खचित यह ज्योतिर्मयी नक्षत्रमाला वस्तुतः हमारी इस 'मंदाकिनी' जैसी एक पृथक् और स्वतंत्र दुनिया है, जो इतनी अधिक दूर है कि वहाँ से प्रकाश को पृथ्वी तक पहुँचने में उन्नीस-बीस लाख वर्षों का समय लगता है! (नीचे) 'हेली का प्रसिद्ध धूमकेतु', जो प्रति ७६ वर्ष के बाद पृथ्वी के निकट से गुजरता है। (पृ० ८७–८८ और १०८–१०९ पर इनका विवरण पढ़िए।)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

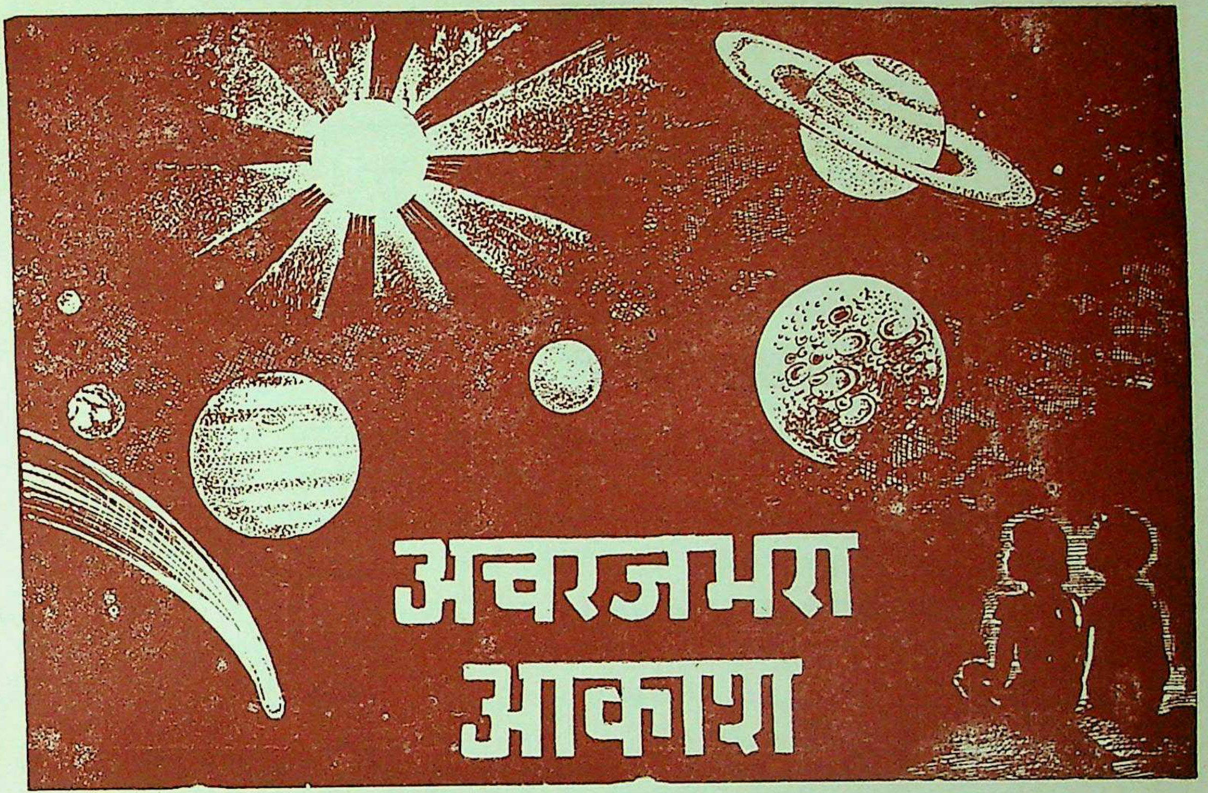

धरती पर की अपनी दुनिया से निगाह हटाकर, तनिक आसमान की ओर देखो ! कैसी अनोखी लीला वहाँ हर घड़ी होते दिखाई देती है ! चाहे दिन हो चाहे रात, गरमी हो या जाड़ा, सूखा हो या बरसात, कभी भी इस अनूठे गगन-गुंबद की जादू-भरी हलचल का ताँता नहीं टूटने पाता ! यह आकाश सचमुच ही कितना अद्‌भुत है—कैसा अचरजभरा !

अँधेरे-उजाले की लुकाछिपी का अनोखा खेल

किसी दिन बड़े तड़के ही उठकर देखो ! ज्योंही चिड़ियों की पहली चहकार की भनक हमारे कानों पर पड़ती है, हर दिन पूरब में अँधेरे-उजाले की एक अनूठी लुकाछिपी का नाटक रचते हुए, इस अद्‌भुत आसमान को अपना घूँघट खोलते हम पाते हैं ! लो, अभी-अभी तो रुपहले सितारों से टँकी काली चूनर का-सा उसका अंचल अनगिनत तारों की चमक-दमक से झिलमिला रहा था ! और ज्योंही उसके पूरबी छोर पर शरबती ललाई की एक हलकी झाँईं निखरना शुरू हुई कि एक-एक करके ये सितारे मंद पड़कर गायब क्यों होने लगे ? देखते-देखते उस काली चूनर का किसी ने मानो रंग ही उड़ा दिया ! वह धुँधली और फीकी पड़ गई ! साथ ही उसका एक किनारा तेजी से रंग बदलता हुआ इस तरह शरबती से गुलाबी और गुलाबी से लाल हो चला, जैसे किसी ने उस पर गुलाल मल दी हो ! भला, बात की बात में यह कैसा अनूठा दृश्य सज गया ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अँधेरे-उजाले की लुकाछिपी का अनूठा नाटक, जिसे हम सुबह-शाम आकाश के पूरबी और पश्चिमी छोर पर घटते देखते हैं।

तब उसी किनारे की ओट से कनखियों से ताकते हुए नयन की कोर जैसी एक सुनहली रेखा एका-एक ऊपर उभरते दिखाई दी! बस, फिर क्या था! मानो जादू कर दिया गया! क्योंकि पल भर में ही अंधकार का भूत अपनी चादर समेटकर भाग खड़ा हुआ! देखते-देखते धरती-आसमान दोनों के परदे पर एक निराली और नई दुनिया निखर आई! सब कहीं उजाला ही उजाला छा गया! जीवन और जागरण का ज्वार-सा उमड़ पड़ा! एक ओर चिड़ियों ने सरगम के सातों सुरों में गाना छेड़कर पेड़ों को झनझनाना शुरू कर दिया! दूसरी ओर भौरों और तितलियों ने फूलों की खिड़कियाँ खोलकर मीठी महक का खजाना लूटना-लुटाना आरंभ कर दिया! उधर खेतिहर हल-बैल सँभालकर खेतों की ओर चल पड़े! इधर पनिहारिनों ने अपनी-अपनी गगरियाँ उठाकर पनघटों की राह पकड़ी! भला, किसके जादू से यह सब-कुछ हो गया? यह अँधेरे-उजाले की उस लुकाछिपी के नाटक का ही तो चमत्कार था!

रोशनी और आग का तमतमाता गोला

अँधेरे-उजाले की आँखमिचौली का यह अनूठा खेल, जिसे हम नित सबेरे आकाश के पूरबी छोर पर होते देखते हैं, शाम को हर दिन पश्चिम में फिर से मानो उलटे सिल-सिले से घटते देखा जा सकता है। तब हम कहते हैं कि दिन ढल गया––अब रात आने-वाली है! इस बीच सारे दिन रोशनी और आग का वह गोला––जिसे हमने सुबह पूरब में धरती की ओट से उभरते देखा था और जो हमारी दुनिया में 'सूरज' या 'सूर्य' के नाम से मशहूर है––लगातार दमकते हुए हमारे सिर पर अंगारे की तरह तमतमाता रहता है! उस घड़ी किसी की क्या मजाल कि आँख से आँख मिलाकर उसकी ओर देख तो ले! उसकी उस तीखी रोशनी से तिलमिलाकर कभी-कभी तो हमें सिर पर छाता और आँखों पर ठंढा काला चश्मा चढ़ाने को लाचार हो जाना पड़ता है!

परन्तु आखिर वह पहर भी आ पहुँचता है, जब कि उसका तेज घटने लगता है। वह जिस तरह धीरे-धीरे ऊपर उठकर आकाश के कँगूरे तक ऊँचा जा चढ़ा था, उसी तरह सरकता हुआ अब पश्चिम में नीचे की ओर ढलते दिखाई देता है। देखते-देखते वह उसी लकीर पर जा पहुँचता है, जहाँ पर कि धरती और आसमान एक-दूसरे में घुलते-मिलते से जान पड़ते हैं! और लो, ज्योंही फिर से कुछ गुलाल बखेरकर उसने धरती की ओट अपना मुँह छिपाया नहीं कि वही अँधेरे-उजाले का पुराना आँखमिचौली का खेल फिर शुरू हो जाता है!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह देखो, उजाले की दुकानदारी उठते देखकर अँधेरे का भूत फिर से अपनी काली चादर फैलाता हुआ मैदान में आ धमका ! उसके इस बढ़ते हुए दौर से घबड़ाकर, क्या पशु-पक्षी और क्या मनुष्य, सभी दिन भर का कामकाज समेट अपने-अपने बसेरों की ओर लौट चले ! इस तरह बात की बात में सारी झाँकी बदल गई ! जंगलों में सन्नाटा छा गया ! सूनी बस्तियाँ चहक उठीं ! कहीं गायें दूही जाने लगीं । कहीं बैलों और बछड़ों को रात का चारा-पानी दिया जाने लगा । इधर घर-घर चूल्हे जल उठे, और क्या महलों क्या झोपड़ियों में, सब कहीं दिए जगमगाने लगे ! उधर बस्तियों से परे जंगलों के सन्नाटे में शिकारी जानवरों ने माँदों से बाहर कदम बढ़ाया और अँधेरे की ओट में लुकते-छिपते हुए आखेट की टोह में ताकना-झाँकना शुरू किया !

भला, कैसे यह सारा दृश्य बदल गया ? क्या इसीलिए नहीं कि अंधकार ने फिर से सब कहीं अपना दबदबा जमा लिया था और बेचारा उजाला सूरज के छिपते ही मुँह चुराये न जाने कहाँ जा छिपा था ?

आसमान की अनूठी दिवाली

लेकिन यह तो केवल धरती पर की अपनी दुनिया की बात हमने कही ! उधर आसमान की ओर भी तो निगाह डालकर देखो कि इस बीच वहाँ क्या से क्या हो गया ! अरे, इधर तो हमारी बस्तियों में टिमटिमाते दियों की नित की दिवाली जगमगाने लगी, और उधर ऊपर आसमान में भी देखते-देखते यह अद्भुत दीपमाला किसने सँजो दी ? कहाँ से ये सब अनगिनत तारे एक के बाद एक निखरकर इस विशाल गगन-गुंबद की छत पर मणियों की तरह झिलमिलाने लगे ? क्या प्रकृति ने भी रात के बढ़ते हुए अँधियारे से घबड़ाकर आसमान की यह अनोखी दिवाली सँजो दी ?

और लो, अभी भी उसका जी मानो पूरी तरह भरा नहीं ! तभी तो कुछ ही देर बाद उसने ठंढी रोशनी के एक बड़े-से रुपहले गोले को धरती की ओट से धीरे-धीरे ऊपर सरकाकर आसमान में टाँग दिया । यह गोला—जिसे हम 'चाँद' या 'चन्द्रमा' के नाम से पहचानते हैं—टिमटिमाते हुए तारों के बीच ऐसा जान पड़ने लगा जैसे कि झाड़-फानूस के बीच चाँदी का बड़ा-सा हंडा हो !

वह गोला, जिसे हम चाँद कहते हैं, टिमटिमाते हुए तारों के बीच ऐसा जान पड़ता है, जैसे कि झाड़-फानूस के बीच चाँदी का बड़ा-सा हंडा लटक रहा हो !

अब क्या पूछना था ! मालूम होने लगा, जैसे धरती-आसमान दोनों पर चाँदी की एक हलकी परत-सी बिछा दी गई हो ! या यों कहिए कि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हमारी यह दुनिया नित की वह जानी-पहचानी दुनिया न रहकर एक अनजान परीलोक में बदल गई हो ! प्रकृति की यह लीला सचमुच ही कैसी अचरजभरी है---कितनी अजीब !

मनुष्य ज्योतिषी बना

आकाश के इन कौतुकों को देख-देखकर जिस तरह हमें आज अचंभा और कौतूहल होता है, उसी तरह हजारों-लाखों बरस पहले के आदमी को भी होता होगा, इसमें संदेह नहीं। जब वह नित ही रात और दिन, अँधियारे और उजाले, या चाँद-सूरज-तारे आदि को एक नियत सिलसिले से लौट-लौटकर सामने आते-जाते देखा करता होगा, तो सहज ही उसके मन में अचरज की लहरें हिलारें लेने लगती होंगी ! उन दिनों सभ्यता से दूर होने के कारण, आज की तरह वह इन सब बातों को शायद न समझ पाता होगा। फिर भी इतना तो वह अवश्य अनुमान करने लगा होगा कि इन सबका कोई आपसी नाता जरूर है !

समय बीतते जब मनुष्य ने सभ्यता की राह पर आगे बढ़ना शुरू किया होगा, तब जहाँ उसने आग सुलगाना, हथियार-औजार बनाना, झोपड़ियों में रहना, डोंगियों पर चढ़ना, ढोर-जानवर पालना, खेती करना आदि सीखा होगा, वहाँ आसमान की हलचलों को देख-देखकर मौसम, समय आदि के बारे में भी एक कामचलाऊ जानकारी पाने की कोशिश की होगी। इस तरह दूसरी विद्याओं के साथ, उस धुँधले प्राचीन काल में ही उस अनूठी विद्या का भी बीज पड़ा होगा, जिसे आज हम 'ज्योतिष' के नाम से पुकारते हैं। इसी तरह मनुष्य पहलेपहल ज्योतिषी बना होगा !

आदि ज्योतिषी कोई गड़रिया रहा होगा या चरवाहा, क्योंकि ऐसे ही लोगों को सन्नाटे में आसमान को निहारने का अच्छा मौका मिला करता है !

लोगों का अनुमान है कि यह आदि ज्योतिषी या तो उस पुराने जमाने का कोई गड़रिया रहा होगा, या चरवाहा, अथवा नाव खेनेवाला मल्लाह ! क्योंकि ऐसे ही लोगों को आसमान के चँदोवे के नीचे खुले में बसर करते हुए, रात के सन्नाटे में उसके कौतुकों को लगातार निहारने और उन पर विचार करने का सबसे अच्छा मौका मिला करता होगा !

पंचांगों या तिथिपत्रों का जन्म

इस आदि ज्योतिषी ने बरसों तक आसमान की हलचलों को निहारने के बाद उनके बारे में अपनी राय बनाई होगी। उसी के आधार पर समय, मौसम, दिन-रात आदि के अनोखे सिलसिले की ठीक-ठीक जानकारी पाने का गुर उसने सीखा होगा। उसने पूरब-पश्चिम में सूरज के निकलने और छिपने के नित के दौर से दिन-रात का समय निश्चित किया होगा। चाँद के घटाव-बढ़ाव की लीला से पखवाड़े और महीने का नाप लगाया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होगा। सूरज को उत्तर-दक्खिन की ओर क्रम से झुकते देखकर वर्षा और ऋतुओं के चक्र का मान लगाना सीखा होगा। तारों के विविध समूहों को तरह-तरह की आकृतियों की कल्पना के चौखटे में बाँधकर, उनकी मदद से अपनी लम्बी नौका-यात्राओं में रात के समय दिशा की जानकारी पाने की कुंजी खोज निकाली होगी !

जब आसमान के इन अचंभों की जानकारी मनुष्य के मन में गहराई से जमने लगी होगी, तब वह इस बात का लेखा-जोखा भी रखने लगा होगा कि कौन-सी आसमानी घटना लौट-लौटकर कब होती है ! इसी प्रकार हजारों बरस तक निहारते-निहारते आखिर यह पता उसने पाया होगा कि जहाँ सभी तारे आम तौर पर अपने-अपने समूहों के चौखटों में कसे रहकर अपनी जगह से नहीं हिलते, वहाँ कुछ चमकीली ज्योतियाँ धीरे-धीरे सरककर चलती हुई-सी भी जान पड़ती हैं ! इसी तरह ग्रहों और नक्षत्रों के अंतर का ज्ञान उसके मस्तिष्क में पैठा होगा। इन सभी बातों का हिसाब रखते-रखते एक दिन वह इस योग्य भी हुआ होगा कि सही-सही बतला सके कि कौन-सी आसमानी घटना कब होगी ! इसी प्रकार उन तिथिपत्रों या पंचांगों का जन्म हुआ होगा, जिनमें चाँद-सूरज की गतिविधि और ग्रह-नक्षत्रों की चालढाल के अनुसार वर्ष भर की ज्योतिष-संबंधी हलचलों और तिथियों के मान आदि का विवरण दिया रहता है ! इस तरह की जानकारी धर्म-कर्म और पूजा-पाठ की रस्मों के ठीक-ठीक मुहूर्त्त तय करने के लिए पुराने जमाने में बहुत जरूरी मानी जाती थी। इसी कारण, ज्योतिष-विद्या पर आरंभ में पुरोहितों का काफी दबदबा छा गया था। इसकी झलक हमें सभी प्राचीन जातियों के इतिहास में देखने को मिलती है !

प्राचीन भारत की ज्योतिष-संबंधी साधना

यह सच है कि विज्ञान की दूसरी शाखाओं की तरह ज्योतिष की भी बहुत-कुछ उन्नति पिछले कुछ सौ वर्षों के भीतर ही हुई है। फिर भी बहुत पुराने जमाने में दुनिया की कई जातियों ने इस विद्या के क्षेत्र में इतने कदम बढ़ा लिये थे कि देखकर आश्चर्य होता है ! दुनिया के सबसे पुराने ग्रंथ वेद हैं। इनमें सूरज, चाँद, धरती, आसमान, तारे आदि के बारे में प्राचीन भारतीय लोगों के ज्ञान के न जाने कितने संकेत भरे पड़े हैं ! सबसे बड़ी बात तो यह है कि वेदों के 'वेदाङ्ग' नामक जो छः प्रमुख अंग माने गए हैं, उनमें से एक 'ज्योतिष' भी है। इससे इस बात की झलक मिलती है कि प्राचीन भारत में ज्योतिष-विद्या को कितना ऊँचा स्थान प्राप्त था !*

शुक्ल यजुर्वेद में 'नक्षत्रदर्श' और 'गणक' जैसे शब्द मिलते हैं। इनका अर्थ है—'तारों को निहारनेवाला' और 'ज्योतिष संबंधी गणना करनेवाला'। इसी तरह ऋग्वेद में इस बात की स्पष्ट सूचनाएँ हैं कि आज से छः-सात हजार वर्ष पहले ही हमारे पुरखे सूर्य को दिन-रात, ऋतु-संवत्सर, आदि का प्राकृतिक कारण मानते थे। उसी की रोशनी से वे

*'ज्योतिष' शब्द हमारे यहाँ पुराने जमाने में केवल ग्रह-नक्षत्रों की चालढाल की जानकारी करानेवाली विद्या के लिए ही काम में लाया जाता था, जिसे कि अंग्रेजी में 'एस्ट्रॉनामी' कहते हैं। जब ग्रह-नक्षत्रों का भाग्य के साथ संबंध जोड़ देनेवाली 'फलित विद्या' ('एस्ट्रालॉजी') का बोलबाला बढ़ा, तो उसे भी 'ज्योतिष' के नाम से पुकारने लगे। पर यह बाद की बात है। यहाँ हमारा मतलब पहले ही अर्थ से है। उसी अर्थ में इस शब्द का प्रयोग इस पुस्तक में हुआ है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

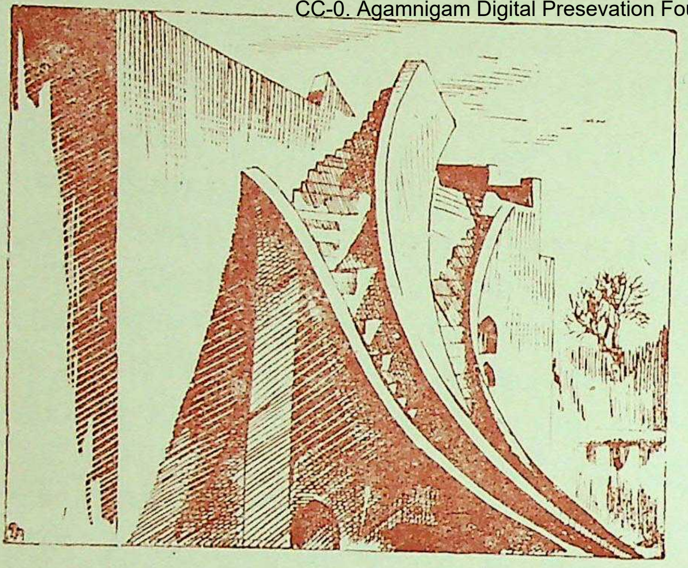

जयपुर, दिल्ली, उज्जैन आदि स्थानों में राजा जयसिंह द्वारा प्रस्थापित मध्यकालीन वेधशालाओं में से एक की झांकी। इन भारतीय वेधशालाओं में अब भी पुराने ढंग के कई ज्योतिष-यंत्र मौजूद हैं !

चन्द्रमा को अप्रकाशित बतलाते थे। वे चाँद और सूरज के ग्रहणों के ठीक समय की पहले ही से सूचना देने की योग्यता भी रखते थे ! वे पृथ्वी की धुरी के झुकाव तक से अजान नहीं थे ! यही नहीं, वे धरती को गोल और आसमान में बिना किसी सहारे के टिकी हुई भी मानते थे ! इस बात की पुष्टि लुड्विग जैसे योरपीय विद्वानों ने भी की है !

भारत के प्राचीन ज्योतिषाचार्यों में लगध का नाम बहुत पुराना है। वह ईस्वी पूर्व की चौदहवीं सदी में अर्थात् लगभग साढ़े तीन हजार वर्ष पहले हुए थे ! उन्होंने ही 'ज्योतिष वेदाङ्ग' की रचना की थी, जो हमारा सबसे पुराना ज्योतिष-ग्रंथ है। उनके बाद इस क्षेत्र के हमारे सबसे बड़े नाम आर्यभट (पाँचवी सदी ईस्वी), वराहमिहिर (छठी सदी ईस्वी), ब्रह्मगुप्त (सातवीं सदी ईस्वी) और भास्कराचार्य (बारहवीं सदी ईस्वी) के हैं। आर्यभट इतने बड़े वैज्ञानिक थे कि पश्चिमी विद्वानों ने उन्हें 'भारत का न्यूटन' कहकर पुकारा है। इस महान् ज्योतिषी ने आज से डेढ़ हजार वर्ष पहले ही (जबकि योरप में इस बात को कोई भी नहीं जानता था) साफ-साफ बता दिया था कि पृथ्वी एक गोला है और वह अपनी धुरी पर चक्कर लगाता है ! साथ ही यह भी जाहिर कर दिया था कि पृथ्वी का आधा गोला सूर्य से प्रकाशित और आधा छाया में रहने से अँधेरे में रहता है। इसी तरह चाँद या सूरज का ग्रहण राहु द्वारा ग्रास के कारण नहीं, बल्कि उनकी आड़ में क्रमशः पृथ्वी या चन्द्रमा की छाया के आ जाने के कारण ही होता है !

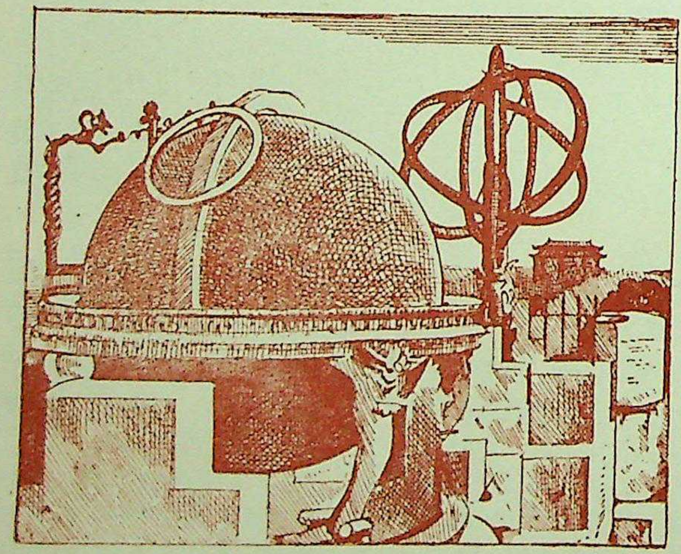

तेरहवीं सदी ईस्वी में कुबलाईखां द्वारा स्थापित चीनी वेधशाला के अनोखे यंत्र ! ये पेकिङ् नगर के परकोटे की एक बुर्ज पर अभी भी रक्खे हुए हैं।

वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य भी ज्योतिष के प्रकाण्ड पंडित थे। वराहमिहिर ने सबसे बड़ा काम यह किया कि अपनी पुस्तक में 'सूर्य-सिद्धान्त' आदि भारत के ज्योतिष-संबंधी कई एक प्राचीन मतों की जानकारी हमें करा दी। भास्कराचार्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृथ्वी को सौर परिवार का एक ग्रह प्रमाणित करके ज्योतिष को नया मोड़ देनेवाला पादरी कापर्निकस ! इस युगप्रवर्तक ज्योतिषी के प्रादुर्भाव से पहले टालमी की प्रस्थापना के आधार पर दुनिया इसी भ्रम में उलझी हुई थी कि पृथ्वी स्थिर है और सूर्य उसका चक्कर लगाता है !

ज्योतिष के साथ-साथ गणित के भी महान् आचार्य थे । उनकी 'लीलावती' और 'बीजगणित' नामक गणित-संबंधी पुस्तकें मशहूर हैं । अपने 'सिद्धान्त-शिरोमणि' नामक ज्योतिष-ग्रंथ में उन्होंने पृथ्वी को बिना आधार के अपनी ही शक्ति से आसमान में स्थित बताया है । उन्होंने चन्द्रमा, बुध, मंगल, बृहस्पति आदि की कक्षाओं का भी उल्लेख किया है और सबकी गतियाँ बताई हैं ! कई तरह के ज्योतिष-यंत्रों का भी वर्णन किया है !

ज्योतिष के क्षेत्र में भारत की साधना का यह गौरवपूर्ण क्रम ठेठ सत्रहवीं सदी ईस्वी तक जारी रहा, जिसका प्रमाण राजा जयसिंह द्वारा जयपुर, उज्जैन, दिल्ली, काशी आदि स्थानों में स्थापित कई पुरानी वेधशालाएँ हैं । इनमें से कई अभी भी मौजूद हैं (दे० पृष्ठ १२ का ऊपरी चित्र) ।

बाबुल, मिस्र, चीन और यूनान की देन

भारत से बाहर निगाह दौड़ाने पर, हम प्राचीन मिस्र, बाबुल, सुमेर, चीन और यूनान को भी ज्योतिष में काफी आगे बढ़ा हुआ पाते हैं । सुमेर, बाबुल तथा मिस्र में पाँच-छः हजार वर्ष पहले ही तारों की सूचियाँ बन चुकी थीं । वहाँ के लोगों को बारह राशियों की भी जानकारी थी । बाबुल के खँडहरों में ऐसी इमारतें निकली हैं, जिनके शिखर पर वेधशालाएँ स्थापित थीं । इन इमारतों से चाँद, सूरज और नक्षत्रों का निरीक्षण तथा अध्ययन किया जाता था । इतिहास के पंडितों का कहना है कि मिस्र को अपना ज्योतिष-संबंधी ज्ञान सुमेर और बाबुल से ही प्राप्त हुआ था । इसी तरह यूनानवालों ने ज्योतिष-विद्या का पहला पाठ प्राचीन मिस्र और बेबिलोनिया (बाबुल) से सीखा था । उधर चीन ने भी हजारों साल पहले आसमान के कौतुकों की ओर अपना ध्यान लगाया था । वहाँ पुराने जमाने में बाकायदा जंत्रियाँ भी बनने लगी थीं । वहाँ की पुरानी पोथियों में चाँद-सूरज के ग्रहणों, पुच्छल तारों, यहाँ तक कि सूर्य-कलंकों (सूर्य पर देखे जानेवाले काले धब्बों) तक का लेखा मिलता है !

दूरदर्शक का आविष्कार करनेवाला महान् ज्योतिषी गैलीलियो और (दाहिनी ओर) उसके द्वारा निर्मित दो आरंभिक दूरदर्शक यंत्र ।

चीन की राजधानी पेकिङ् में बारहवीं शताब्दी ईस्वी की एक वेधशाला अभी भी मौजूद है। उसमें अजीब शक्ल के कई ज्योतिष-यंत्र रक्खे हुए हैं । इस वेधशाला को कुबलाईखाँ नामक मंगोल सम्राट् ने बनवाया था (पृ० १२ का निचला चित्र देखिए)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परन्तु इन सब देशों में सबसे मार्के की देन यूनान की थी। वहाँ थेल्स (छठी सदी ईस्वी पूर्व), हिपार्कस (दूसरी सदी ईस्वी पूर्व) और टालमी (दूसरी सदी ई०) नामक तीन बड़े ज्योतिषी हुए। इन लोगों ने तारों के नक्शे बनाए। चाँद, सूरज, ग्रह, नक्षत्र आदि की गतियाँ आँकीं। तारामंडल, आकाशगंगा आदि पर भी विचार किया। उक्त तीनों विद्वानों में टालमी का काम सबसे अधिक महत्व का था। वह सिकंदरिया नगर का निवासी था, जो उन दिनों यूनानी ज्ञान-विज्ञान का महान् केन्द्र था। टालमी ने एक ग्रंथ लिखा था, जो इतना प्रभावशाली था कि लगभग डेढ़ हजार बरस तक वही पश्चिमी दुनिया का ज्योतिष का प्रधान ग्रंथ बना रहा ! लेकिन इस ज्योतिषी ने एक भारी भूल भी की थी। उसने जोरों के साथ यह गलत धारणा प्रस्तुत की थी कि पृथ्वी स्थिर है ! उसकी इस गलत धारणा के कारण सदियों तक दुनिया को धोखे में ही रहना पड़ा !

ज्योतिष का नया मोड़––कापर्निकस और गैलीलियो

सच तो यह था कि इस दर्जे तक ज्योतिष-विद्या का ज्ञान प्राप्त कर लेने पर भी, पुरानी दुनिया के लोग आसमान के रहस्यों के परदे खोलने में नहीं के बराबर ही सफलता पा सके थे ! इसका मुख्य कारण यह था कि अब तक मनुष्य आकाशमंडल को वहीं तक नाप पाया था, जहाँ तक कि कोरी आँखों से वह उसे देख पाता था। उसके पास आज की तरह गगनमंडल के दूर के हिस्सों को देखने-परखने के लिए कोई यंत्र तो थे नहीं ! इसी से उसका ज्ञान नपा-तुला और सीमित बना रहा !

उदाहरण के लिए, अभी तक ज्योतिषियों को न तो यूरेनस, नेपच्यून और प्लूटो जैसे ग्रहों का पता था; न अनगिनत तारों, तारापुंजों और नीहारिकाओं की ही जानकारी थी ! न शनि के अद्भुत छल्ले की झाँकी उन्हें अभी तक देखने को मिली थी; न नहरों-सी जान पड़नेवाली मंगल की अनोखी रेखाओं की ! न चन्द्रमा के ज्वालामुखों की तस्वीरें उनकी निगाह में आई थीं ; न शुक्र की कलाओं या बृहस्पति के बड़े धब्बे की सत्ता का ही उन्हें अता-पता था ! वास्तव में वे अब भी उस अंधकारपूर्ण जमाने में थे, जब कि आसमान तो क्या, धरती तक की पूरी जानकारी किसी को नहीं थी।

यह वह जमाना था, जबकि क्या पूरब क्या पश्चिम, हर कहीं आमतौर पर यही माना जाता था कि इस दुनिया का केन्द्र यह पृथ्वी ही है––उसी के आसपास सूरज, चाँद और ग्रह-नक्षत्र चक्कर काट रहे हैं तथा वह स्वयं नितान्त स्थिर एवं अटल है ! यही नहीं, इन ग्रह-नक्षत्रों में तरह-तरह के देवी-देवताओं की भी कल्पना की जाती थी और उनका मनुष्य के भाग्य-निर्माण में गहरा हाथ बताया जाता था––जैसा कि फलित ज्योतिष के माननेवालों का आज भी दृढ़ विश्वास है !

इस अज्ञानान्धकार से ज्योतिष-विद्या का उद्धार कहीं सदियों बाद जाकर हो पाया। इसका गौरव पश्चिम के दो नए विचारकों को प्राप्त है। उन्होंने ही इस विद्या को पुरानी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धारणाओं से ऊपर उठाकर पहलेपहल आधुनिक विज्ञान की रोशनी में ला खड़ा किया। इन महापुरुषों का नाम था कार्पनिकस ओर गैलीलियो। यही आज के ज्योतिष-विज्ञान के पिता कहे जा सकते हैं। पादरी कार्पनिकस (१४७३–१५४३ ई०) ने पहलेपहल यह महान् सत्य बतलाया कि पृथ्वी भी एक ग्रह है और वह बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति, शनि आदि की भाँति सूर्य के आसपास चक्कर लगाती है। वस्तुतः उसी ने पहलेपहल सौर परिवार की सही तस्वीर हमारे सामने रक्खी। उधर गैलीलियो (१५६४–१६४२ ई०) ने दुनिया को दूरदर्शक या दूरबीन नामक उस अनमोल यंत्र का उपहार दिया, जिसकी बदौलत ज्योतिषियों को दिव्य दृष्टि मिल गई! इस यंत्र के चमत्कार से आसमान के परदे के पीछे छिपी हुई एक बिल्कुल ही अज्ञात दुनिया हमारी निगाह के सामने निखर आई! इस प्रकार इस विद्या को एक नया मोड़ मिला और उसका पटपरिवर्तन हो गया!

आज के विज्ञान के आँगन में

इसके बाद तो, एक ओर न्यूटन से आइन्स्टाइन तक अनेक महान् आचार्यों का वरदान पाकर और दूसरी ओर अमेरिका तथा योरप की वेधशालाओं में शक्तिशाली दूरदर्शकों एवं अन्य यंत्रों की प्रस्थापना के फलस्वरूप, ज्योतिष की पिछले कुछ सौ वर्षों की अवधि में ऐसी अभूतपूर्व उन्नति हुई कि उसका चोला ही बदल गया! आज हम न केवल अपने पड़ौसी ग्रह-नक्षत्रों के बारे में ही कितनी बातें व्योरेवार जानने लगे हैं, बल्कि आकाश के ऐसे-ऐसे दूर के हिस्सों की भी जानकारी रखने का दावा करने लगे हैं, जहाँ की रोशनी को धरती तक पहुँचने में लाखों-करोड़ों वर्ष लग जाते हैं।* आज हमारे लिए खरबों किलोमीटर दूर के आसमानी पिंडों की सूक्ष्म नाप-तौल करना एक मामूली बात हो गई है! हम न केवल यही जान लेते हैं कि वे कितनी दूर हैं; किस गति से चल रहे हैं; कितने लम्बे-चौड़े और घने हैं; बल्कि यह जानने के साधन भी हमारे पास मौजूद हैं कि वे किन तत्त्वों से बने हैं; उन पर कितनी गर्मी है; सूरज के मुकाबले में वे कितने कम या ज्यादा चमकीले हैं और उनकी आयु क्या है!

तारीफ तो यह है कि इस सारी जानकारी का व्योरा शेखचिल्ली की गप के तौर पर नहीं, बल्कि गणित के आँकड़ों और रोशनी के सात रंगों की तस्वीरों के रूप में सामने रक्खा जाने लगा है! यह है आज के विज्ञान के आँगन में दिन पर दिन बढ़ती जा रही ज्योतिष की उन्नति का सिलसिला! इसी के बल पर मनुष्य अपने ज्ञान के दायरे को अब अनंत आकाश के साथ एक करने पर तुला हुआ है!

आकाश के कौतुकों का पारावार कहाँ ?

परन्तु जिस तरह आसमान अनंत है (अर्थात् उसके ओर-छोर का हमें पता नहीं है), उसी तरह उसके कौतुकों और रहस्यों का भी भला कौन पारावार पा सकता है? दूसरे शब्दों में,

*रोशनी या प्रकाश की किरणें एक सैकंड में लगभग तीन लाख किलोमीटर का फासला तय करती हैं। इस हिसाब से जितनी दूरी तय करने में रोशनी को एक वर्ष का समय लगेगा, उसकी लंबाई का पैमाना एक 'प्रकाश-वर्ष है। यह फासला किलोमीटर के पैमाने से लगभग ९,४०८,०००,०००,००० कि० होगा!

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उसके कौतुक भी अनंत हैं ! यही कारण है कि ज्यों-ज्यों उसके रहस्यों के परदे खुलते चले जाते हैं, त्यों-त्यों नवीन रहस्यों से भरे नए-नए परदे हमें सामने झिलमिलाते दिखाई देने लगते हैं ! आज माउण्ट विल्सन के दिग्गज दूरदर्शक जैसे यंत्र की पैनी निगाह ने लगभग डेढ़ अरब (१,५००,०००,०००) तारों को हमारे दृष्टिक्षेत्र के दायरे में ला खड़ा किया है––जबकि पृथ्वी के दोनों गोलार्द्धों से कोरी आँखों से दिखाई देनेवाले तारों की कुल संख्या छः-सात हजार से ज्यादा नहीं है ! इस बात से आज के विज्ञान की महान् शक्ति का अंदाज किया जा सकता है ! परन्तु यह संख्या कितनी तुच्छ जान पड़ती है, जबकि कि वैज्ञानिक साथ ही साथ यह भी बताते हैं कि 'आकाशगंगा' की सीमाओं में बँधी हुई हमारी इस दुनिया में ही––जिसे 'मंदाकिनी' कहा जाता है––तारों की कुल संख्या एक खरब (१००,०००,०००,०००) से भी अधिक है !

इसका तो अर्थ यह हुआ कि माउण्ट विल्सन के दूरदर्शक में जितने तारे दिखाई देते हैं, उनसे पैंसठ गुनी संख्या ऐसे तारों की अभी 'मंदाकिनी' में ही विद्यमान है, जो मंद होने के कारण उक्त दूरदर्शक की पकड़ में नहीं आ पा रहे हैं ! इसके अलावा (इन्हीं वैज्ञानिकों के अनुसार) 'मंदाकिनी' नामक हमारी इस दुनिया से परे भी कई ऐसी पड़ोसी संस्थाएँ हैं, जो कि सब की सब स्वतंत्र दुनियाँ हैं ! उनमें से कई तो बड़े से बड़े दूरदर्शक में भी केवल सुई की नोक जैसी धुँधले बिन्दुओं-सी दिखाई पड़ती हैं, यद्यपि उनमें बहुतेरी मंदाकिनी से भी ज्यादा बड़ी हैं ! भला, उन सब ब्रह्माण्डों में क्या कुछ होगा, कितने तारे उनमें होंगे, क्या-क्या रहस्य उनमें छिपे होंगे, कौन कह सकता है ?

सच तो यह है कि इतना सब जानकर भी हम अभी अँधेरे में ही हैं

वस्तुतः यह आकाश आज भी हमारे लिए उतना ही अचरजभरा है, जितना कि हमारे पुरखों के लिए था ! हम उसके अभेद पृष्ठों को भेदने में आज भी पग-पग पर लाचारी और बेबसी का ही अनुभव करते हैं ! कारण, ज्यों-ज्यों उसकी गहराई में पैठते हुए हम आगे धँसते हैं, त्यों-त्यों अपने यंत्रों की दिन पर दिन बढ़ती जा रही शक्ति के बावजूद उसके रहस्यों का परदा न तो सदा के लिए उघड़ने पाता है, न उसकी सीमाओं का ही कोई अंत होते नजर आता है ! जान पड़ता है, विज्ञान उसके दायरे को समेटकर हमारी पकड़ में लाने के बजाय उलटे उसे और अधिक पसारने में ही मदद कर रहा है ! तो फिर क्या आश्चर्य है, यदि हमारे पुरखे कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों (अर्थात् इस विश्व जैसी करोड़ों दुनियाँ) की विराट् कल्पना करके, आज से हजारों बरस पहले ही इस सृष्टि को––साथ ही बिना ओर-छोर के उसके इस आकाशरूपी रहस्यमय पसार को भी––'अनंत' कहकर पुकारने लगे थे !

यदि दूरी की बात को छोड़कर फिलहाल निकट नजर दौड़ाई जाय, तो भी लाचारी का अनुभव करते हुए बुद्धि चकराने लगती है ! क्योंकि यह मानते हुए भी कि आज का ज्योतिषी सूरज और चाँद, मंगल और शुक्र, बृहस्पति और शनि आदि अपने निकट के पड़ोसी लोकों के बारे में पुराने जमाने से अधिक जानकारी रखता है––भला, कौन यह दावा कर सकता है कि हमने उनका सारा रहस्य जान लिया है ? सच तो यह है कि इतना जानकर भी हम अभी अँधेरे में ही हैं ! हमें अभी बहुत-कुछ जानना है !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

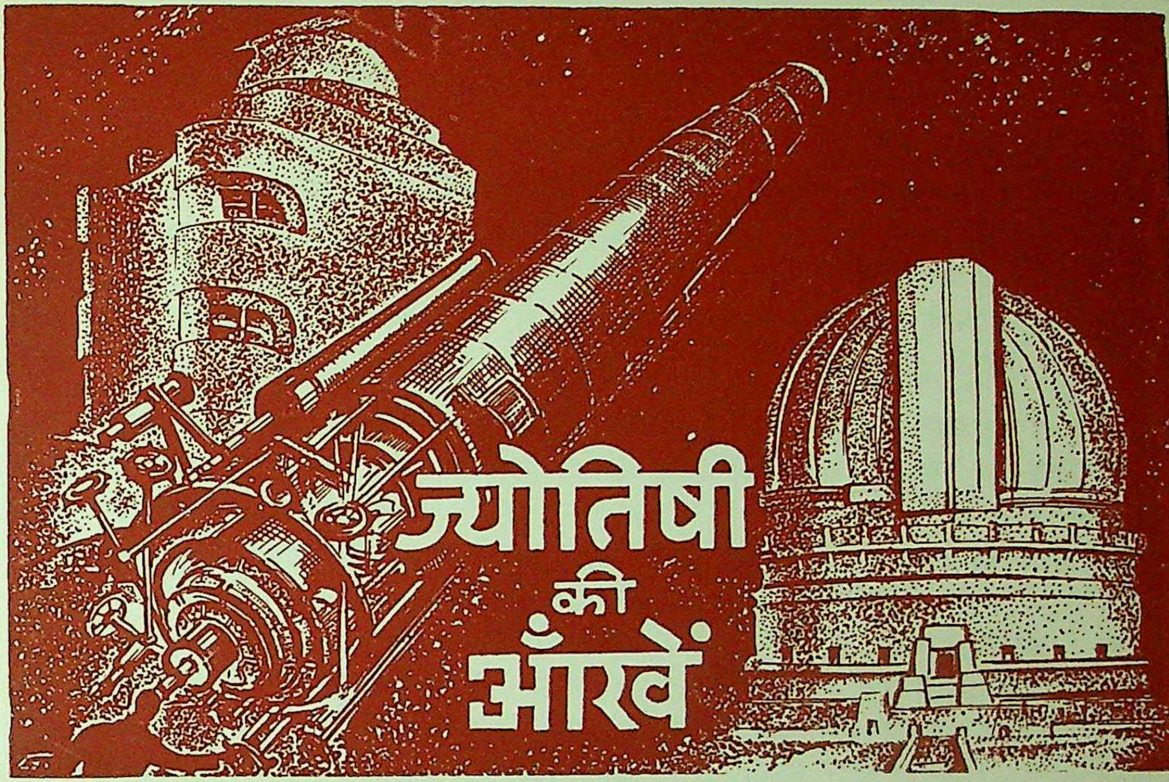

'मैं देखऊँ तुम्ह नाहिं, गीधहि दृष्टि अपार'––रामचरितमानस में बूढ़े गिद्ध संपाती का यह वचन तुमने पढ़ा होगा। उस पखेरू ने, सागर के इस पार ही से लंका की अशोक-वाटिका में बैठी हुई सीताजी का आँखों-देखा हाल बखानकर, खोज के लिए निकली हुई वानरों की टोली को अपनी पैनी निगाह का बढ़िया परिचय दिया था!

आज का ज्योतिषी भी एक तरह का दूसरा संपाती ही है। बल्कि वह है रामायण में बखाने गए उस गिद्ध से भी ज्यादा पैनी निगाहवाला! क्योंकि जहाँ संपाती कुछ कोस दूर तक ही देखने की ताकत रखता रहा होगा, वहाँ आधुनिक ज्योतिषी तो आसमान के ऐसे दूर-दूर के कोनों तक की खाक छानकर उनकी झाँकी देखने-दिखाने का दावा करता है, जहाँ से रोशनी की किरणों तक को धरती तक पहुँचने में लाखों-करोड़ों बरस लग जाते हैं!

यह अद्‌भुत दृष्टि ज्योतिषी को भला एकाएक कहाँ से मिल गई? किसने उसे ये जादूभरी आँखें दे दीं? साथ ही, इन आँखों की मदद से किस तरह आज वह आसमान के नित नए परदे उघाड़ रहा है; आओ, थोड़े में इसकी जानकारी तुम्हें यहाँ करा दें!

दूरदर्शक का जन्म

यह तो आम तौर पर सब कोई जानते हैं कि चीज जितनी ही दूर होगी, देखने में उतनी ही छोटी मालूम देगी। पतंग उड़ाते समय तुमने देखा होगा कि ज्यों-ज्यों वह आसमान में ऊँची चढ़ती जाती है, त्यों-त्यों उसकी शक्ल देखने में छोटी होती चली जाती है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यही बात ग्रह-नक्षत्रों के बारे में भी सच है । वे बहुत दूर हैं, इसीलिए इतने छोटे दिखाई देते हैं ! वरना उनमें से हर एक दरअसल एक विशाल पिंड हैं––कई तो हमारी इस धरती से लाखों गुना अधिक बड़े !

इस बात की कल्पना मनुष्य शायद बहुत पहले ही कर चुका था । लेकिन आखिर वह करता तो क्या करता ? वह केवल आँखें फाड़-फाड़कर आसमान की ओर देखता और मन मसोसकर रह जाता था ! उन ग्रह-नक्षत्रों के समीप किसी तरह जा पहुँचने से तो वह रहा ! और उसके पास ऐसा कोई चमत्कार था नहीं, जिससे कि उसकी निगाह और पैनी हो जाती तथा यहाँ से उन पिंडों को वह कहीं ज्यादा बड़ा देखने लगता !

इसी उधेड़बुन में वह हजारों बरस तक लगा रहा । तब एकाएक उसका भाग्य जगा और खेल-खेल में ही एक दिन तरकीब उसके हाथ लग गई ! कहते हैं, हालैण्ड देश के एक ऐनक बनानेवाले की दुकान में एक लड़का चश्मे के दो लेंस लेकर उनसे खेल रहा था । मौके की बात थी कि दोनों शीशे उसकी आँखों के सामने एकाएक एक ही सीध में पड़ गए ! उसी वक्त उसने उनमें से होकर देखा, तो कौतूहल और अचंभे से वह उछल पड़ा ! उसकी निगाह सामनेवाले गिरजाघर की मीनार पर जा अटकी थी । ताज्जुब की बात थी कि इतनी दूर के उस गिरजाघर की मीनार उन शीशों में से देखने पर एक तो उल्टी दिखाई पड़ रही थी, दूसरे बड़ी भी मालूम देती थी !

बस, गुर हाथ लग गया ! जब चश्मेवाले को इस बात का पता चला, तो उससे लाभ उठाने के लिए उसने खिलौने जैसा एक यंत्र बनाया । उससे काफी दूर की चीजें बड़ी शक्ल की दिखाई देने लगती थीं । यह बात सत्रहवीं सदी के आरंभ की है । मौके से इस खोज की भनक गैलीलियो नामक इटैलियन ज्योतिषी के कानों तक पहुँची । उसने इसका महत्व फौरन् ताड़ा और सन् १६०८ ई० में इसी सिद्धान्त पर पहलेपहल एक छोटा-सा दूरबीन या दूरदर्शक यंत्र उसने बनाया । और लो, ज्योंही अपने इस यंत्र को उसने आसमान की ओर साधा, एक बिल्कुल ही नई-निराली दुनिया उसकी आँखों के सामने निखर आई !

गैलीलियो ने क्या देखा ?

उसने देखा कि अपने पड़ोसी चाँद पर हम जो अनोखे चकत्ते या धब्बे जैसे देखते हैं, वे दरअसल उसके ऊबड़खाबड़ धरातल के निशान हैं ! इसका तो अर्थ यह हुआ कि चन्द्रमा पर भी हमारी धरती की तरह पहाड़ ओर खाई-खंदक हैं ! इसी तरह अपने इस जादूभरे यंत्र को जब उसने खास तरकीब से सूरज की ओर साधा, तो उसकी सतह पर भी उसे कुछ काले दाग या 'कलंक' दिखाई दिए ! इन कलंकों का असली हाल तो दुनिया को बाद में मालूम हुआ । लेकिन उनको खास ढंग से सूरज की सतह पर सरकते हुए देखकर, इस महान् ज्योतिषी ने इस बात का पक्का पता पा लिया कि आग और रोशनी का वह प्रचण्ड गोला भी हमारी धरती की तरह तेजी से अपनी धुरी पर लट्टू की भाँति नाच रहा है !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सबसे अचरज की बात तो उसे शनिग्रह पर अपना यह यंत्र साधने पर देखने को मिली ! उसे शनि के आसपास एक अनोखा छल्ला या 'वलय'-सा दिखाई दिया ! यह छल्ला तब तक और किसी ने इस पृथ्वी से नहीं देखा था । इसी तरह बृहस्पति के आसपास चन्द्रमा की नाईं कई उपग्रह उसने देखे ! यही नहीं, इस यंत्र की बदौलत, कई एक नए तारे भी उसे देखने को मिले, जोकि कोरी आँखों से कभी भी नहीं दिखाई देते ! साथ ही उसने यह भी पता पाया कि जिसे हम 'आकाशगंगा' कहते हैं, वह कोई धुएँ का बादल नहीं, बल्कि लाखों सितारों का झुंड है !

कहना न होगा कि इन खोजों ने ज्योतिष के क्षेत्र में तहलका मचा दिया ! अब ज्योतिषियों ने आसमान के कौतुकों को दूसरी ही आँखों से देखना शुरू किया । ये आँखें थीं गैलीलियो द्वारा ईजाद किए गए चमत्कारपूर्ण यंत्र दूरदर्शक की आँखें ! इस जादुई यंत्र से मिली दिव्य दृष्टि की बदौलत आज ज्योतिषी यहाँ तक समर्थ हो गया है कि वह चार लाख किलोमीटर दूर के चन्द्रमा को इतना बड़ा देख पा रहा है, मानो वह पृथ्वी से पचास किलोमीटर की दूरी पर ही हो !

दूरदर्शक का सिद्धान्त

हम देख चुके हैं कि दूरदर्शक का जन्म चश्मे में लगाए जानेवाले शीशों की कुछ खूबियों के कारण ही संभव हो सका था । ये शीशे 'लेंस' कहलाते हैं और दो तरह के होते हैं । एक तो वे जो बाहर की ओर गोलाई में उभरे हुए अर्थात् 'उत्तल' होते हैं । दूसरेऐसे जो उसी तरह गोलाई में भीतर की ओर धँसे हुए या 'अवतल' होते हैं । गैलीलियो ने

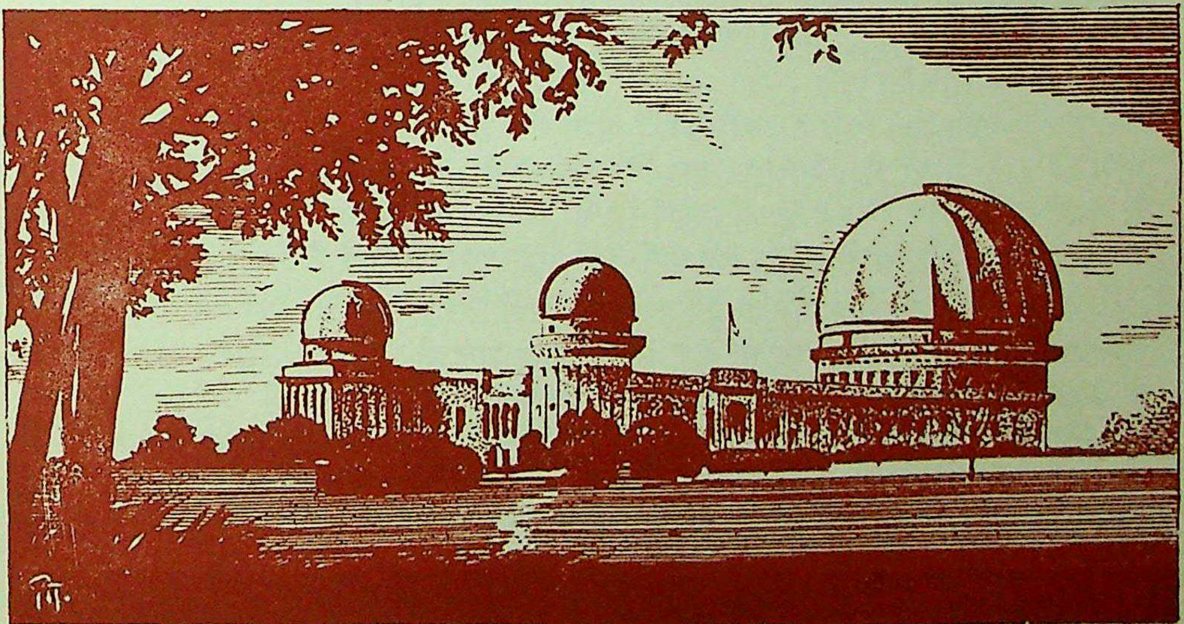

संयुक्त राज्य (अमेरिका) की सुप्रसिद्ध 'यर्किज-वेधशाला' । इसी इमारत के बड़े गुंबद के नीचे १०२ सेंटीमीटर व्यास के लेंस का संसार का सबसे बड़ा लेंसवाला दूरदर्शक स्थापित है (पृ० २१ का चित्र देखिए) ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अपना जो पहला दूरदर्शक बनाया था, उसमें धातु की एक लंबी नली में उसने इन दोनों प्रकार के लेंसों को एक-दूसरे से एक खास दूरी पर एक ही सीध में लगाया था। उसके इस दूरदर्शक में नली के एक सिरे पर उभरा हुआ लेंस लगा था और दूसरे सिरे पर भीतर धँसा हुआ। जैसा कि विज्ञान की पोथियों में शायद तुमने पढ़ा होगा, लेंस का एक गुण यह होता है कि वह वस्तु को कोरी आँख से वह जैसी दिखाई देती है, उससे कहीं बड़े या छोटे आकार की दिखा सकता है ! उसको यह शक्ति प्रकाश की किरणों के उसमें से होकर गुजरते समय अपनी राह से तनिक बिचक जाने के कारण प्राप्त होती है। किरणों के इस तरह बिचक जाने का एक नतीजा यह होता है कि किसी वस्तु को लेंस में से देखने पर उसका जो बिंब हमारी आँखों के सामने बनता है, वह लेंस के उत्तल या अवतल होने के अनुसार, कोरी आँख से देख पड़नेवाले बिंब की अपेक्षा बड़ा या छोटा दिखाई देने लगता है ! लेंसों की इस विशेषता के कारण ही ऐनक, केमरा (फोटो खींचने के यंत्र), सूक्ष्मदर्शी यंत्र तथा दूरदर्शक यंत्र आदि में उनका उपयोग किया गया है। स्वयं कुदरत ने भी जीव-धारियों की देखने की इन्द्रिय 'आँख' में उनका भरपूर उपयोग किया है। अंतर इतना ही है कि आँख का लेंस शीशे का न होकर एक प्रकार के पारदर्शी तरल जैव पदार्थ से बना हुआ होता है।

दूरदर्शक में दो लेंसों का होना आवश्यक है--एक तो वह, जो देखी जानेवाली वस्तु का बिम्ब प्रस्तुत करता है; दूसरा वह, जिसके द्वारा परिवर्द्धित होकर उक्त 'बिम्ब' देखा जाता है। प्रथम लेंस 'अभिदृश्यक लेंस' या 'अभिबिंब काँच' कहलाता है। दूसरे को, जिस पर दर्शक आँख लगाता है, 'अभिनेत्र लेंस' या 'नेत्रक' कहते हैं। 'अभिदृश्यक लेंस' से गुजरकर, रोशनी की किरणें उक्त लेंस के नाभिबिन्दु (फोकस बिन्दु) से किंचित आगे अपना बिंब बनाती हैं। यह बिंब मूल वस्तु से आकार में छोटा तथा उल्टा रहता है। दूसरे लेंस--'अभिनेत्र लेंस'--को साधकर इतनी दूरी पर लगाया जाता है कि उक्त बिंब इस लेंस और उसकी नाभि (फोकस) के बीच में आ जाय। इस योजना के फलस्वरूप अभिनेत्र द्वारा उक्त बिंब का पुनः एक बिंब बनता है। यह बिंब पहले से परिवर्द्धित होता है, यद्यपि मूल वस्तु से वह आकार में फिर भी छोटा तथा उलटा ही होता है। इस प्रकार दूर की वस्तु कोरी आँखों की अपेक्षा हमें बड़ी एवं स्पष्ट दिखाई देने लगती है।

सरल रूप में गैलीलियो के दूरदर्शक का यही सिद्धान्त था। बाद के दूरदर्शकों में कमियाँ दूर करने के लिए कई तरह के सुधार किए गए और उनमें 'अभिनेत्र लेंस' अवतल के बजाय उत्तल लगाया जाने लगा ! सबसे महत्व का काम तो लेंस के 'वर्णदोष' (अर्थात् रोशनी की किरणों के टूटकर कई रंगों में बँटने के कारण पैदा होनेवाली गड़बड़) को दूर करने की दिशा में हुआ। इसका श्रेय हायगेन्स नामक ज्योतिषी को प्राप्त है। अन्य एक वैज्ञानिक फ्राउनहाफर ने भी दूरदर्शक के लेंसों को निर्दोष बनाने में मूल्यवान् योग दिया। ये दोनों अपने जमाने के प्रमुख दूरदर्शक-निर्माता थे।

सबसे बड़े लेंसवाले दूरदर्शक

कहते हैं, गैलीलियो ने अपना जो पहला दूरदर्शक बनाया था, वह दूर की चीजों की कोरी आँख से देख पड़नेवाली शक्ल को केवल तीन गुनी बड़ी करके दिखाता था। बाद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

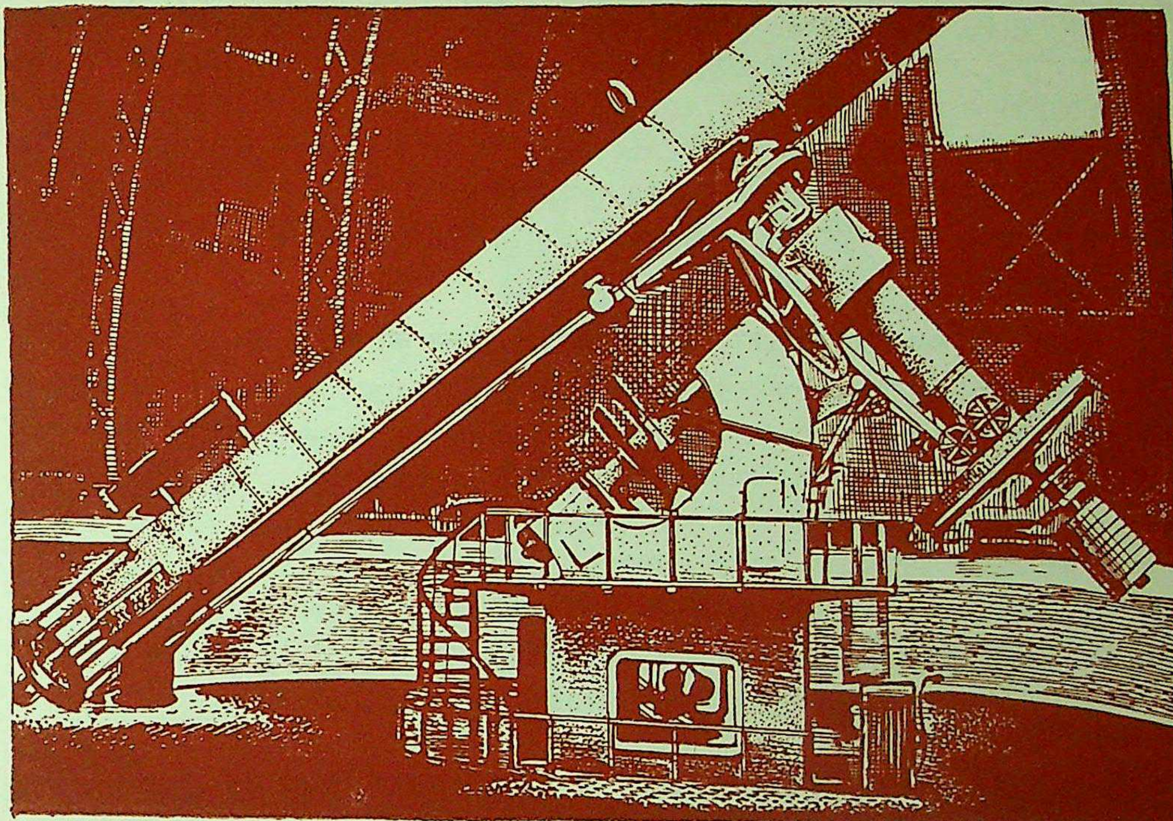

यर्किज-वेधशाला में स्थापित १०२ सेंटीमीटर व्यास के लेंस से युक्त संसार का सबसे बड़ा लेंसवाला दूरदर्शक। चित्र में दूरदर्शक की नली का केवल निचला भाग ही दिखाई दे रहा है (पृ० १६ का चित्र भी देखो)।

4640

में सुधार करके गैलीलियो बत्तीस गुनी तक बड़ी शक्ल दिखानेवाला दूरदर्शक बनाने में भी सफल हुआ था। लेकिन आज के बड़े दूरदर्शकों की शक्ति के मुकाबले में गैलीलियो के ये प्रारंभिक यंत्र मानो खिलौने जैसे ही थे। कारण, आज तो यर्किज-वेधशाला में स्थापित १०२ सेंटीमीटर व्यास के लेंसवाले दूरदर्शक से (जो कि अपनी जाति के दूरदर्शकों में इस समय संसार में सबसे बड़ा है) हजार गुनी से भी बड़ी शक्ल प्राप्त की जा सकती है!

दूरदर्शक को अपनी यह शक्ति एकाएक नहीं मिल गई। उसे इस मंजिल तक पहुँचाने में पिछले तीन सौ वर्षों में न जाने कितने ही लगन से भरे लोगों को एड़ी से चोटी तक का पसीना एक करना पड़ा है। इस संबंध में हायगेन्स और फ्राउनहाफर का उल्लेख तो पहले ही हम कर चुके हैं। इनके अलावा अन्य दो उल्लेखनीय नाम गुनैण्ड और ऐल्वन क्लार्क के हैं। गुनैण्ड ही के बनाए हुए शीशों से पहलेपहल क्रमशः ३० और ३६ सेंटीमीटर व्यास के लेंसवाले दूरदर्शक निर्मित हुए थे, जो कि अपने जमाने के लिए अचरज की वस्तु थे! उधर फ्राउनहाफर ने भी रूस की पुलकोवा-वेधशाला और अमेरिका की हारवार्ड-विश्वविद्यालय-वेधशाला के लिए ३८ सेंटीमीटर व्यास के दो दूरदर्शक बनाए थे। परन्तु इस दिशा में सबसे ऊँची मंजिल तक यदि कोई पहुँचा, तो वह था अमेरिका का महान्

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूरदर्शक-निर्माता ऐल्वन क्लार्क ! उसे ही दुनिया के कई बड़े लेंसवाले दूरदर्शकों को जन्म देने का गौरव प्राप्त है। इस साहसी व्यक्ति ने पहले मिसीसिपी- विश्वविद्यालय के लिए ४६ सेंटीमीटर व्यास का एक लेंस ढाला और तब संयुक्त राज्य की नौ-वेधशाला तथा लिक-वेधशाला के लिए क्रमश: ६६ और ९१ सेंटीमीटर व्यास के महान् लेंसवाले दूरदर्शक निर्मित किए ! लिक-वेधशाला का दूरदर्शक अमेरिका के एक धनकुबेर के १८ लाख रुपए के दान का सुफल था। इस यंत्र ने उस समय तक निर्मित सभी लेंसवाले दूरदर्शकों को पीछे ठेल दिया था।

यर्किज-वेधशाला का १०२ सेंटीमीटर व्यास का महान् यंत्र

परन्तु बड़े लेंस ढालने की क्लार्क की ख्याति यहीं आकर समाप्त नहीं हो गई। १८९७ ई० में अन्य एक अमेरिकन लखपति यर्किज के दान की बदौलत, उसी के नाम पर सुप्रसिद्ध 'यर्किज-वेधशाला' की स्थापना हुई (दे० पृ० १९ का चित्र)। इस वेधशाला के लिए १०२ सेंटीमीटर व्यास के लेंस से सज्जित एक विशाल दूरदर्शक का निर्माण किया गया। यह महान् यंत्र क्लार्क के ही कारखाने में बनकर तैयार हुआ था। लेंसवाले दूरदर्शकों में इस समय यही दुनिया का सबसे बड़ा यंत्र है। इस भीमकाय दूरदर्शक और उससे संबंध रखनेवाली वेधशाला पर कुल बत्तीस लाख रुपए खर्च हुए थे और उसके लेंस की सिल्ली की घिसाई में पूरे तीन वर्ष का समय लगा था। अपनी चौकी सहित इस यंत्रराज का वजन लगभग २६ मीट्रिक टन (अर्थात् ७६ हजार किलोग्राम) है। इसमें केवल लेंस का ही तौल साढ़े पाँच सौ किलोग्राम है ! सबसे अनोखी रचना तो इस यंत्र के भवन के गोल गुबंद की है। वह वेध करनेवाले (अर्थात् आकाशीय पिंडों का निरीक्षण करनेवाले) की मर्जी के अनुसार मनचाही दिशा में घुमाया-फिराया जा सकता है ! इसी तरह भवन की फर्श भी मनचाही ऊँचाई तक ऊपर-नीचे खिसकाई जा सकती है !

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, यर्किज-वेधशाला के इस दूरदर्शक से एक हजार गुनी से भी अधिक बड़ी शक्ल प्राप्त की जा सकती है ! यह यंत्र संसार के गिने-चुने वैज्ञानिक आश्चर्यों में से एक है। इसकी बदौलत आधुनिक ज्योतिष-ज्ञान की प्रगति में अनमोल सहायता मिली है (पृ० २१ पर इसका चित्र देखो)।

रॉस के अर्ल (लॉर्ड) द्वारा उन्नीसवीं सदी में आयरलैंड में संस्थापित १८६ सेंटीमीटर व्यास के दर्पण से युक्त विशाल दूरदर्शक, जिसकी नली में से एक पादरी महोदय सिर पर छाता ताने पैदल चलकर निकल गए थे !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस दूरदर्शक ने लेंसवाले दूरदर्शकों के निर्माण की दौड़ को फिलहाल के लिए इसी हद पर रोक-सा दिया है; कारण, इससे अधिक बड़ा लेंस ढालना अभी वैज्ञानिकों की राय में संभव नहीं है!

दर्पणवाले दूरदर्शक

लेकिन यह तो केवल एक तरह के दूरदर्शक की बात हमने बताई। वस्तुतः गैलीलियो द्वारा प्रचलित लेंसवाले दूरदर्शक के अलावा दूसरी तरह के एक और ढंग के दूरदर्शकों का भी विकास हुआ, जिससे इस यंत्र की शक्ति का दायरा और भी अधिक बढ गया! इस दूसरी तर्ज के दूरदर्शकों में आर-पार दिखाई देनेवाले उत्तल लेंस के बदले एक तरह का अपारदर्शी अवतल दर्पण (अर्थात् भीतर की ओर गोलाई में धँसा हुआ आईना) काम में लाया जाता है। यह दर्पण दूरदर्शक के तलभाग में लगाया जाता है। इस अवतल दर्पण से परावर्तित होकर, दृश्य वस्तु की किरणें दर्पण के सामने निश्चित दूरी पर केन्द्रित हो अपना बिंब बनाती हैं। उक्त बिंब को तिरछे लगे हुए अन्य एक आईने द्वारा परावर्तित करके दूरदर्शक के 'नेत्रक' (अर्थात् आँख लगाकर देखने के सिरे) तक पहुँचा दिया जाता है। इस प्रकार के दूरदर्शक में कई खूबियाँ होती हैं, जो लेंसवाले दूरदर्शकों में नहीं पाई जातीं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि जहाँ लेंसवाले दूरदर्शक के शीशों को एक निश्चित सीमा से अधिक बड़े बनाना संभव नहीं, वहाँ दर्पणों को कम मुटाई के कारण अपेक्षाकृत बहुत बड़े आकार का बनाया जा सकता है। इसीलिए आगे चलकर बहुत बड़े दूरदर्शक इसी ढंग के बनाए गए।

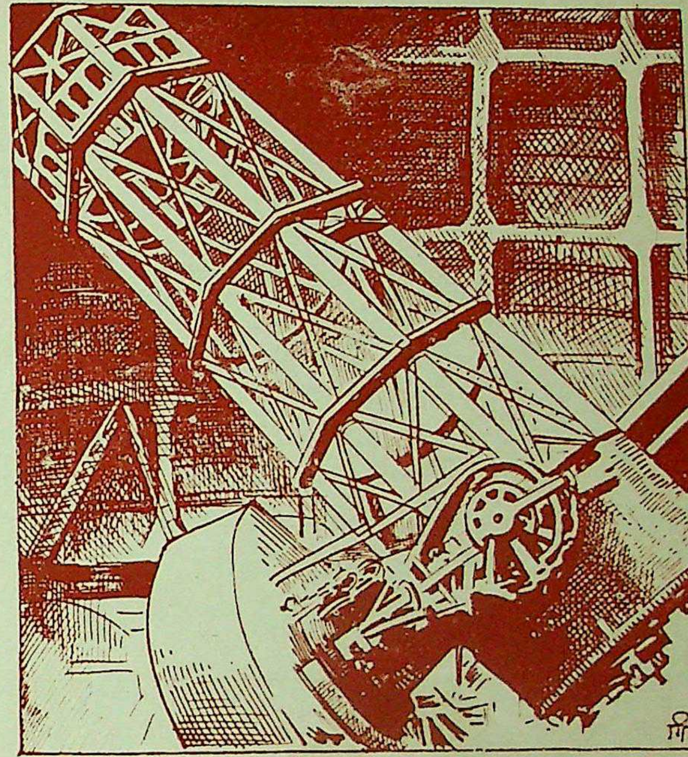

'माउण्ट विल्सन वेधशाला' का १५२ सेंटीमीटर व्यास के दर्पण से युक्त दूरदर्शक, जो २५४ सेंटीमीटर व्यास के वहाँ के महान् यंत्रराज से पूर्व स्थापित हुआ था। इस दूरदर्शक की नली गर्डरों के ढाँचे से बनाई गई थी और जिस धुरी पर वह स्थापित की गई थी, उसकी भी रचना २५४ सेंटीमीटर के महान् दूरदर्शक से मिलती-जुलती थी।

इस तर्ज का पहला दूरदर्शक ग्रेगरी नामक एक गणितज्ञ ने तैयार किया था। उसी में सुधार करके विज्ञानाचार्य न्यूटन ने एक छोटा-सा दर्पणयुक्त दूरदर्शक निर्मित किया था। इस दूरदर्शक के दर्पण का व्यास केवल ढाई सेंटीमीटर था। उक्त दर्पण काँच के बजाय पालिश की गई राँगा-ताँबा की मिश्रित धातु का बना था। न्यूटन के इस प्रारंभिक दूरदर्शक का विकास करके हेडले और हरशेल ने इसी तर्ज के काफी बड़े यंत्र बनाने में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सफलता प्राप्त की। हर्शेल के दूरदर्शक के दर्पण का व्यास १२२ सेंटीमीटर था। तब १८८५ ई० में रास के अर्ल (लार्ड) द्वारा इस प्रकार का एक बहुत बड़ा दूरदर्शक आयलैंड में स्थापित किया गया। इसके दर्पण का व्यास १८६ सेंटीमीटर था! इस दूरदर्शक की नली की लंबाई १५ मीटर थी और वह इतनी चौड़ी थी कि एक पादरी महोदय सिर पर छाता ताने उसमें से होकर इस तरह पैदल निकल गए थे, जैसे किसी सुरंग में से होकर गए हों (पृ० २२ पर इस दूरदर्शक का चित्र देखो)!

माउण्ट विल्सन का महान् यंत्रराज

धातु से बने दर्पण की अपेक्षा काँच के आईने की परावर्तन-शक्ति अधिक होने के कारण, कालान्तर में सभी दर्पणवाले दूरदर्शकों में धातु के बजाय काँच के आईनों का ही प्रयोग किया जाने लगा। इस प्रकार का पहला दूरदर्शक १८७९ ई० में बनकर तैयार हुआ था। उसके दर्पण पर चाँदी की पर्त चढ़ाई गई थी। तब अमेरिका की माउण्ट विल्सन वेधशाला तथा कनाडा की राजकीय वेधशाला के लिए क्रमशः १५२ एवं १८३ सेंटीमीटर व्यास के दो विशाल दर्पणवाले दूरदर्शक निर्मित हुए। इन दोनों यंत्रों की तस्वीरें इसी पृष्ठ पर तथा पृष्ठ २३ पर देखी जा सकती हैं।

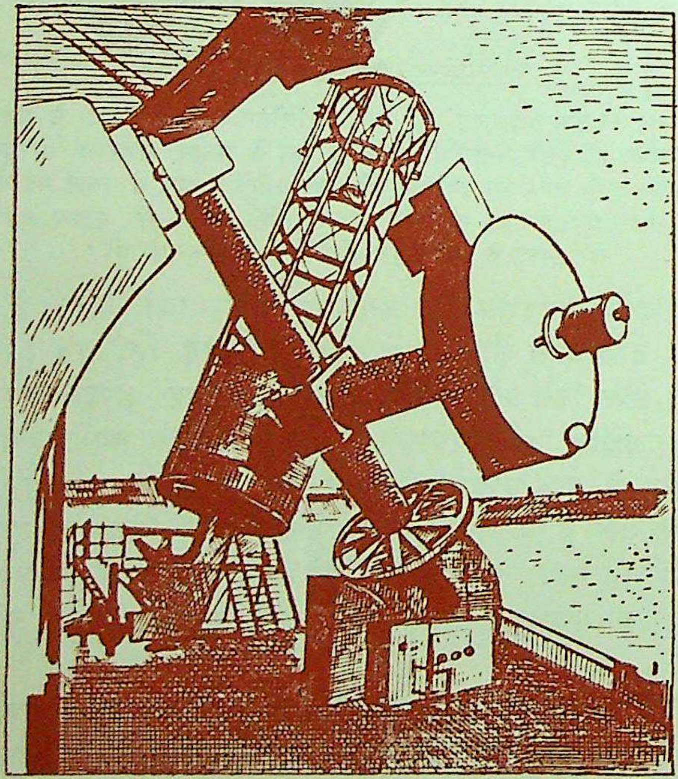

कनाडा की राजकीय वेधशाला में स्थापित १८३ सेंटीमीटर व्यास के दर्पण से युक्त विशाल दूरदर्शक, जो माउण्ट विल्सन के यंत्र से पूर्व अपने समय का सबसे बड़ा दर्पणवाला दूरदर्शक था।

परन्तु अधिकाधिक शक्तिशाली दूरदर्शक बनाने की यह होड़ यहीं पर आकर समाप्त नहीं हो गई। अभी माउण्ट विल्सन एवं कनाडा की वेधशालाओं के दूरदर्शकों को स्थापित हुए कुछ ही दिन बीत पाए थे कि अमेरिका के हूकर नामक एक अन्य धनकुबेर ने २५४ सेंटीमीटर व्यास के दर्पण के निर्माण के लिए आवश्यक धनराशि देने की घोषणा की। फलतः माउण्ट विल्सन वेधशाला के संसारप्रसिद्ध यंत्रराज के रूप में इस युग का वह अद्भुत चमत्कार दुनिया के सामने आया, जिसने आधुनिक ज्योतिष का चेहरा ही बदल दिया!

इस भीमकाय यंत्र ने लाखों-करोड़ों प्रकाश-वर्ष की दूरी तक आसमान के कोनों की खाक छानकर उनकी अद्भुत झाँकी दिखाना शुरू किया। उसकी बदौलत कोई

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

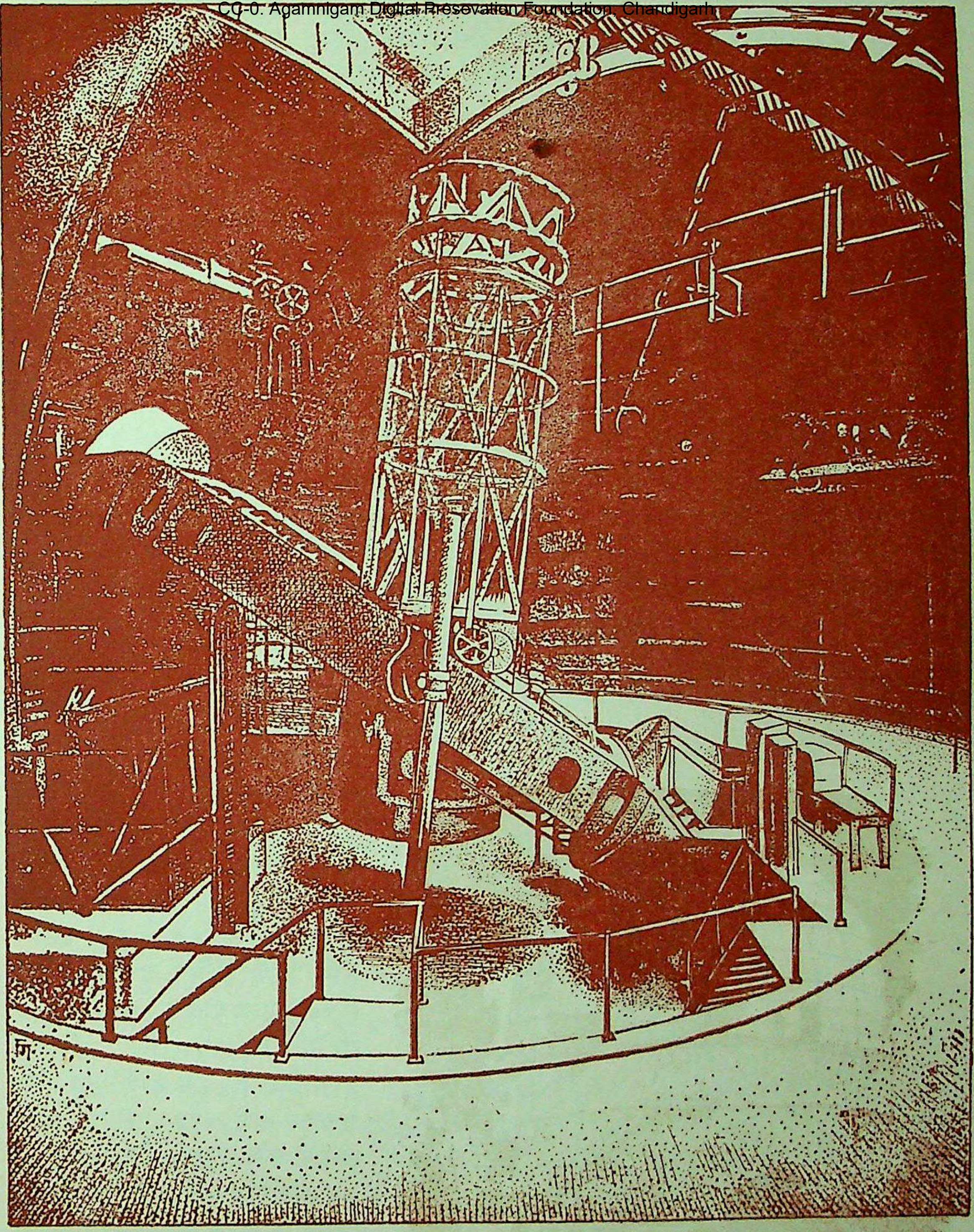

५० करोड़ 'प्रकाश-वर्ष' की दूरी तक अपनी पैनी दृष्टि से आसमान को भेदने में समर्थ, आज के ज्योतिषी का एक महान् यंत्र :: माउण्ट विल्सन वेधशाला का विशाल दूरदर्शक ! इसमें २५४ सेंटीमीटर व्यास का दर्पण लगा है, जिसका तौल साढ़े चार हजार किलोग्राम है ! इस दूरदर्शक की बदौलत डेढ़ अरब तारे हमारे दृष्टि के दायरे में आए हैं, जो कोरी आँखों से नहीं देखे जा सकते। [पृ० २४-२८ पर इसका विवरण पढ़िए ।]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

डेढ़ अरब तारे हमारे दृष्टिक्षेत्र में आ गए ! इस प्रकार कुछ ही वर्षों में गगनमंडल के अनेक अदृष्ट परदे खोलकर उसने हमारे ज्ञान की सीमा को बढ़ाकर कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया ।

इस यंत्रराज की विशालता, शक्ति और पेचीदा रचना का कुछ अंदाज पाने के लिए उसके नापतौल के आँकड़ों और अन्य विवरण पर जरा गौर करो ! साथ ही पृष्ठ २५ पर दी गई उसकी तस्वीर पर भी तनिक ध्यान दो ! यह महान् यंत्र संयुक्त राज्य के पश्चिमी भाग में समुद्र की सतह से १७३९ मीटर ऊँची माउण्ट विलसन नामक पहाड़ी पर ३० मीटर ऊँचे एक विशेष भवन में स्थापित है (इसी पृष्ठ का चित्र देखो) । इस भवन का गुंबद आठ मीटर की ऊँचाई तक तो अचल है । इसके बाद शेष ऊपरी भाग गोलाई में खास ढंग से घुमाया-फिराया जा सकता है । गुंबद की छत में एक लंबी खिड़कीनुमा झिरी-सी है । इस वातायन के इच्छानुसार खुलने और बंद होने की व्यवस्था है । इसी झिरी में से दूरदर्शक की नली को वांछित लक्ष्य की ओर साधकर वेध किया जाता है । भवन की फर्श पर दस मीटर ऊँची सीमेंट कंकरीट की एक चौकी है, जो भीतर से पोली है । इसी चौकी पर दूरदर्शक आरोपित है । यंत्र का मुख्य भाग जुए की शक्ल की एक विशाल धुरी पर स्थापित है । यह धुरी लोहे के दो मजबूत पायों पर तिरछे ढंग से लगी है । धुरी के दोनों सिरों पर लोहे के दो ढोल जैसे लगे हैं । उनमें पारा भरा है । इसी पारे पर वे सिलिंडर तैरते हैं, जिन पर धुरी के चल अंश का बोझ पड़ता है । यह सारा बखेड़ा इसलिए किया गया है कि दूरदर्शक एकदम सचाई से घूम-फिर सके ।

साढ़े चार हजार किलोग्राम वजनी आईना

जैसा कि पृ० २५ के चित्र में तुम देख सकते हो, २५४ सेंटीमीटर व्यास के दर्पण से सुसज्जित अपने ढंग के संसार के इस द्वितीय सबसे बड़े दूरदर्शक की नली ठोस टचूब की शक्ल की न होकर लोहे की धरनों और छड़ों से निर्मित खुले ढाँचे की-सी है । इस ढाँचे का व्यास सवा तीन मीटर और लंबाई करीब साढ़े दस मीटर है । इसी के तलभाग में एक मजबूत वक्सनुमा आधार पर दूरदर्शक का सबसे मूल्यवान् भाग——२५४ सेंटीमीटर व्यास का दर्पण——प्रस्थापित है । इस आईने का तौल लगभग साढ़े चार हजार किलोग्राम है और उसकी मोटाई लगभग ३० सेंटीमीटर है । उसके बीचोंबीच एक गोल छिद्र बना है । इस विशाल दर्पण की रगड़ाई और पालिश करने की क्रिया में पूरे चार वर्ष का समय लगा था ! उस

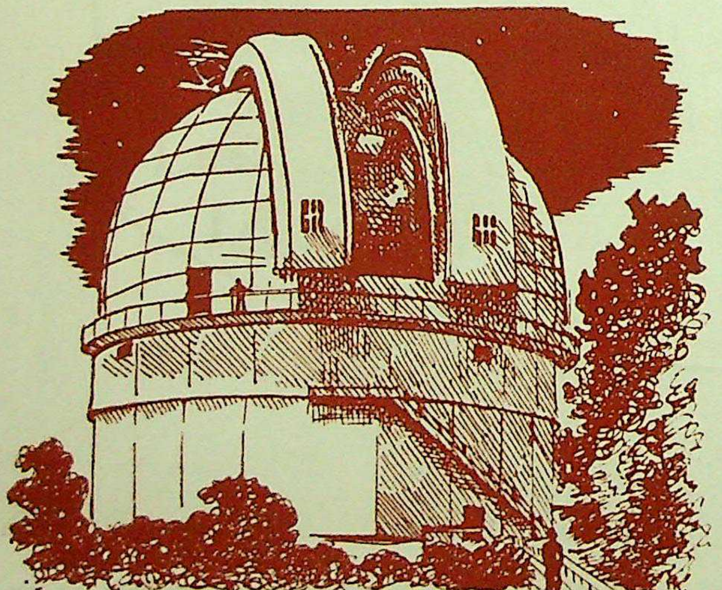

माउण्ट विलसन वेधशाला का विशाल दूरदर्शक-गृह, जिसमें २५४ सेंटीमीटर व्यास के दर्पण से सज्जित महान् यंत्र स्थापित है । इस भवन का गुंबद इच्छानुसार चारों ओर घुमाया जा सकता है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

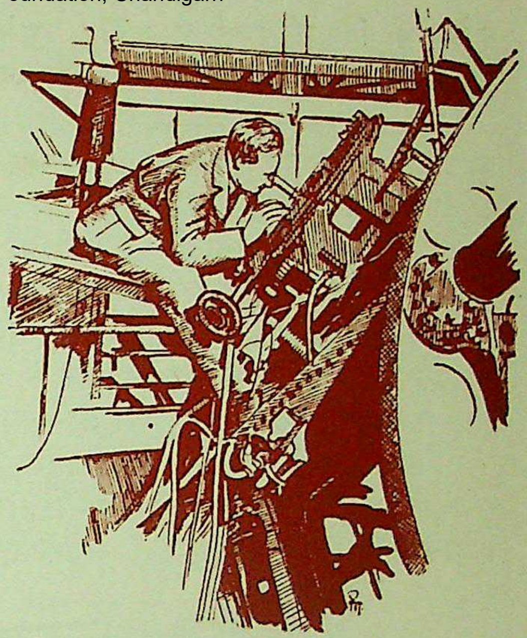

माउण्ट विल्सन वेधशाला के दूरदर्शक के अभिनेत्र लेंस (नेत्रक) पर आँख लगाकर ज्योतिषी आकाश का निरीक्षण कर रहा है।

पर जो चाँदी की पर्त चढ़ाई गई है, उसे साल में दो बार फिर से बदलकर नए सिरे से चढ़ाया जाता है, ताकि उसकी चमक बनी रहे।

यह आईना ही इस यंत्रराज का प्राण है—वह है मानो इस गगनभेदी नेत्र का तारा ! उस पर पड़नेवाली प्रकाश की किरणें परावर्तित हो लगभग १३ मीटर की दूरी पर अपना बिंब बनाती हैं। उक्त बिंब एक समपार्श्व (प्रिज्म) द्वारा ग्रहण किया जाकर दूरदर्शक के 'अभिनेत्र लेंस' पर परिवर्द्धित होता है। यहाँ चाहें तो वह कोरी आँखों से देखा जा सकता है, चाहे फोटो-प्लेट पर उसकी तस्वीर भी उतारी जा सकती है।

दूरदर्शक की नली को आसमान के मनवांछित लक्ष्य की ओर साधने के लिए कितनी ही बिजली की मोटरें, लीवर, आदि इस यंत्र के साथ संलग्न हैं। कितने ही आँकड़े बतानेवाले यंत्र, बैठने के मंच, सीढ़ियाँ, आदि उसके आसपास निर्मित हैं। केवल इस यंत्रराज को चलानेवाले बिजली के तार का गोरखधंदा ही लंबाई में कुल मिलाकर २१ किलोमीटर के लगभग है ! इसीसे इसकी पेचीदगी का अनुमान किया जा सकता है !

इस भीमकाय यंत्र के चल भाग का तौल नब्बे हजार किलोग्राम है ! फिर भी क्या मजाल है कि इसकी गति में जरा भी अंतर आ जाय ! उसमें न तो कहीं घरघराहट या खटखट की आवाज हो पाती, न नाप-जोख में ही बालभर का फर्क आ पाता है। यह यंत्र इतनी बारीकी के काम साथ करता है कि परकार के दस हजारवें भाग की नाप तक वह एकदम सचाई के साथ अपनी धुरी पर घुमाया जा सकता है !

इसकी गगनभेदी दृष्टि का रहस्य क्या है ?

अवश्य ही तुम्हारे मन में यह प्रश्न रह-रहकर उठता होगा कि आखिर इस महान् दूरदर्शक को अपनी यह गगनभेदी दृष्टि क्योंकर प्राप्त हुई है ? क्यों पहले के सभी दूरदर्शकों को पीछे ठेलकर, इस यंत्रराज की तेज निगाह आसमान के उन दूर के हिस्सों की भी झाँकी पाने में सफल हो सकी है, जहाँ से प्रकाश की किरणों को (लगभग तीन लाख किलोमीटर प्रति सैंकड की तीव्र गति से चलते हुए) पृथ्वी तक पहुँचने में ५० करोड़ वर्ष का समय लग जाता है ?

इस प्रश्न के समाधान के लिए यह आवश्यक है कि प्रकाश-विज्ञान के कुछ बुनियादी सिद्धान्तों को तुम ठीक से समझ लो ! यह तो तुम्हें मालूम ही होगा कि कोई भी वस्तु

हमें तभी दिखाई पड़ती है, जबकि उससे प्रतिबिंबित होनेवाले प्रकाश की किरणें हमारी आँखों पर पड़ती और उसका 'बिंब' बनाती हैं। यह 'बिंब' हमारी आँख की पुतली के 'लेंस' के चमत्कार से बनता है। यहाँ हम तुम्हें यह बता दें कि प्रकाश को ग्रहण करनेवाले लेंस की सतह का क्षेत्रफल जितना बड़ा होगा, उतनी ही अधिक रोशनी वह ग्रहण करेगा। इस नियम के अधीन लेंस की सतह को बढ़ाकर किसी भी वस्तु से आनेवाले प्रकाश को अधिक मात्रा में ग्रहण किया जा सकता है और इस प्रकार उसका कहीं अधिक स्पष्ट बिंब प्राप्त किया जा सकता है। अब इस बात पर ध्यान दो कि हमारी आँख की पुतली के लेंस की सतह कितनी है? उसका व्यास है केवल ८.४६ मिलीमीटर! इसके अनुपात में जब हम माउण्ट विल्सन के दूरदर्शक के २५४ सेंटीमीटर व्यास के दर्पण की सतह का अनुमान लगाते हैं, तो ज्ञात होता है कि वह हमारी आँख के लेंस से २५०,००० गुना अधिक बड़ा है! इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि यह दूरदर्शक दूरस्थ नक्षत्र से आनेवाले प्रकाश को ढाई लाख गुना अधिक बटोरकर उसे उतना ही अधिक चमकीला दिखाने की क्षमता रखता है! अपनी इस महान् शक्ति की बदौलत इस यंत्र ने आकाश के ऐसे मंद तारों को भी हमारी निगाह में ला दिया है, जो कोरी आँखों से तो क्या साधारण दूरदर्शक तक की दृष्टि की पकड़ में नही आ पाते हैं! जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, इस गगन-भेदी दृष्टि के चमत्कार से यह यंत्रराज कोई डेढ़ अरब तारे अब तक हमें दरसा चुका है, जबकि पृथ्वी के उत्तरी और दक्षिणी दोनों गोलार्द्धों से कोरी आँखों से देख पड़नेवाले तारों की कुल संख्या छ:-सात हजार से ऊपर नहीं पहुँच पाती!

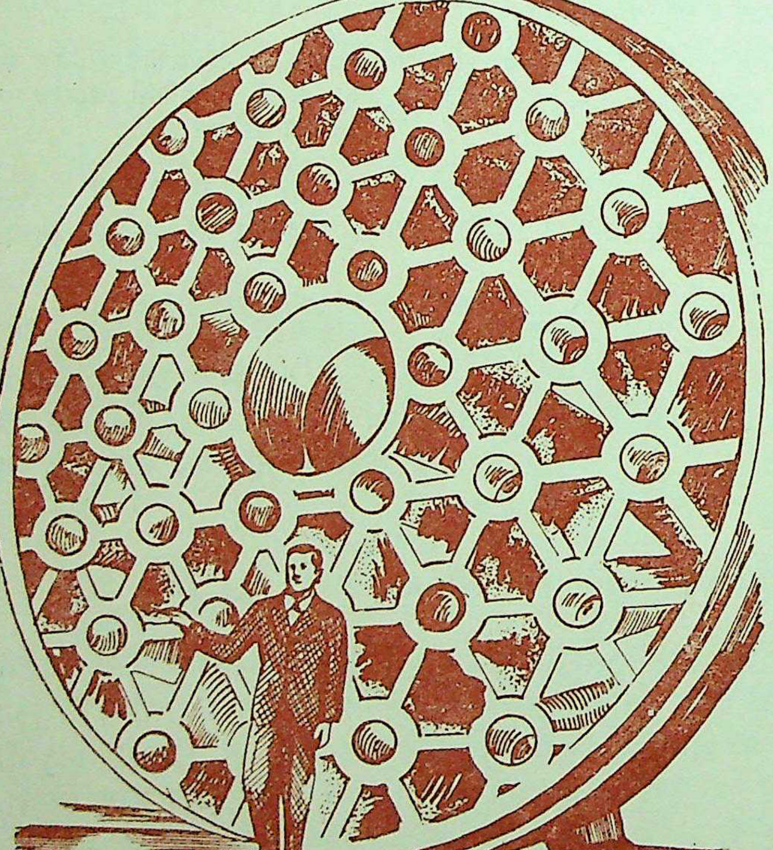

माउण्ट पालोमर के महान् दूरदर्शक के ५०८ सेंटीमीटर व्यास के दर्पण की पीठ का भाग, जिसमें मधुमक्खी के छत्ते जैसे ताकनुमा गड्ढे बने हैं, ताकि इस सिल्ली का वजन कम रहे!

दूरदर्शकों का राजा—माउण्ट पालोमर का यंत्र-सम्राट्

जब माउण्ट विल्सन का २५४ सेंटीमीटर व्यास का दर्पण तैयार हुआ था, तो लोगों ने कहा था कि बस, दूरदर्शक-निर्माण की यही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

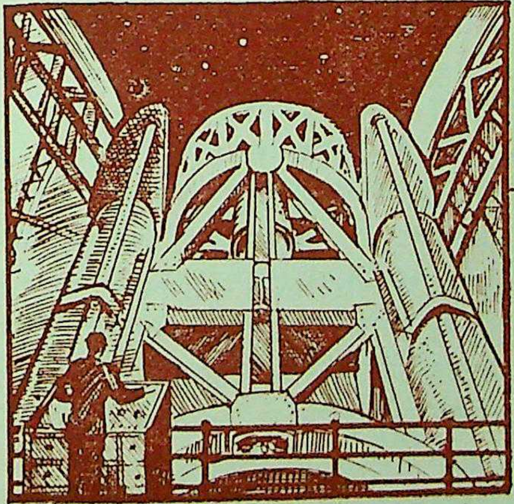

संयुक्त राज्य (अमेरिका) के माउण्ट पालोमर नामक पर्वत-शिखर पर स्थापित संसार का सबसे बड़ा दूरदर्शक। इस महान् संयत्र में ५०८ सेंटीमीटर व्यास का दर्पण लगा है। यह अद्भुत यंत्र अपनी गगनभेदी दृष्टि के मान से ही नहीं, बल्कि विशाल डील-डौल और जटिल रचना के लिहाज से भी एकदम असाधारण और अद्वितीय है। माउण्ट विल्सन के महान् यंत्रराज को पीछे ठेलकर इस गगनभेदी ने हमारी निगाह के दायरे को एक अरब प्रकाश-वर्ष की दूरी तक बड़ा दिया है। अर्थात् वह आसमान को वहाँ तक देखने की क्षमता रखता है, जहाँ से रोशनी की किरणों को (एक सैकंड में लगभग तीन लाख किलोमीटर की गति से चलते हुए) पृथ्वी तक पहुँचने में एक अरब वर्षों का समय चाहिए! चित्र के निचले कोने में इस संयत्र की विशाल नली का दृश्य है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आखिरी हद है ! उनका खयाल था कि इससे बड़ा शीशा ढालना मनुष्य के लिए संभव नहीं है । परन्तु वाह रे वैज्ञानिकों का साहस और उनकी अदम्य ज्ञान की प्यास ! अभी माउण्ट विल्सन के दूरदर्शक को स्थापित हुए कुछ ही वर्ष बीत पाए थे कि उससे दुगुने बड़े दर्पणवाले एक भीमकाय गगनभेदी के निर्माण का बीड़ा उठा लिया गया ! लगभग पंद्रह वर्ष के कठोर परिश्रम और दो करोड़ रुपये के भारी खर्च से तैयार होनेवाला यह यंत्र-सम्राट् दक्षिणी केलिफोर्निया के माउण्ट पालोमर नामक पर्वतशिखर पर एक विशाल वेधशाला-भवन में सिंहासनासीन है ! इस भवन की छबि तुम पृ० १७ पर इस अध्याय के शीर्षक-चित्र में दाहिनी ओर देख सकते हो ! यह दूरदर्शक-गृह समुद्र की सतह से लगभग साढ़े तेरह सौ मीटर की ऊँचाई पर स्थापित है और उसका गुंबद लगभग ४२ मीटर ऊँचा तथा उतना ही चौड़ा है। ५०८ सेंटीमीटर व्यास के दर्पण से युक्त माउण्ट पालोमर के महान् दूरदर्शक के निर्माण की गाथा इस युग के सबसे आश्चर्यजनक वैज्ञानिक करतबों में से एक है ! इस कार्य में ज्योतिष, गणित, भौतिक विज्ञान, रसायन-शास्त्र, इंजीनियरी आदि सभी विद्याओं की श्रेष्ठतम प्रतिभा का उपयोग किया गया है। उसका संपूर्ण विवरण देने के लिए तो अलग से पूरी एक पुस्तिका आवश्यक है। यहाँ थोड़े में ही उसका परिचय पाकर हमें संतोष करना होगा।

१६,००० किलोग्राम वजनी काँच की शिला

जरा सोचो कि जिससे लगभग चार लाख किलोमीटर दूर चन्द्रमा की सतह पर के आठ-नौ मीटर व्यास तक के ज्वालामुखों को देखना संभव हो और एक अरब प्रकाश-वर्ष तक की दूरी के आसमान के अंचल के फोटो जिससे खींचे जा सकते हों, उस अद्भुत यंत्र की बनावट कैसी अनोखी होगी ? सबसे पहले तो उस विशाल दर्पण को ही लो, जोकि इस यंत्र का प्राण है । लगभग १६,००० किलोग्राम या १६० क्विंटल वजन की एक काँच की शिला की कल्पना करो, जिसकी पीठ मधु-मक्खी के छत्ते की तरह कई एक ताकनुमा कोठों और उन्हें एक-दूसरे से जुदा करने-वाले पुश्तों से खचित हो ! यह योजना शिला की पीठ में इस प्रयोजन से की गई है कि इसका वजन अधिक से अधिक घटाया जा सके। वरना पूरी ठोस चट्टान बनी रहने पर तो उसका तौल बढ़कर हो जाता ४०,००० किलोग्राम या ४०० क्विंटल ! इस वजन का शीशा एक तो ढालना ही असंभव होता, फिर यदि वह

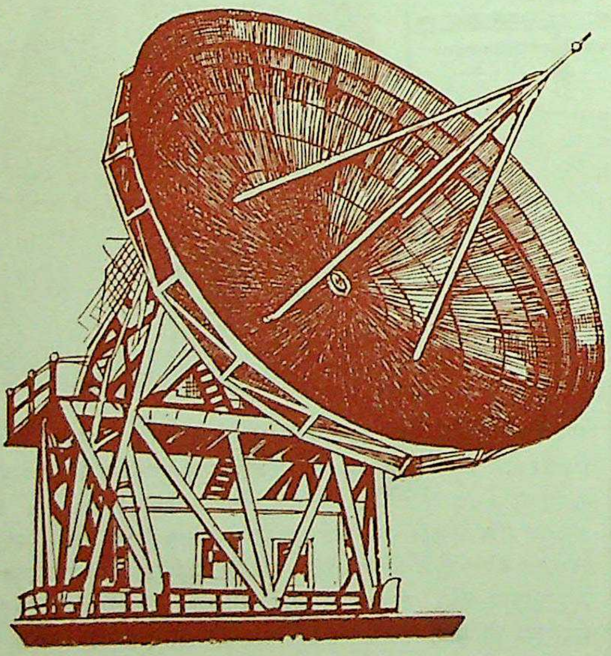

इस रेडियो-दूरदर्शक के सूपनुमा 'एंटिना' पर ध्यान दो ! इससे करोड़ों-अरबों प्रकाश-वर्ष की दूरी से आनेवाली रेडियो-तरंगें ग्रहण की जा सकती हैं (पृ० ३३ पर इसका विवरण पढ़ो) !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
ढल भी जाता, तो उसके ठंडा होने में लग जाता एक युग——लगभग नौ-दस वर्ष का समय ! भला, इतने दिनों तक कौन इन्तजार कर सकता था ? इसीलिए इसे ढालते समय शीशे में ये प्रकोष्ठ और गड्ढे पहले से ही छोड़ दिए गए थे । इस प्रबंध के फलस्वरूप आईने की मुटाई घटकर केवल कुछ सेंटीमीटर रह गई (पृष्ठ २८ का चित्र देखो) ।

परन्तु इतनी किफायत करने पर भी इस शीशे की चट्टान के ठंडा होने में दस महीने का समय लग गया ! इसके बाद उसकी रगड़ाई, घिसाई, पालिश करवाई आदि में तो वर्षों खप गए ! कहते हैं, १९३४ ई० में पहलेपहल उसका शीशा पिघालकर साँचे में छोड़ा गया था, तब से १९४९ ई० में विधिवत् आसमान की ओर उसके साधे जाने तक पूरे १५ वर्ष वैज्ञानिकों को इस सिल्ली के साथ माथापच्ची करते बीते थे ! सबसे अधिक कठिनाई

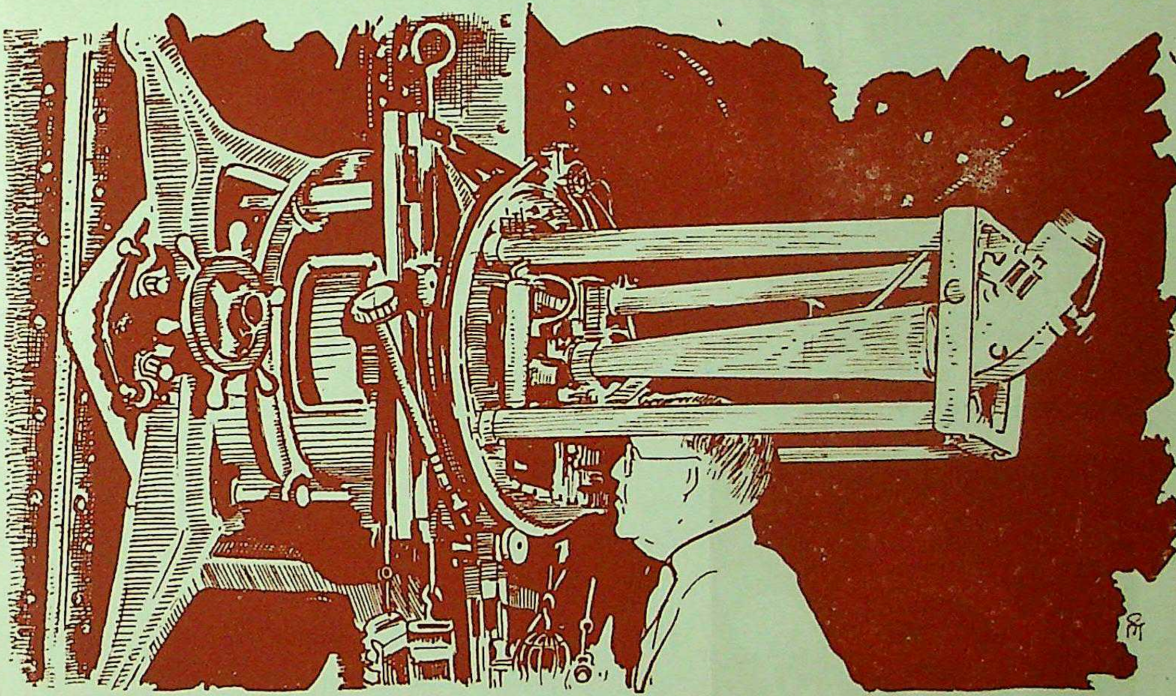

ज्योतिषी का एक महत्वपूर्ण यंत्र 'वर्णक्रमदर्शी', जिससे आकाशीय पिण्डों के वर्णपट-फोटो उतारे जाते हैं । (दे० पृ० ३४ का विवरण) ।

तो इस विशाल सिल्ली को न्यूयार्क राज्य में स्थित उसके ढलाई के कारखाने से ठेठ पश्चिम में हजारों किलोमीटर की दूरी पर माउण्ट पालोमर की वेधशाला तक पहुँचाने में हुई थी ! इसके लिए विशेष प्रकार से पैक करके इसे समुद्र-मार्ग से पनामा-नहर के रास्ते घुमा-फिराकर पश्चिमी तट पर पहुँचाया गया था, ताकि रेल-मार्ग की सुरंगों और पुलों के कारण उसकी यात्रा में कोई बाधा न पड़े !

यंत्र-जाल का अद्‌भुत जमघट

जैसा कि पृ० २९ के चित्र से प्रकट है, माउण्ट पालोमर के इस दिग्गज यंत्र की मुख्य नली, माउण्ट विल्सन के दूरदर्शक की भाँति, इस्पात की धरनों और छड़ों को आपस में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

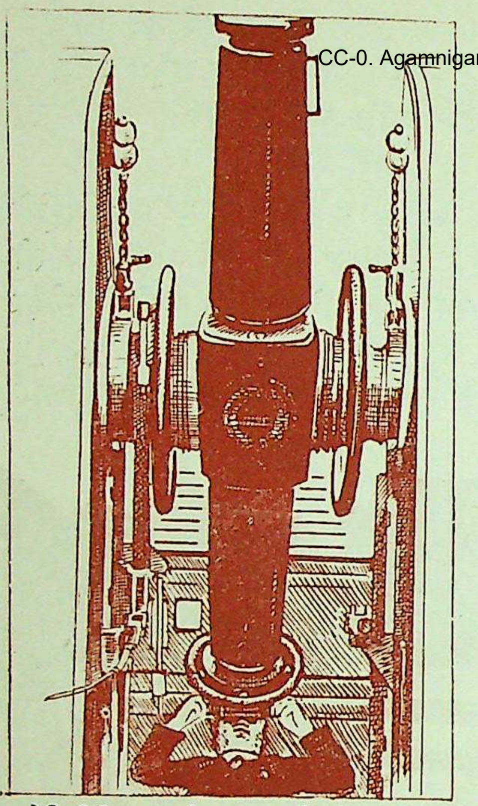

ज्योतिषी के अन्य दो महत्वपूर्ण यंत्र—(ऊपर) याम्योत्तर-वृत्त; (नीचे) एक दूरदर्शक-कैमरा।

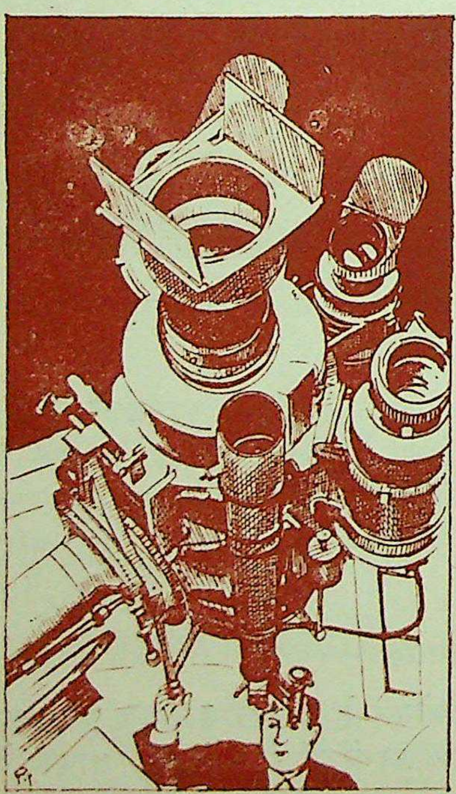

जोड़कर बनाई गई है। नली का यह भारी-भरकम ढाँचा एक विचित्र धुराधार पर टिका हुआ है, जिसकी शक्ल नाल जैसी है। नली की लम्बाई करीब १८ मीटर और चौड़ाई ७ मीटर के लगभग है। इसी के तलभाग में ५०८ सेंटीमीटर व्यास की वह दर्पण-शिला स्थापित है, जोकि दूरदर्शक की आँख है! कहते हैं, दूरदर्शक के चलभाग का कुल तौल ४,५०० क्विंटल (अर्थात् ४५०,००० किलोग्राम) है! यह सारा का सारा वजन खास तौर से रची गई तेल की गद्दियों पर सधा हुआ है, ताकि कम से कम रगड़ के साथ यंत्र एकदम सचाई और आसानी से घुमाया-फिराया जा सके! इन गद्दियों का तेल अपने विशेष दबाव को कायम रखते हुए सदैव बहता रहता है। फलतः इतने भारी यंत्र को घुमाने में केवल उतना ही बल लगता है, जितना एक किलोग्राम वजन उठाने में!

इस पेचीदा यंत्र की क्रिया-प्रक्रिया में मदद देने के लिए कितनी ही छोटी-बड़ी विद्युत्-मोटरें, चालक घड़ियाँ, आँकड़े दरसानेवाले उपकरण आदि नियोजित हैं! कितने ही मंच और कंन्ट्रोल-बोर्ड आदि उसके कार्यकर्त्ताओं के लिए आसपास तथा ऊपर-नीचे बने हुए हैं! उसके एक से दूसरे भाग पर जाने के लिए कहीं लिफ्ट लगे हैं, तो कहीं धरनों के भीतर ही भीतर रास्ते बनाए गए हैं! इस विशाल यंत्र-जाल में जितना बिजली का तार लगा है, उसकी लंबाई कुल मिलाकर १६० किलोमीटर के लगभग है! इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि यह यांत्रिक जमघट कैसा विशाल है!

माउण्ट पालोमर के इस महान् दूरदर्शक की योजना मूलतः जार्ज हेल नामक एक अमेरिकन ज्योतिषी ने की थी। अतः इस विराट् यंत्र का नामकरण उसी ज्योतिषी के नाम पर किया गया है। इस दूरदर्शक की दृष्टि की पहुँच माउण्ट विलसन के २५४ सेंटीमीटर व्यास के दर्पण से युक्त दूरदर्शक की क्षमता से तिगुनी है। फलतः आयतन के लिहाज से उसने हमारे दृष्टिक्षेत्र में आनेवाले विश्व के दायरे का लगभग तीस गुना विस्तार कर दिया है! माउण्ट

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
विल्सन के दूरदर्शक की भाँति, माउण्ट पालोमर के इस यंत्रराज का भी उपयोग अधिकतर आकाशगंगा की बाटी से परे के उन अगणित ब्रह्माण्डों की छानबीन और अध्ययन के काम में ही किया जाता है, जोकि अन्य दूरदर्शकों की पकड़ में नहीं आ पाते हैं।

संयुक्त राज्य (अमेरिका) की तरह पिछले दिनों सोवियत रूस ने भी ज्योतिष के क्षेत्र में बहुत आगे कदम बढ़ाना शुरू किया है। वहाँ कई एक बड़ी वेधशालाएँ स्थापित की गई हैं, जिनमें शक्तिशाली दूरदर्शक लगे हैं। कहते हैं, अमेरिका को मात देने की होड़ में रूस माउण्ट पालोमर के यंत्रराज से भी बड़ा एक दर्पणयुक्त दूरदर्शक बनाने में संलग्न है! देखना है, अधिक से अधिक शक्तिशाली दूरदर्शक बनाने की यह होड़ मानवीय ज्ञान की सीमा को बढ़ाकर कहाँ से कहाँ ले जाती है!

रेडियो-दूरदर्शक

उपर्युक्त दो प्रकार के दूरदर्शकों के अलावा, एक और ढंग के गगनभेदी यंत्रों का भी निर्माण पिछले दिनों किया गया है, जिनकी बदौलत आकाश के कई एक अदृष्ट एवं अभेद्य परदे खुल गए हैं। इन यंत्रों को 'रेडियो-दूरदर्शक' नाम दिया गया है। इस प्रकार के दूरदर्शकों में न तो लेंस होते हैं, न दर्पण, बल्कि रेडियो के 'एरियल' की भाँति केवल एक तार-जंजाल ऊँचे खंभों पर मैदान में फैला रहता है। इस तार-जंजाल को 'एंटिना' कहते हैं। तार का यह जाल दूरदर्शक-गृह में स्थापित विद्युत्-संचालित सूक्ष्मग्राही यंत्रों से संबद्ध रहता है। इस पेचीदा यंत्र-समूह द्वारा आसमान के दूर-दूर तक के क्षेत्रों से आनेवाली रहस्यपूर्ण रेडियो-तरंगों को उसी प्रकार से ग्रहण करके उनकी जानकारी प्राप्त की जाती है, जिस प्रकार से 'राडार' नामक सुप्रसिद्ध यंत्र से बादलों के पीछे छिपे हुए वायुयानों या कोहरे के पीछे अदृष्ट जहाजों की जानकारी पा ली जाती है। वैज्ञानिकों का कथन है कि विश्व के दूर-दूर के भागों से ऐसी रेडियो-तरंगें निरंतर पृथ्वी पर आ रही हैं। ये अदृष्ट रेडियो-स्रोत सामान्य लेंस या दर्पणवाले दूरदर्शकों की निगाह से तो एकदम छिपे रहते हैं, परन्तु रेडियो-दूरदर्शक करोड़ों-अरबों प्रकाश-वर्षों की दूरी तक के ऐसे अदृष्ट क्षेत्रों का पता पाने में समर्थ हैं। इस प्रकार से प्राप्त की गई जानकारी के बल पर आज ऐसे अनेक अदृष्ट आकाशीय पिण्डों एवं क्षेत्रों की परिस्थिति का ज्ञान प्राप्त करना संभव हो गया है, जो कि अन्यथा कदापि हमारी पकड़ में नहीं आ सकते थे (पृ० ३० का चित्र देखो)।

इस समय दुनिया का सबसे बड़ा रेडियो-दूरदर्शक इंगलैंड में 'जोडरेल बैंक' नामक स्थान में प्रस्थापित है। अन्य ऐसे कुछ दूरदर्शक ऑस्ट्रेलिया, सोवियत रूस तथा संयुक्त राज्य (अमेरिका) में भी लगाए गए हैं। ऑस्ट्रेलिया का रेडियो-दूरदर्शक न्यू साउथ वेल्स में स्थापित है। इसी रेडियो-दूरदर्शक ने अरबों वर्ष की दूरी से अपनी विद्यमानता का संदेश देनेवाले 'क्वासार' नामक रहस्यपूर्ण शक्ति-स्रोतों का पहलेपहल पता लगाया था, जिनकी कि चर्चा हम आगे चलकर करेंगे।

ज्योतिषियों के अन्य महत्वपूर्ण यंत्र

ज्योतिषी के लिए सबसे महत्वपूर्ण और मूल्यवान् यंत्र बेशक दूरदर्शक ही है, तथापि अकेले दूरदर्शक से ही आज के दिन उसका काम नहीं चलता। आधुनिक ज्योतिषी को

वस्तुतः अपने कार्य में और भी कई एक महत्वपूर्ण यंत्रों से मदद लेना पड़ती है। इनमें सबसे उल्लेखनीय हैं——'वर्णक्रमदर्शी' (स्पेक्ट्रोस्कोप) और 'दूरदर्शक-कैमरा' यंत्र। 'वर्णक्रम-दर्शी' की मदद से प्रकाश की किरणों को अलग-अलग वर्णों (रंगों) की पट्टियों में बाँटकर आकाशीय पिंडों की रासायनिक बनावट, भौतिक परिस्थिति आदि का सूक्ष्म अध्ययन किया जाता है। 'दूरदर्शक-कैमरा' की बदौलत ही विविध आकाशीय कौतुकों के वे परिवर्द्धित फोटो-चित्र उपलब्ध हो पाए हैं, जो कि ज्योतिष-ज्ञान के अध्ययन एवं प्रचार में आज अनमोल सहायता दे रहे हैं। ये कैमरा दूरदर्शक एवं वर्णक्रमदर्शी यंत्रों के साथ जोड़ दिए जाते हैं। फलतः जैसे-जैसे ज्योतिषी उक्त यंत्रों की मदद से वेध करता है, वांछित क्षेत्र के चित्र तथा वर्णपट-चित्र फोटो-प्लेट या फिल्म पर अपने आप ही उतरते चले जाते हैं। ज्योतिषियों के सहायक यंत्रों में 'यामोत्तर-वृत्त' का भी काफी महत्व है, जिसके द्वारा पृथ्वी की बदलती हुई स्थिति के लिहाज से आकाशीय पिंडों की स्थिति एवं क्षितिज से उनकी ऊँचाई का मान निर्धारित किया जाता है [पृ० ३१-३२ पर इन यंत्रों के चित्र देखो]।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संसार की प्रमुख वेधशालाएँ

आज के युग की महत्वपूर्ण वेधशालाएँ अभी अधिकतर पश्चिमी देशों में ही देखने को मिलती हैं। इनमें संयुक्त राज्य (अमेरिका) सबका अगुआ है। वहाँ की माउण्ट पालोमर, माउण्ट विल्सन, यर्किज और लिक वेधशालाएँ संसार भर की ज्योतिषीय अनुसन्धानशालाओं की सिरमौर हैं! यहीं दुनिया के सबसे बड़े दर्पणवाले और लेंसों से युक्त दूरदर्शक स्थापित हैं। इन विज्ञान-मंदिरों द्वारा ग्रहों, नक्षत्रों, तारापुंजों और नीहारिकाओं के अद्वितीय फोटो-चित्र लिए गए हैं एवं उनके बारे में अनमोल ज्ञान-सामग्री प्राप्त की गई है। वस्तुतः विश्व के बारे में मनुष्य आज जो कुछ जानता है, उसकी ज्ञानराशि बहुत अंशों में इन्हीं वेधशालाओं के गगनभेदी यंत्रों की देन है। अमेरिका में इनके अलावा और भी कई एक उत्तम वेधशालाएँ हैं——जैसे कि 'हारवार्ड-विश्वविद्यालय-वेधशाला', 'संयुक्त राज्य नौ-वेधशाला', 'फ्लैगस्टाफ-वेधशाला', 'ग्रिफिथ-वेधशाला' और 'मिसीसिपी-विश्वविद्यालय-वेधशाला'।

अमेरिका से बाहर सबसे प्रसिद्ध वेधशालाएँ ग्रेट ब्रिटेन, सोवियत रूस, फ्रांस, जर्मनी, कनाडा, भारत, ऑस्ट्रेलिया और दक्षिण अफ्रीका में हैं। इनमें ब्रिटेन की 'ग्रिनिच-वेधशाला', कनाडा की 'राजकीय वेधशाला', रूस की 'पुलकोवा' और 'क्रीमियन वेधशाला', फ्रांस की 'पेरिस-वेधशाला' तथा जर्मनी की 'पोत्सदाम' एवं 'हाइडलबर्ग वेधशाला' उत्तम दूरदर्शकों से युक्त हैं। आधुनिक ज्योतिष-ज्ञान को आगे बढ़ाने में इन वेधशालाओं का योगदान महत्वपूर्ण है। विशेषकर, सोवियत रूस ने तो कई बातों में अमेरिका तक से बाजी मार ली है। उसने अमेरिका से पहले ही चन्द्रमा पर यंत्रसज्जित रॉकेट उतारकर तथा मंगल और शुक्र तक अपने यान प्रेषित करके महत्वपूर्ण नए कदम बढ़ाए हैं!

भारत में अभी केवल तीन आधुनिक वेधशालाएँ स्थापित हो पाई हैं——एक उत्तर भारत में नैनीताल के निकट, और अन्य दो दक्षिण भारत में क्रमशः कोड़ेकनाल तथा हैदराबाद में! इन वेधशालाओं के दूरदर्शक अमेरिका-योरप के यंत्रों से छोटे होने पर भी काफी शक्तिशाली हैं और उनकी मदद से बड़ा उपयोगी अनुसंधान-कार्य हो रहा है। विशेषकर, सूर्य के अध्ययन-संबंधी कोड़ेकनाल के कार्य को तो संसार भर के ज्योतिष-क्षेत्र में मान्यता प्राप्त हुई है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यदि पूछा जाय कि आकाश के कौतुकों में सबसे तेजस्वी और आश्चर्यजनक कौन-सी वस्तु दिखाई देती है, तो निश्चय ही तुम्हारा उत्तर होगा—सूर्य ! और, तुम्हारा यह उत्तर ठीक ही होगा । क्योंकि न केवल आज ही, बल्कि लाखों वर्षों से लोग अपने सिर पर तमतमाते हुए आग और रोशनी के इस प्रचण्ड गोले को देख-देखकर अचरज में डूबते-उतराते रहे हैं । इस गोले के महान् तेज के आगे सब कोई अपना शीश झुकाते और उसकी आवश्यकता तथा महत्व समझते हुए तरह-तरह से उसका गुणगान करते हैं ! यहाँ तक कि कहीं-कहीं तो परमात्मा की जीती-जागती मूर्ति मानकर सुबह-शाम उसकी पूजा भी की जाती है !

हमारे जीवन का सबसे बड़ा सहारा

यह प्रचण्ड आग का गोला सचमुच है भी कैसा अनोखा चमत्कार ! उसके प्रकट होते ही अँधेरे का तो नामोनिशान भी नहीं रहता ! उसके आगे दूसरी सब रोशनियाँ एकदम फीकी पड़ जाती हैं । चन्द्रमा तक का चेहरा मलिन हो जाता है और तारे तो दृष्टि से ओझल हो जाते है ! उधर उसके जादूभरे स्पर्श से जीवन का मानो ज्वार-सा उमड़ पड़ता है ! हवा में गरमी आने लगती है और रात की ठंडक में ठिठुरे हुए पौधों एवं जीवधारियों की जी की कली खिल उठती है । सचमुच ही प्रकाश और गरमी, जीवन और जागृति का यही हमारा सबसे बड़ा सहारा है ! यही हमारा पालक, पोषक और

जिन्दगी का उजाला है ! कहा जा सकता है कि यदि धरती हमारी माँ है, तो सूर्य हमारा परम पूजनीय पिता है। अगर वह न रहे, तो हम न केवल अनाथ हो जाएँगे, बल्कि हमारी जिन्दगी ही समाप्त हो जायगी ! सारी हरियाली मिट जायगी ! पेड़-पौधे मुरझा जाएँगे ! प्राणियों का जीना दूभर हो जायगा ! सागर का सारा जल जमकर ठोस बर्फ बन जायगा ! बादलों की सारी भाप मिटकर हिम के रूप में धरती पर छा जायगी ! यही नहीं, वैज्ञानिकों का तो कहना है कि इसके मिटते ही तीन दिन के भीतर शायद पृथ्वी का यह गोला टूक-टूक होकर अपना अस्तित्व ही खो बैठेगा !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अतः इस महान् ज्योति का जितना भी मोल हम आँकें, वह कम ही है ! उसकी बड़ाई का जितना भी बखान करें, थोड़ा ही है। हमारी सबसे पुरानी धार्मिक पोथी ऋग्वेद में सूर्य को इस जगत् की आँख (चक्षु) और विश्व की आत्मा कहकर पुकारा गया है। इसका आध्यात्मिक अर्थ जो कुछ भी हो, वैज्ञानिक अर्थ में भी इस भूमण्डल के लिए उसका यह बखान अक्षरशः सही ही है !

सूर्य भी एक नक्षत्र या तारा है

परन्तु हमारे जीवन के लिए इतना महत्वपूर्ण होते हुए भी यह ज्योतिपुंज कोई देवता नहीं है—वह केवल एक तारा है ! वह भी वैसा ही एक नक्षत्र है, जैसे कि रात के अँधेरे में हजारों की संख्या में नित ही आसमान में झिलमिलाते दिखाई देते हैं ! अंतर है तो यही कि यह ज्योति हमारे बहुत समीप है ! वह हमसे औसतन् चौदह करोड़ पच्चानवे लाख किलोमीटर की दूरी पर है, ऐसा वैज्ञानिकों का कहना है। इस दूरी से रोशनी को धरती तक पहुँचने में लगभग आठ मिनट का समय लगता है। इसकी तुलना में सूर्य के बाद आकाशमंडल के दूसरे सबसे नजदीकी तारे की दूरी का जरा अनुमान करो ! उक्त तारा 'किन्नर-समूह' का एक अति मंद नक्षत्र है। पृथ्वी से इस तारे की दूरी ४०,०००,०००,०००,००० किलोमीटर आँकी गई है ! इतनी दूर से रोशनी को पृथ्वी तक पहुँचने में सवा चार वर्ष का समय लगता है ! इससे तुम अंदाज लगा सकते हो कि सूर्य का अपना निजी साम्राज्य या अधिकार-क्षेत्र (जहाँ तक किसी अन्य नक्षत्र का दबदबा नहीं है) कितनी दूरी तक फैला हुआ है !

लेकिन इतने लंबे-चौड़े इलाके का एकछत्र सम्राट् होकर भी सूर्य बहुतेरे तारों की तुलना में एक मामूली मध्यम श्रेणी का नक्षत्र है। जैसा कि आगे चलकर अधिक विस्तारपूर्वक तुम जान सकोगे, सूर्य एक 'पीला तारा' है। वह लाल तारों से तो अधिक उष्ण और चमकीला है, परन्तु नीले और श्वेत तारों से कम प्रकाशमान है ! उधर आकार में भी अनेक दिग्गज तारों की तुलना में वह इतना साधारण है कि नक्षत्र-समाज में उसकी अधिक पूछ नहीं हो सकती ! फिर आकाशगंगा-रूपी बाटी के मध्यभाग में न होकर, वह उसकी परिधि के किनारे के इलाके में एक कोने में अवस्थित है ! इस दृष्टि से भी उसका स्थान विश्व-ब्रह्माण्ड में नगण्य है ! संभवतः मंदाकिनी के केन्द्रीय भाग से देखनेवालों को वह या तो दिखाई ही नहीं पड़ता होगा, या फिर केवल सुई की नोक जैसे एक अत्यन्त मंद बिन्दु-जैसा देख पड़ता होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परन्तु आकार-प्रकार में साधारण होकर भी सूर्य एक विशेषता के नाते निश्चय ही नक्षत्रों की मंडली में गर्व और गौरव के साथ अपना सिर ऊँचा करने का अधिकारी है ! उक्त विशेषता है--एक विशाल ग्रह-परिवार की गद्दी पर उसका आसीन होना, साथ ही पृथ्वी जैसे अपने अनूठे ग्रह पर जीवन के विकास का अद्भुत सौभाग्य पाना ! ज्योतिषियों का कहना है कि तारों की दुनिया में यह सौभाग्य विरले नक्षत्रों को ही मिला करता है !

लाखों किलोमीटर लंबी लपटें लपलपानेवाली प्रचंड भट्टी

यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि अन्य सभी नक्षत्रों की तरह सूर्य भी आग और प्रकाश का एक गोला मात्र है--वह ऐसा कोई लोक नहीं, जहाँ पृथ्वी जैसे पहाड़, मैदान आदि हों ! उसे तुम भीषण ताप से तमतमाती हुई एक विशाल भट्टी मात्र समझो ! इस भयावनी भट्टी में से लाखों किलोमीटर लंबी अग्नि-ज्वालाएँ निरन्तर लपलपाती रहती हैं ! ये लपटें कभी-कभी तो सूर्य से विलग होकर ज्वाला-मेघ की भाँति आसमान में चालीस-पचास लाख किलोमीटर तक ऊपर उठ जाती और अंत में शून्य में विलीन हो जाती हैं ! इस प्रलयंकर भट्टी के भीतर क्या कुछ हो रहा है, इसे देखने-परखने का कोई साधन हमारे पास नहीं ! केवल अनुमान द्वारा वैज्ञानिकों ने उसकी एक झाँकी कल्पित की है। कहते हैं, सूर्य के अंतराल में जो प्रलय मच रहा होगा, उसका कुछ अंदाज पिछले दिनों विस्फोटित किए गए परमाणु-बमों (एटम तथा हाइड्रोजन बम) की तांडवलीला से लगाया जा सकता है। परन्तु एक साथ कई लाख ऐसे बम फूटें, तब भी सूर्य के भीतर धधकने-वाली भट्टी की गरमी, शक्ति और रुद्रलीला की बराबरी वे कर सकेंगे, इसमें वैज्ञानिकों को संदेह ही है !

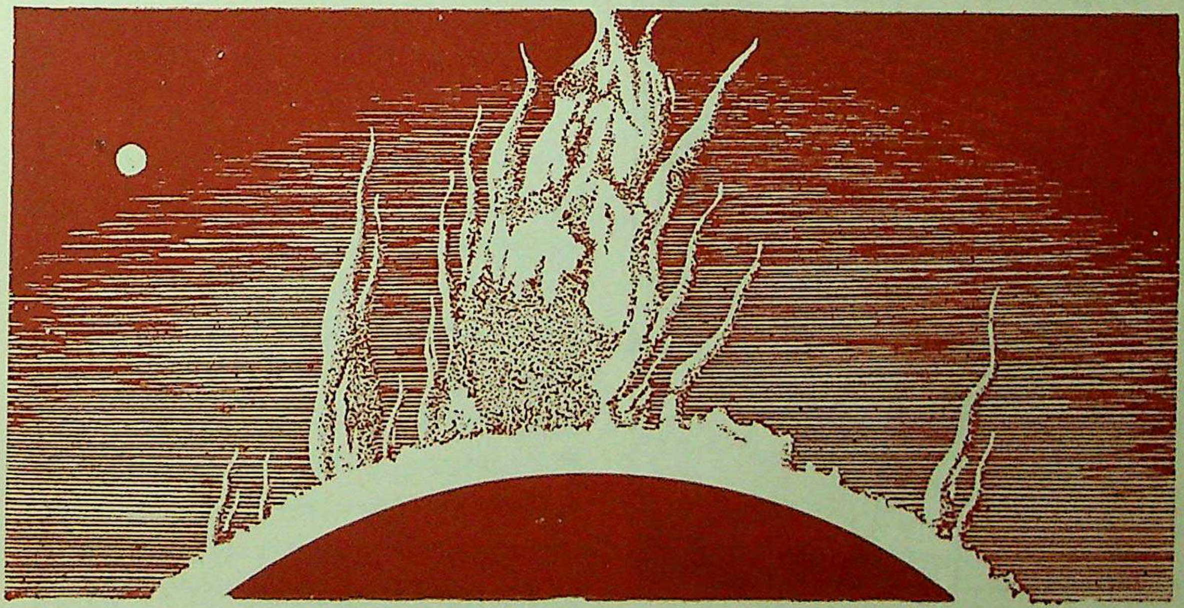

सूर्य की धधकती हुई भट्टी से लपलपानेवाली ज्वालाओं की एक झाँकी। इन लपटों की लंबाई लाखों किलोमीटर तक की होती है ! चित्र के बाएँ कोने में दिग्दर्शित गेंदनुमा पृथ्वी के आकार से इन ज्वालाओं की तुलना करो।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

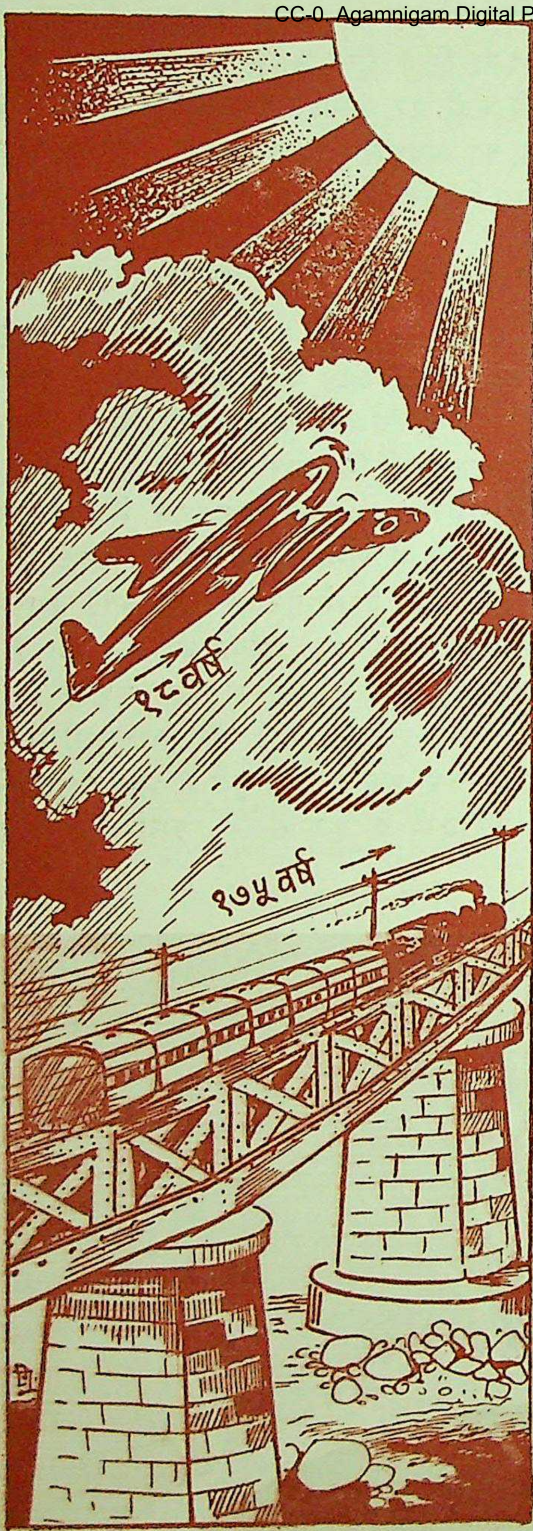

पृथ्वी से सूर्य के फासले का कुछ अनुमान इन कल्पनाओं के पैमाने से लगाया जा सकता है (पृ० ३८-३९ का मैटर पढ़ो)!

सूर्य की इस प्रलयंकर भट्टी की सतह पर का ताप तो केवल पाँच-छः हजार डिग्री सेंटीग्रेड से लेकर दस हजार सेंटीग्रेड तक ही है। परन्तु उसके केन्द्र में कदाचित् चालीस-पैंतालिस करोड़ सेंटीग्रेड तक की असाधारण गरमी का बोलबाला है, ऐसा वैज्ञानिकों का अनुमान है ! ऐसे भयंकर ताप की कल्पना क्योंकर की जाय ? शायद तुमने लोहार की भट्टी में पिघलते हुए लोहे को देखा होगा। वह कुछ ही हजार डिग्री सेंटीग्रेड का ताव पाने पर अपनी द्रव अवस्था छोड़कर गैस में भी बदल सकता है ! अब अंदाज करो कि सूर्य के अंतराल के उस तप्त पदार्थ की स्थिति भला क्या होगी, जो कि करोड़ों डिग्री सेंटीग्रेड ताप की आँच में तिलमिला रहा है ? निश्चय ही सूर्य का बाहर-भीतर का सारा द्रव्य भीषण दबाव की स्थिति में तमतमाती हुई तप्त गैसों से बना है, तभी तो उसकी भट्टी में से लाखों किलोमीटर लंबी लपटें अपनी कराल जीभें निरन्तर लपलपाती रहती हैं !

चौदह करोड़ पच्चानवे लाख किलोमीटर की दूरी का अर्थ क्या है ?

हमने कहने को तो कह दिया कि सूर्य पृथ्वी से औसतन् चौदह करोड़ पच्चानवे लाख किलोमीटर की दूरी पर है। परन्तु क्या हमने कभी यह भी अंदाज लगाया कि इस दूरी के क्या अर्थ होते हैं ? इसके लिए जब कल्पना का सहारा लिया जाता है, तभी समझ में आता है कि यह फासला कितना है ! उदाहरण के लिए, कल्पना करो कि किसी ने एक हजार किलोमीटर प्रति घंटा की रफ्तार से उड़नेवाले जेट-वायुयान में बैठकर सूर्य तक पहुँचने की ठानी ! इस तेज गति से लगातार उड़ने पर चौदह करोड़ पच्चानवे लाख किलोमीटर का उक्त फासला

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तय करने में भला कितना समय लगेगा ? लगभग अठारह वर्ष ! और इसी तरह यदि लगभग सौ मील प्रति घंटे की चालवाली रेलगाड़ी से उक्त यात्रा की जाय, तो कितना वक्त इसके लिए चाहिए ? लगभग १७५ वर्ष ! (पृ० ३८ का चित्र देखो ।)

इस फासले का अंदाज दिमाग में बैठाने के लिए हम कई और पैमानों से काम ले सकते हैं । उदाहरण के लिए, यदि हम यह कल्पना करें कि हमने पृथ्वी से हाथ बढ़ाकर सूर्य को छूने का प्रयत्न किया, तो जिस गति से शरीर में हमारे मस्तिष्क को स्पर्शज्ञान होता है, उसी गति से सूर्य के स्पर्श का हमें भान होने में लगभग १६० वर्ष लग जाएँगे ! इसी तरह सूर्य पर की आवाज को पृथ्वी तक पहुँचने में चाहिए लगभग १४ वर्ष, यदि उक्त आवाज ध्वनितरंगों की सामान्य गति से चलकर हम तक पहुँच पाए !

तो देखा तुमने कि सूर्य इतना नजदीक जान पड़ने पर भी दरअसल हमसे कितना कितना अधिक दूर है ?

तेरह लाख पृथ्वियों के बराबर गोला

यह तो हुई पृथ्वी से सूर्य की दूरी की बात ! अब जरा पृथ्वी के मुकाबले में उसके आयतन, तौल, घनत्व आदि के आँकड़ों पर भी ध्यान दो ! शायद तुम्हें मालूम होगा कि पृथ्वी का व्यास लगभग १२,८०० किलो-टर है और उसकी परिधि है करीब ४०,००० किलोमीटर ! इसके मुकाबले में लगभग १,४००,००० किलोमीटर व्यास और ४,३००,००० किलोमीटर की परिधिवाले सूर्य के गोले का विशाल आकार अपने मन में बैठाओ ! तुम्हें यह जानकर हक्का-बक्का रह जाना होगा कि सूर्य के इस विशाल गोले की बराबरी का पिंड बनाने के लिए पृथ्वी के आकार के १,३३३,००० गोले चाहिएँ !

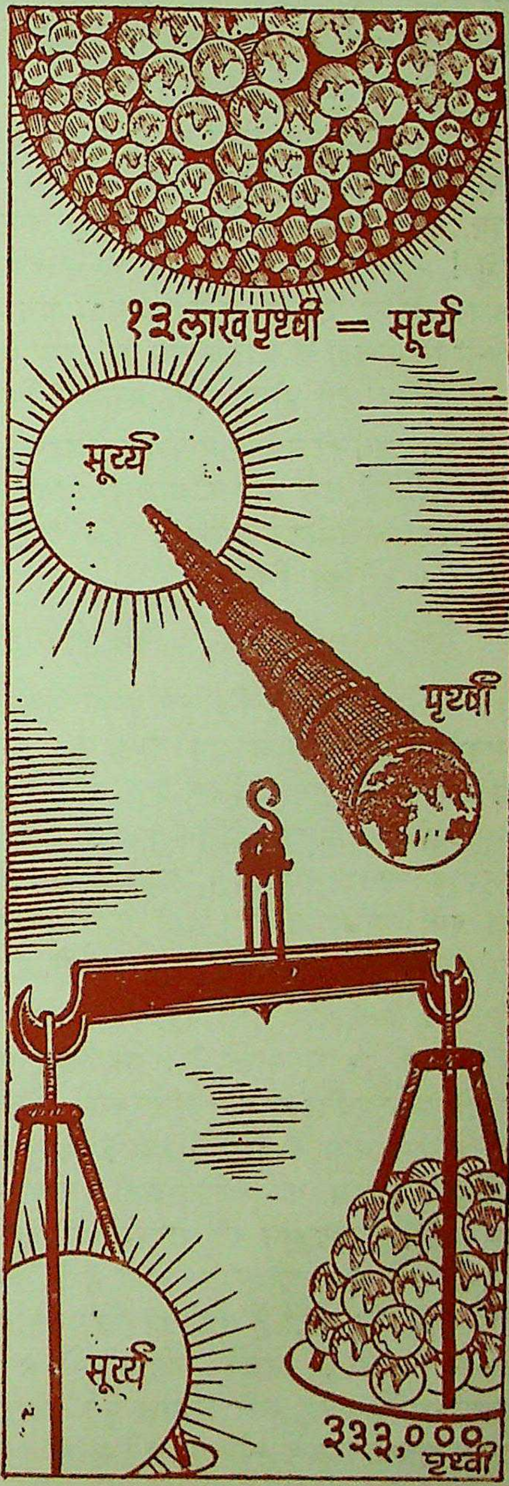

पृथ्वी के पैमाने से सूर्य के आयतन एवं तौल का अनुमान तथा उसकी प्रबल आकर्षणशक्ति का अंदाज (पृ० ३९-४० का मैटर पढ़ो) ।

यह इतना बड़ा आकार होगा कि उसके भीतर चन्द्रमा तक का हमारे आसपास का सारा आसमान समा जाने पर भी जगह खाली बच रहेगी ! इस विशाल गोले के आयतन का आँक है--१,३८६,०००,०००,०००,०००,००० घन-किलोमीटर !

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

परन्तु इतना लंबा-चौड़ा होने पर भी सूर्य पृथ्वी से केवल तीन लाख तैंतीस हजार गुना ही भारी है ! इसका अर्थ यह हुआ कि यदि पृथ्वी के वजन के बाट से उसे तौला जाय, तो इस काम के लिए पृथ्वी के वजन के तीन लाख तैंतीस हजार गोले आवश्यक होंगे ! सूर्य के इस कम वजन का कारण यह है कि वह पृथ्वी की तरह ठोस न होकर एकदम गैसीय अवस्था में है । उसका घनत्व पृथ्वी के घनत्व का एक-चौथाई है । फिर भी अपनी विशालता के कारण सूर्य का वजन २,०२९,९६८,०००,०००,०००,०००,०००,०००,००० मीट्रिक टन होगा, ऐसा अनुमान किया जाता है !

उधर सूर्य की प्रचण्ड आकर्षणशक्ति का अंदाज यह है कि जिस शक्ति के पाश में पृथ्वी सूर्य के साथ बँधी है, उसे यदि फौलाद की शक्ति में हम बदलना चाहें तो इसके लिए सूर्य के साथ साढ़े नौ हजार किलोमीटर व्यास के पौने पंद्रह किलोमीटर लंबे लौहदंड में हमें उसे कसना होगा (दे० पृ० ३९ का चित्र) ।

सूर्य की बाहरी-भीतरी बनावट

हम बता चुके हैं कि सूर्य पृथ्वी जैसा ठंढा और ठोस पिंड नहीं है । वह प्रचंड रूप से तमतमाती हुई गैसों का एक गोला है। इस गोले के मध्यवर्ती केन्द्रीय भाग का ताप सतह की अपेक्षा कई गुना अधिक है । उक्त केन्द्रीय भाग की झाँकी पाने का कोई साधन हमारे पास नहीं है । केवल भौतिक विज्ञान एवं गणित के नियमों के आधार पर उसका किंचित् अनुमान लगाया गया है । कहते हैं, सूर्य के इस केन्द्रीय भाग का दबाव ऊपरी हिस्सों से कई गुना अधिक होगा । वहाँ प्रति वर्ग-सेंटीमीटर क्षेत्र पर लगभग एक खरब किलोग्राम का दबाव होने की संभावना है ! इसी भीषण दबाव के कारण वहाँ का ताप अधिक है।

सूर्य के केन्द्रीय गोले पर एक खोल-सी चढ़ी हुई है, जिसे 'प्रकाशमंडल' (फोटोस्फीयर) के नाम से पुकारा जाता है । यह भाग भी घने दबाव की तप्त गैसों से निर्मित है । सूर्य से जो प्रकाश-विकिरण (रेडिएशन) होता है, उसकी उपज इसी भाग में से होती है । सूर्य के इस भाग के बारे में ज्योतिषी बहुत-कुछ जानकारी पा चुके हैं। कारण, उससे विकीर्ण होनेवाले प्रकाश का वर्णक्रमदर्शी (स्पेक्ट्रोस्कोप) द्वारा गहरा अध्ययन किया गया है । तुमने भौतिक विज्ञान की पोथियों में पढ़ा होगा कि प्रकाश के विश्लेषण से विविध वर्णों (रंगों) की एक पट्टी प्राप्त होती है । इसे 'वर्णक्रम' या 'स्पेक्ट्रम' कहते हैं । इस पट्टी की एक खूबी यह होती है कि वह जिस उद्गम-स्रोत से आनेवाले प्रकाश की तस्वीर हमारे सामने रखती है, उसके रासायनिक मूल तत्त्वों की स्पष्ट सूचना वह हमें दे देती है । उदाहरण के लिए, यदि प्रकाश ऐसे स्रोत से आया है, जहाँ हाइड्रोजन मौजूद है, तो इसकी स्पष्ट सूचना उसके स्पैक्ट्रम में मिलेगी । यह सूचना विशेष प्रकार की धारियों के रूप में वर्णक्रम में अंकित रहती है । वैज्ञानिक ऐसी प्रत्येक जाति की धारियों से सुपरिचित रहते हैं । अतः उन्हें देखते ही वे फौरन् जान लेते हैं कि प्रकाश जिस उद्गम से आया है, वहाँ कौन-कौन से रासायनिक मूल तत्त्व विद्यमान हैं !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

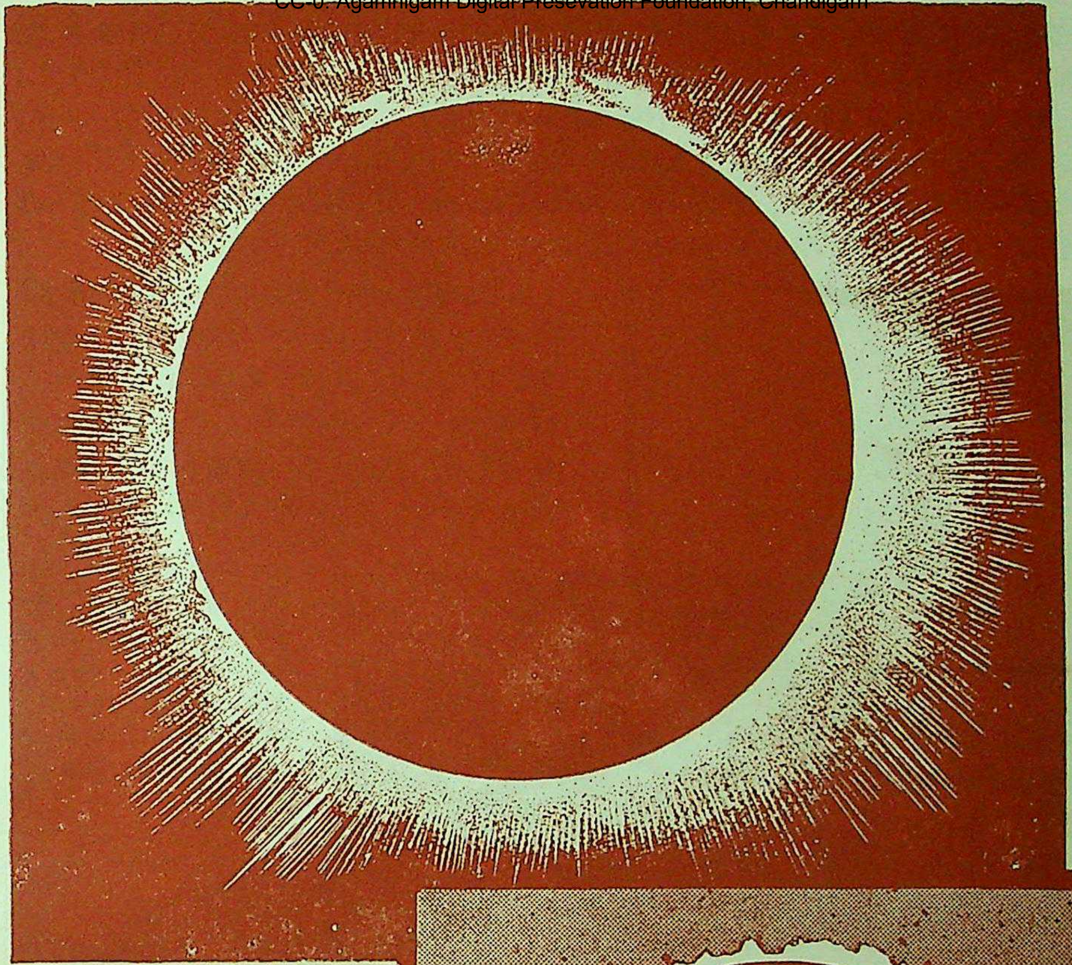

सूर्य के अध्ययन के लिए पूर्ण ग्रहण के समय लिए जानेवाले फोटोचित्रों का बड़ा महत्व है। उनमें सूर्य के वर्णमंडल की अद्‌भुत झालर और उसमें से फूटती हुई अग्निज्वालाओं तथा कॉरोना के मुकुट की अनोखी छटा देखने को मिलती है ! इस झाँकी से कई रहस्यों का उद्‌घाटन हुआ है। ऊपर ऐसा ही एक भव्य चित्र दिग्दर्शित है। नीचे, केवल हाइड्रोजन के प्रकाश में लिया गया सूर्यपृष्ठ का एक चित्र है। इसमें जो बिखरे हुए चावल के दानों जैसे चमकीले कण दिखाई दे रहे हैं, वे वस्तुतः सूर्य की सतह की गहराई में से ऊपर उठती हुई तप्त गैसों के हजारों किलोमीटर लंबे-चौड़े बादल हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार के अध्ययन से ज्योतिषियों ने इस बात का पक्का पता पा लिया है कि सूर्य पर भी लगभग वे सबके सब रासायनिक तत्त्व मौजूद हैं, जो कि पृथ्वी पर मिलते हैं। अंतर केवल इतना है कि वहाँ सभी तत्त्व गैसीय रूप में हैं! इनमें लोहा, टिन, ताँबा, जस्ता, सीसा, चाँदी, सोना, निकल, सोडियम, कोबाल्ट, मैग्नीशीयम, मैंगनीज, ऐल्यूमिनियम, सिलिकन, कार्बन, कैल्सियम, ऑक्सिजन, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन और हीलियम तत्त्वों की प्रधानता है। संभवत: वहाँ भीषण ताप के कारण एक तत्त्व दूसरे में बदलता रहता है!

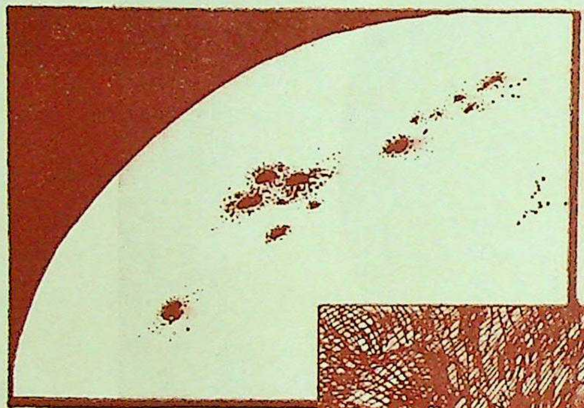

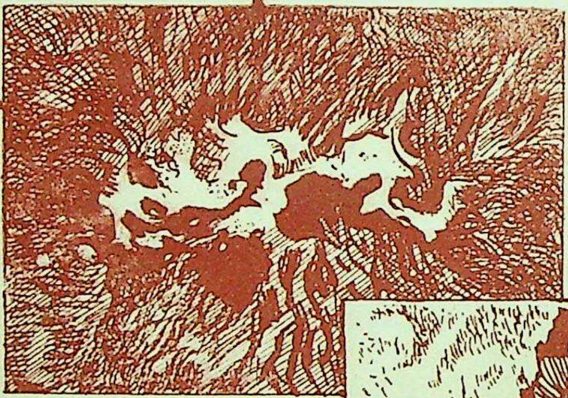

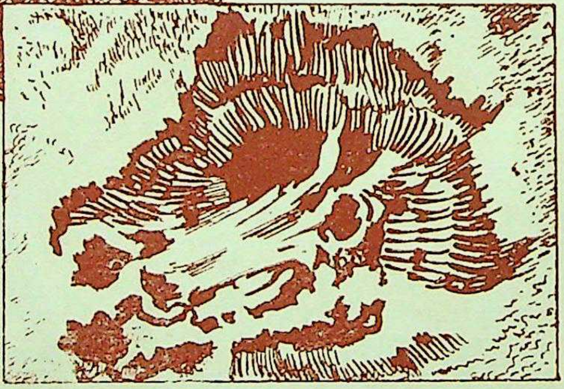

(ऊपर) सूर्य-कलंकों की साधारण झाँकी; (मध्य में और नीचे) इन भँवरनुमा गड्ढों के दो परिवर्द्धित चित्र। ये खंदक दरअसल इतने बड़े होते हैं कि उनमें कितने ही पृथ्वी जैसे गोले गायब हो सकते हैं!

'प्रकाशमंडल' के अध्ययन के सिलसिले में केवल हाइड्रोजन या कैल्सियम से आई हुई रोशनी को ग्रहण करके सूर्य के कई उत्तम फोटो लिए गए हैं। इन फोटोचित्रों में सूर्य की सतह पर बिखरे हुए चावल जैसे अगणित कणों की बड़ी अनोखी छटा देखने को मिलती है (पृ० ४१ का निचला चित्र देखो)। ये कण वस्तुत: सूर्य की गहराई में से उठती हुई तप्त गैसों के बादलों के सिरे हैं। वे दूरी के कारण ही कणों जैसे देख पड़ते हैं। इनमें से कई तो हजारों किलोमीटर लंबे-चौड़े होते हैं!

प्रकाशमंडल के ऊपर पंद्रह-सोलह हजार किलोमीटर की ऊँचाई तक फैली हुई वह चमकीली तह है, जिसे 'वर्णमंडल' (क्रोमोस्फीयर) का नाम दिया गया है। इस तह की बड़ी ही सुन्दर झाँकी पूर्ण ग्रहण के समय देखने को मिलती है (दे० पृ० ४१ का ऊपरी चित्र तथा इस पुस्तक के रंगीन आवरण-चित्र का मध्यभाग)।

सूर्य के आसपास भी वायुमंडल है

पृथ्वी की तरह सूर्य के आसपास भी एक प्रकार का वायुमंडल फैला हुआ है। इसकी जानकारी पूर्ण ग्रहण के समय मिलती है। सर्वग्रास की स्थिति में आड़ में आया हुआ चन्द्रमा का गोला जब सूर्य के मुखमण्डल को ढाँप लेता है, तो कुछ क्षणों के लिए वर्णमंडल से परे तीस-चालीस लाख किलोमीटर तक सूर्य के आसपास एक विचित्र चमकीला वातावरण फैला

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुआ दिखाई पड़ने लगता है ! इसे 'काँरोना' या 'मुकुट' का नाम दिया गया है। इसकी कोई नियमित शक्ल नहीं होती—इसका रूप सदैव बदलता रहता है। इसका घनत्व भी अधिक नहीं होता—एक बार तो एक पुच्छल तारा सही-सलामत उसे चीरते हुए निकलते देखा गया था ! फिर भी इसकी चमक असाधारण होती है। ज्योतिषियों की धारणा है कि सूर्य का यह प्रकाश-मुकुट हलकी गैसों, उल्काओं के टूटने से बिखरे हुए धूलिकणों तथा रोशनी की किरणों के सम्मिश्रण से निर्मित एक प्रकार की धुँध-सा है (पृष्ठ ४१ के ऊपरी चित्र में इसकी अद्भुत छबि देखो।)

सूर्य-कलंक

परन्तु सूर्य की सतह पर के सबसे विचित्र कौतुक तो हैं वे रहस्यपूर्ण काले-काले दाग या धब्बे, जोकि 'सूर्य-कलंक' के नाम से पुकारे जाते हैं। तुम्हें याद होगा कि गैलीलियो ने अपने छोटे-से दूर-दर्शक द्वारा इन धब्बों को देखा था और उन्हें स्थान बदलते देखकर ही उसने यह पता लगाया था कि सूर्य भी लट्टू की भाँति अपनी धुरी पर नाच रहा है ! ये कलंक पुराने जमाने में कोरी आँखों से भी देखे गए थे ! इसका उल्लेख चीन की पुरानी पोथियों में मिलता है। वैज्ञानिकों का कहना है कि ये कलंक सूर्य की गैसीय सतह पर समय-समय पर उठनेवाले भीषण बवंडरों के कारण देख पड़ते हैं। उक्त बवंडर चक्कर काटकर निकलती हुई गैसों के आवर्तन के कारण तुरहीनुमा भँवर का रूप ग्रहण कर लेते हैं। कभी-कभी वे स्पष्ट तौर पर गहरे खंदकनुमा गड्ढों जैसे दिखाई देते हैं। उनका मध्य भाग घोर काला और किनारे पर का घेरा कुछ हलका साँवला-सा जान पड़ता है (पृ० ४२ के चित्र देखो)। इन गड्ढों में से कई तो इतने बड़े देखे गए हैं कि उनमें पृथ्वी के आकार के कई गोले समाकर गायब हो सकते हैं !

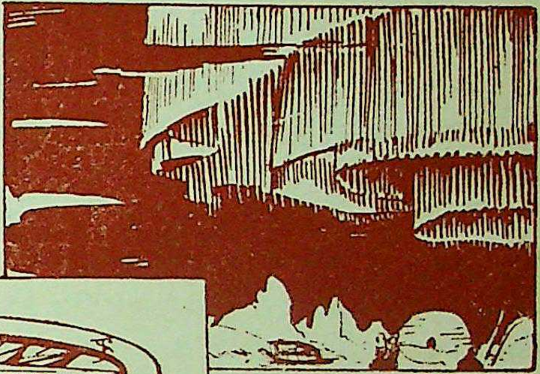
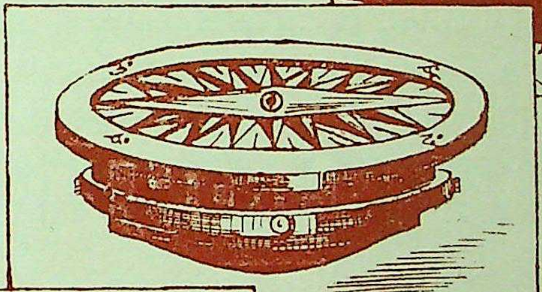
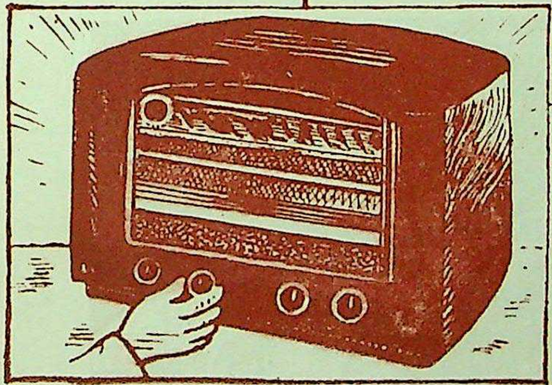

सूर्य-कलंकों का चुंबकीय प्रभाव— (ऊपर) ध्रुवप्रदेशों की झालरनुमा रोशनियाँ; (मध्य में) कुतुबनुमा की गड़बड़; (नीचे) रेडियो की गड़बड़ ! ये गड़बड़ें उस तीव्र ही उठती हैं, जब सूर्य-कलंक बाढ़ पर होते हैं।

सूर्य-कलंक टिकाऊ नहीं होते। वे कुछ समय तक दिखाई देने के उपरान्त या तो एकदम अदृश्य हो जाते हैं या अपनी जगह से आगे को सरक जाते हैं। जान पड़ता है,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ये सूर्यपृष्ठ पर जब-तब बनते-बिगड़ते रहनेवाले ज्वालामुखी-जैसे हैं, जिनके द्वारा सूर्य की भीतरी भट्टी अपना गुबार रह-रहकर बाहर निकाला करती है। चूँकि सूर्य एकदम, गैसीय अवस्था में है, इसलिए ज्वालामुखी-रूपी ये चिमनियाँ स्थिर नहीं रहने पातीं। वे बनती बिगड़ती रहती हैं। इन कलंकों की बदौलत ही सूर्यपृष्ठ की पर्त उघड़ने और भीतरी तप्त भाग की किंचित् झाँकी देख पाने का सुयोग हमें प्राप्त होता है। उनसे हमें यह अंदाज भी मिलता है कि सूर्य के अंतराल में कैसा भीषण प्रलय मच रहा है !

सूर्य-कलंकों के बारे में सबसे उल्लेखनीय बात उनका चुंबकीय प्रभाव है। इसका अनुभव किसी भी बड़े कलंक या कलंक-समूह के प्रकट होते ही पृथ्वी पर होता है। यह प्रभाव सबसे स्पष्ट रूप में दिक्सूचक यंत्र (कुतुबनुमा) की सुई के इधर-उधर होने अथवा रेडियो की गड़बड़ द्वारा विदित होता है। इसका एक अद्भुत प्रदर्शन उत्तरी-दक्षिणी ध्रुवप्रदेशों की उन रंगीन झालरनुमा रोशनियों की बढ़ोतरी के रूप में भी होता है, जिन्हें 'मेरु-प्रकाश' कहते हैं (पृष्ठ ५३ का चित्र देखो)। ये झालरनुमा रोशनियाँ पृथ्वी के निकट के आसमान में चुंबकीय तूफानों के फलस्वरूप थिरका करती हैं। वैज्ञानिकों को इस बात के पक्के प्रमाण मिले हैं कि इस प्रकार चुंबकीय तूफानों को पैदा करने में सूर्य का गहरा हाथ है। गत अनेक वर्षों के आलेखों के अध्ययन से इस बात की भी पुष्टि हो चुकी है कि सूर्य-कलंकों की बाढ़ का एक ग्यारह-वर्षीय चक्र है, अर्थात् हर ग्यारहवें वर्ष उनका वेग और प्रभाव उग्र हो उठता है ! इस ग्यारह-वर्षीय चक्र के घुमाव के अनुसार पृथ्वी पर भी हर ग्यारहवें वर्ष चुंबकीय गड़बड़ों का तीव्र दौरा होते पाया गया है। इस बात की पुष्टि वृक्षों के पुराने

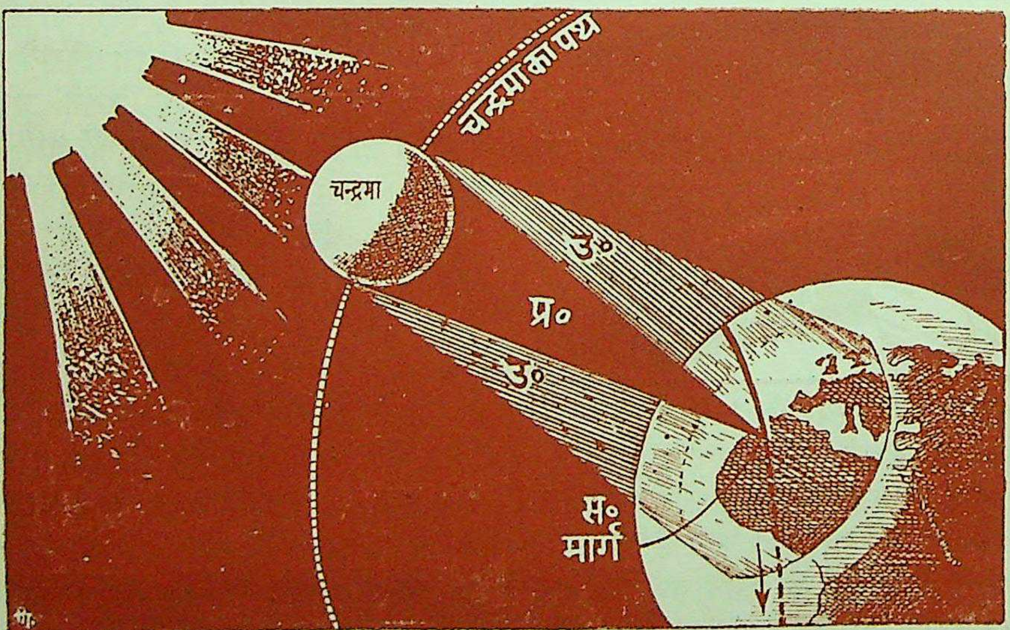

सूर्य-ग्रहण का सिद्धान्त यह है। जब चन्द्रमा सूर्य और पृथ्वी के बीच एक सीध में आड़ में आ जाता है, तभी सूर्य-ग्रहण होता है। पृथ्वी के जिन स्थानों पर 'प्रच्छाया' (प्र) पड़ती है, वहाँ से पूर्ण ग्रहण या 'सर्वग्रास' और जहाँ पर 'उपच्छाया' (उ) पड़ती है, वहाँ से खंड ग्रहण देख पड़ता है (पृ० ४६ का मैटर पढ़ो)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तनों की भीतरी पर्तों की जाँच से हुई है। ये पर्तें प्रत्येक वर्ष की बाढ़ को विशेष रेखाओं द्वारा सूचित करती हैं। उक्त रेखाओं की आकृति में सूर्य-कलंक के ग्यारह-वर्षीय चक्र के दौरे के साथ-साथ पृथ्वी पर उपजनेवाली चुंबकीय गड़बड़ों का स्पष्ट आलेख कट-फट या अन्य प्रकार की अनियमितता के रूप में अंकित पाया जाता है।

सूर्य-ग्रहण

सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहणों के प्रति लोग बहुत पुराने जमाने से ही गहरी उत्सुकता रखते चले आ रहे हैं। इन आकाशीय घटनाओं से प्रायः सब कोई भयभीत भी होते हैं, जिसके कारण उनके संबंध में तरह-तरह की अंध-धारणाएँ देश-देश में प्रचलित हैं। हमारे देश की राहु राक्षस द्वारा सूर्य एवं चन्द्रमा के ग्रास की कथा ऐसी ही एक अंधविश्वासपूर्ण थोथी धारणा है। परन्तु विज्ञान के उपासकों को ऐसी दंतकथाओं में कभी भी विश्वास नहीं रहा। वे सदैव ही इन आकाशीय घटनाओं का कोई न कोई ज्योतिषिक समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास करते पाए गए। उदाहरणार्थ, हम बता चुके हैं कि पाँचवीं सदी ईस्वी के महान् भारतीय ज्योतिषी आर्यभट ने हजारों साल पहले ही साफ तौर से यह बता दिया था कि सूर्य या चन्द्रमा के ग्रहण केवल पृथ्वी के लिहाज से उनकी विशेष स्थितियों के कारण ही होते हैं—इन घटनाओं में राहु राक्षस का कोई हाथ नहीं! यही वस्तुतः सूर्य या चन्द्रमा के ग्रहण का वास्तविक वैज्ञानिक कारण भी है। जब चन्द्रमा अपनी कक्षा में घूमते हुए कुछ समय के लिए पृथ्वी और सूर्य के बीच इस प्रकार आड़ में आ जाता है कि उससे सूर्य का संपूर्ण बिम्ब अथवा कुछ अंश पृथ्वीवासियों की दृष्टि से छिप जाता है, तब 'सूर्य-ग्रहण' दिखाई देता है। इसी प्रकार जब

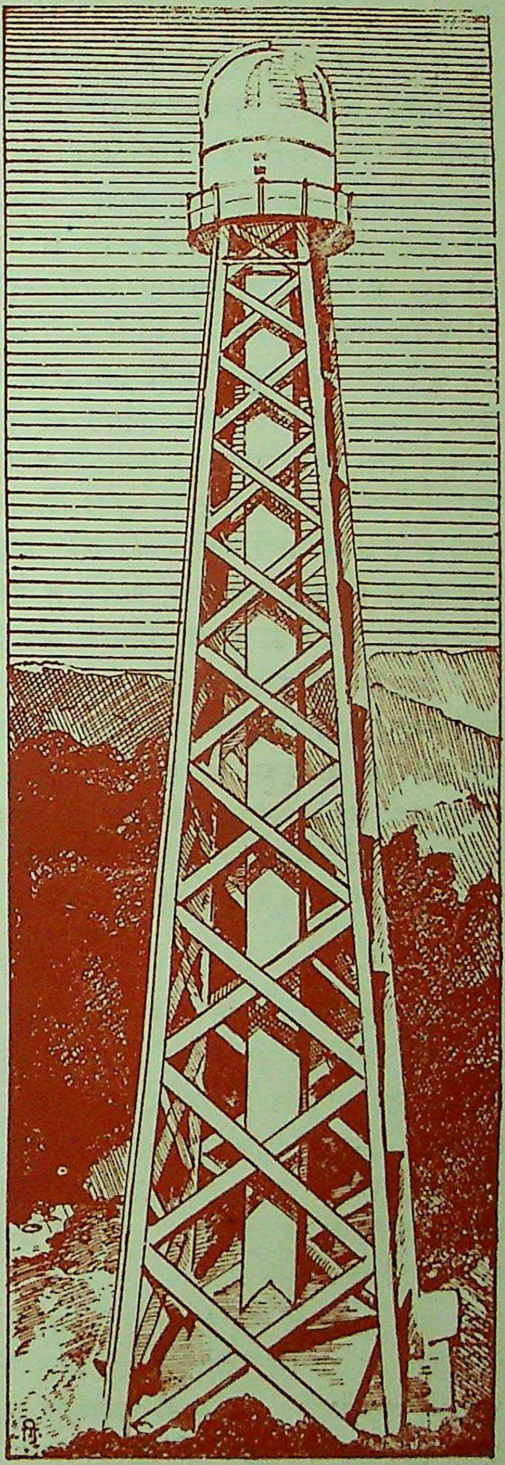

सूर्य का अध्ययन करने के लिए निर्मित माउंण्ट विल्सन वेधशाला का प्रसिद्ध-'अट्टालिका दूरदर्शक'। इसकी मीनार पचास मीटर ऊंची है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चन्द्रमा और सूर्य के बीच पृथ्वी ऐसी स्थिति में आ पहुँचती है कि चन्द्रमा उसके छायापथ में पड़ जाता है और फलतः उसका संपूर्ण बिम्ब अथवा कुछ अंश सूर्य-प्रकाश से वंचित हो जाता है, तब 'चन्द्र-ग्रहण' की झाँकी दिखाई देती है। सूर्य-ग्रहण केवल अमावस्या के दिन ही पड़ता है और चन्द्रग्रहण पूर्णिमा को! कारण, इन्हीं तिथियों पर सूर्य और चन्द्रमा पृथ्वी के लिहाज से ग्रहण की स्थिति में आ पाते हैं।

चूँकि चन्द्रमा सूर्य से आकार में बहुत छोटा है, इसलिए सूर्य-ग्रहण के समय उसकी जो छाया पृथ्वी पर पड़ती है, वह दो प्रकार की होती है। एक तो सूचिकाकार 'प्रच्छाया', जो दूरी के साथ-साथ सिमटकर निरन्तर छोटी होती चली जाती है। दूसरी 'उपच्छाया', जो इससे उलटे प्रकार की होती है। जैसा कि पृष्ठ ४४ के मानचित्र से तुम जान सकते हो, सूर्य का पूर्ण ग्रहण उन्हीं स्थानों से दिखाई पड़ता है, जो कि प्रच्छाया के दायरे में आते हैं। उधर जो स्थान उपच्छाया के क्षेत्र में पड़ते हैं, वहाँ से केवल खंड ग्रहण ही दिखाई देता है। प्रच्छाया पृथ्वी तक पहुँचते-पहुँचते केवल कुछ किलोमीटर की चौड़ाई तक सीमित रह जाती है। छाया की यह पट्टी पृथ्वी और चन्द्रमा की गतियों के कारण तेजी से एक से दूसरे स्थान की ओर सरकती चली जाती है। पृथ्वी के विभिन्न स्थानों से पूर्ण ग्रहण के कुछ समय के अन्तर से देख पड़ने का यही कारण है! पृष्ठ ४४ के चित्र में 'स० मार्ग' की रेखा द्वारा सर्वग्रास अर्थात् पूर्ण ग्रहण की पट्टी दिग्दर्शित की गई है।

विज्ञान की दृष्टि में खंड ग्रहण की अपेक्षा पूर्ण ग्रहण का ही विशेष महत्व है। कारण, उसी समय कुछ क्षणों के लिए सूर्य के वर्णमंडल की झालर से निकलती हुई अग्निशिखाओं एवं कॉरोना के मुकुट की झाँकी देखने का मौका मिला करता है। इस क्षणिक झाँकी के समय सूर्य का अध्ययन करने का जो अवसर प्राप्त होता है, वह अन्यथा नहीं मिल पाता। इसीलिए पूर्ण ग्रहण को देखने के लिए ज्योतिषी अपने साज-सामान सहित दूर-दूर के दुर्गम स्थानों की यात्रा करते भी नहीं हिचकते।

पूर्ण ग्रहण की अद्भुत छबि

पूर्ण ग्रहण की छबि केवल चंद मिनटों तक ही देखने को मिला करती है, फिर भी वह ऐसी अनूठी होती है कि आजीवन नहीं भुलाई जा सकती! बीच में चन्द्रमा की थालीनुमा काली आकृति! उसके आसपास थरथराती हुई सूर्य के वर्णमंडल की चमकीली झालर! उस पर मानो अँगीठी पर चढ़े हुए तवे की आड़ में से लपलपाती हुई लपटों जैसी अग्निज्वालाएँ! तदनन्तर काले आसमान में दूर तक फैला हुआ गैसबत्ती की रोशनी का-सा कॉरोना के मुकुट का अद्भुत प्रकाश! भला, यह छबि किसे एकबारगी ही मंत्र-मुग्ध नहीं कर देगी?

पूर्ण ग्रहण के चंद मिनटों में आसमान और पृथ्वी पर एक अनूठी झाँई-सी छा जाती है। दिन में ही तारे निखर आते हैं। चन्द्रमा की प्रच्छाया आँधी की तरह तेजी से बढ़ती दिखाई पड़ती है। पशु-पक्षी भयभीत हो उठते और पेड़-पौधे सहम-से जाते हैं। चन्द्रमा द्वारा ढाँपे गए वर्णमंडल की झालर में से कभी लाल ज्वालाएँ लपकती दिखाई देती हैं, तो कभी आसपास विचित्र प्रकार के लाल मनके-से जगमगा उठते हैं! कभी-कभी तो उक्त लपटें उससे छिटककर विलग होते भी देखी जाती हैं, जिससे दिल दहल उठता है! इस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अद्भुत दृश्य का अनुमान वही कर सकता है, जिसने उसे देखने का कभी मौका पाया हो [पृ० ४१ का ऊपरी चित्र तथा आवरण के रंगीन चित्र का मध्यभाग देखो]!

सूर्य कितनी शक्ति उपजाता है ?

वैज्ञानिकों के अनुसार, सूर्य की चमक १,५७५,०००,०००,०००,०००,०००,००० मोमबत्तियों की रोशनी के बराबर है। इतनी अधिक प्रकाशमान ज्योति से कितनी ऊर्जा या शक्ति का उत्पादन होता होगा, इसका भी हिसाब लगाया गया है—वह है इंजीनियरी की बोली में प्रति वर्ग-सेंटीमीटर क्षेत्र के लिहाज से आठ-नौ अश्वबल (हॉर्स-पावर) के बराबर! तनिक कल्पना करो कि यदि एक वर्ग-सेंटीमीटर से इतनी ऊर्जा सूर्य पर से उपजकर प्रति क्षण चारों ओर विकीर्ण होती है, तो उसके अरबों-खरबों वर्ग-किलोमीटर क्षेत्रफल के समूचे धरातल पर से कुल कितनी शक्ति का उत्पादन होता होगा? इसका एक मोटा अनुमान वैज्ञानिकों के इस कथन द्वारा हो सकता है कि उक्त शक्ति यदि कोयला जलाकर पैदा की जाय, तो इसके लिए सूर्य के समूचे धरातल पर लगभग पाँच मीटर मोटी कोयले की परत प्रति घंटा बार-बार बिछाकर निरन्तर जलाते रहना होगा! तुम्हें यह जानकर हैरानी होगी कि सूर्य की भट्टी प्रति क्षण इतनी गरमी पैदा करती है कि अगर चार किलोमीटर व्यास की बर्फ की एक विराट् शिला पृथ्वी से ठेठ सूरज तक के पौने पंद्रह करोड़ किलोमीटर के फासले में फैली हो, तो उसे भी यह गरमी एक सैकंड में ही पिघालकर पानी बना देगी और आठ सैकंड में तो उसे एकदम भाप में बदल देगी!

सूर्य द्वारा उत्पादित इस अतुल शक्ति का जो अंश पृथ्वी पर मिल पाता है, वह दरअसल उसके समस्त उत्पादन का बहुत ही नगण्य भाग है! एक ज्योतिषी के शब्दों में वह ऐसी ही

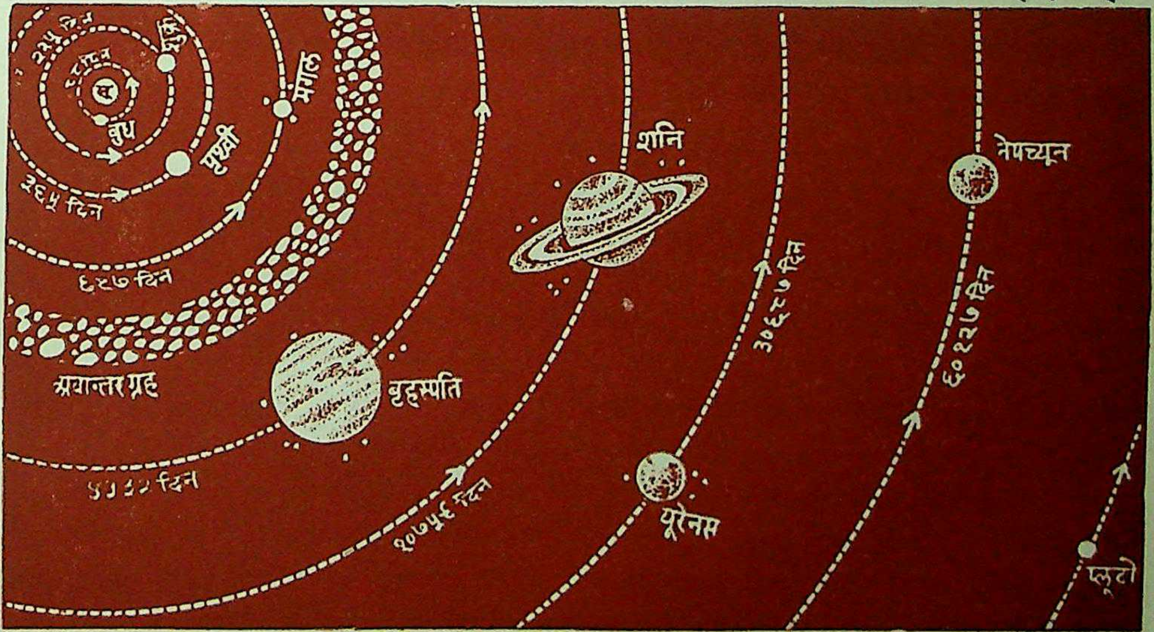

सौर परिवार का मानचित्र सही पैमाने पर पुस्तक के पन्नों पर उतारना संभव नहीं है। अतः इस नक्शे में ग्रहों की स्थिति एवं कक्षाओं का केवल एक अंदाज दिया गया है। नक्शे में सूर्य का आकार भी पैमाने से बहुत छोटा दिखाया गया है। कक्षाओं के साथ-साथ ग्रहों की परिक्रमा का समय भी हमारे यहाँ के दिनमान के अनुसार सूचित है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साधारण राशि है जैसी कि दो-ढाई खरब रुपये की धनराशि में से किसी के पल्ले पड़नेवाली सौ सवा सौ रुपये की रकम ! परन्तु सूर्य की इतनी-सी ऊर्जा पाकर भी यह पृथ्वी निहाल है ! यदि यह वरदान धरती से छिन जाय, तो यहाँ से जीवन का डेरा-तंबू ही उखड़ जाय !

इस तरह निरन्तर जलते रहने पर भी सूर्य राख क्यों नहीं हो जाता ?

विज्ञान के पंडितों की गणना के अनुसार, सूर्य निरन्तर तपकर प्रति मिनट तीस करोड़ अड़तालीस लाख मीट्रिक टन वजन खोता रहता है ! फिर भी आश्चर्य की बात है कि वह क्षीण होते नहीं दिखाई देता, न ठंढा पड़ते ही जान पड़ता है ! आखिर, इस तरह बिना कमजोर पड़े लगातार उसके धधकते रहने का रहस्य क्या है ? यदि यह गोला समूचा कोयले जैसे ईंधन का बना होता, तब तो छः हजार बरस से भी कम समय में उसे जलकर राख हो जाना चाहिए था, ऐसा वैज्ञानिकों का अनुमान है ! परन्तु वह तो करोड़ों वर्षों से ऐसा ही तमतमा रहा है और अरबों वर्षों तक उसके ठंढे पड़ जाने की कोई संभावना अभी नहीं है ! अतः अवश्य ही जिस प्रकार के ईंधन को जलाकर वह अपनी शक्ति और गरमी की उपज का तारतम्य बरकरार बनाए हुए हैं, वह कोई निराला ही ईंधन होगा ! या कहिए कि उसके शक्ति-उत्पादन का ढंग विशेष प्रकार का होगा। इस संबंध में वैज्ञानिकों द्वारा तरह-तरह की अटकलें लगाई गई हैं। हेमहोल्ट्ज नामक जर्मन वैज्ञानिक की धारणा थी कि सूर्य की गरमी उसके लगातार सिकुड़ते रहने के फलस्वरूप उपजती है। उधर अन्य एक वैज्ञानिक ने यह मत प्रस्तुत किया था कि सूर्य पर लगातार उल्काएँ बरसती हैं, इसी से वह गरम बना हुआ है। परन्तु ये धारणाएँ निराधार साबित हो चुकी हैं। कारण, पिछले दिनों परमाणु-शक्ति की जानकारी की दिशा में जो नए-नए परदे खुले हैं, उनकी बदौलत भौतिक विज्ञान का सारा तख्ता उलट गया है और ऊर्जा या शक्ति तथा द्रव्य या पदार्थ के परस्पर नाते की एक नई भूमिका सामने आ चुकी है।

तुमने पिछले महायुद्ध के दौरान काम में लाए गए 'परमाणु-बम' का नाम तो सुना ही होगा। उक्त प्रलयंकर अस्त्र के विनाशकारी परिणामों की तो हमें सर्वथा निन्दा ही करना चाहिए, तथापि उसकी बदौलत विज्ञान एक महान् सत्य के द्वार पर आ खड़ा हुआ है, अतः उसका अविष्कार एक युगान्तरकारी घटना कही जा सकती है। उक्त सत्य यह है कि द्रव्य और ऊर्जा बुनियादी तौर पर एक दूसरे से अभिन्न हैं और द्रव्य के प्रत्येक परमाणु के अंतराल में अगाध ऊर्जा (शक्ति) भरी पड़ी है ! यह अतुलित उर्जा द्रव्य के परमाणुओं में से मुक्त होने पर कैसा प्रलयंकर रूप धारण कर सकती है, इसका परिचय परमाणु-बमों के विस्फोटों से प्रत्यक्ष रूप से हमें मिल चुका है ! वैज्ञानिकों का कथन है कि सूर्य की अपरिमित शक्ति का उत्पादन संभवतः इसी ढंग से हो रहा होगा। वहाँ भीषण ताप एवं दबाव के फलस्वरूप हाइड्रोजन आदि तत्त्वों के परमाणुओं का निरन्तर विस्फोट एवं विघटन होता रहता होगा और इस ताण्डव लीला के कारण अपरिमित ऊर्जा प्रति क्षण मुक्त होती रहती होगी ! इस प्रकार बहुत कम इँधन खर्च करके सूर्य विगत करोड़ों-अरबों वर्षों से अगाध शक्ति उत्पादन करता चला आ रहा है और आगे भी शायद अरबों वर्षों तक ऐसा ही करता रहेगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

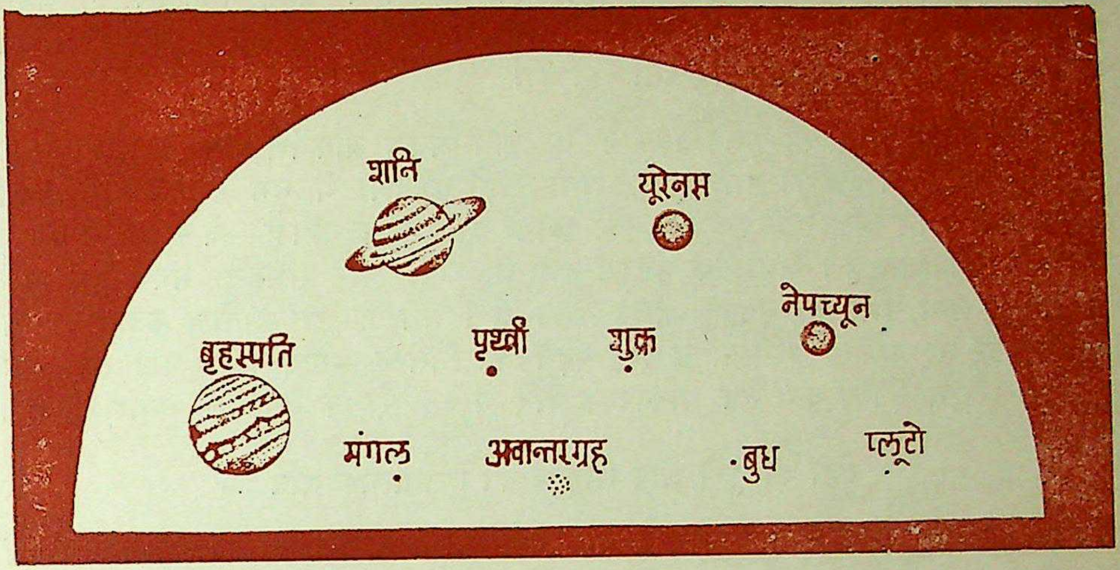

सूर्य और उसके परिवार के सदस्यों का आकार एक दूसरे के अनुपात में क्या है, यह इस मानचित्र द्वारा समझ में आ सकता है। चित्र में सफेद गोलार्द्ध सूर्य के विशाल गोले का एक अंश है और उसी पैमाने पर विभिन्न ग्रहों के आकार इस गोलार्द्ध के बीच में दे दिए गए हैं।

सौर परिवार––ग्रह और उपग्रह

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सूर्य अपने क्षेत्र का एकछत्र सम्राट् होकर भी अकेला नहीं है––उसका एक विशाल परिवार भी है, जिसमें पृथ्वी भी सम्मिलित है। इस परिवार में कई एक छोटे-बड़े सदस्य हैं। कुछ तो वे हैं जो आकार में पृथ्वी की तरह काफी बड़े हैं और विशेष दूरियों पर अपनी-अपनी कक्षाओं में स्थित रहकर सूर्य की परिक्रमा लगाते हैं। ये 'ग्रह' कहलाते हैं। इनकी संख्या नौ है और इनके नाम हैं––बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेपच्यून और प्लूटो। इन्हीं की जमात में लगभग डेढ़ हजार उन नन्हें-नन्हें पिंडों का समूह भी है, जिन्हें 'अवान्तर ग्रह' के नाम से पुकारा जाता है। इनकी स्थिति मंगल और बृहस्पति की कक्षाओं के बीच में है। ये पिंड शायद किसी बड़े ग्रह के खंड हैं, जो किसी समय बिखरकर टूक-टूक हो गया था।

उपर्युक्त ग्रहों के अलावा सौर परिवार के कतिपय सदस्य ऐसे भी हैं, जो कुछ बड़े ग्रहों के साथ लगे रहकर उनका चक्कर लगाते हैं। ये ग्रहों से आकार में छोटे हैं और 'उपग्रह' कहलाते हैं। चन्द्रमा इन्हीं में से एक है। वह पृथ्वी का एकमात्र उपग्रह है। इस वर्ग के पिण्डों में ज्योतिषियों को मंगल के दो, बृहस्पति के ग्यारह, शनि के दस, यूरनेस के चार और नेपच्यून के एक उपग्रह का पता है। बुध, शुक्र और प्लूटो के कोई उपग्रह नहीं पाए गए हैं।

सौर परिवार के ही अन्तर्गत 'धूमकेतु' या 'पुच्छल तारे' के नाम से पुकारे जानेवाले उन स्वच्छन्द नभचर पिण्डों की भी गिनती होती है, जो अति दीर्घवृत्तीय कक्षाओं में सूर्य की परिक्रमा लगाते हुए आकाश में कभी-कभी प्रकट होते हैं। इनमें से कुछ ही का पता अभी

हमें है। प्रायः नए-नए धूमकेतुओं की खोज होती रहती है। ज्ञात धूमकेतुओं में सबसे मशहूर 'हैली का पुच्छल तारा' है, जो कई शताब्दियों से नियमित रूप से लगभग ७६ वर्ष में सूर्य के निकट आने पर दिखाई देता रहा है!

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पृथ्वी सहित सभी ग्रह कुलपति सूर्य के साथ प्रबल आकर्षण-पाश में बँधे हुए हैं (पृ० ४७ का चित्र देखो)। तभी तो वे अपनी-अपनी कक्षाओं में घूम रहे हैं और अपने नियत मार्ग से बिचकने नहीं पाते। उनकी अपनी कोई चमक नहीं है--वे सभी सूर्य की ही रोशनी से प्रकाशित हैं। जहाँ तक मालूम हुआ है, पृथ्वी और संभवतः मंगल एवं शुक्र को छोड़कर अन्य सभी ग्रह-उपग्रह जीवन-रहित हैं। सूर्य के इन अनोखे कुटुंबियों का विस्तृत हाल तो आगे के अध्यायों में तुम्हें पढ़ने को मिलेगा--यहाँ केवल मोटे तौर पर सामूहिक रूप से उनकी दूरी एवं आकार के बारे में कुछ रोचक बातें हम बताए देते हैं।

ग्रहों की दूरी और आकार का तुलनात्मक मान

पृष्ठ ४७ पर दिया गया मानचित्र देखो! उसमें सूर्य के लिहाज से ग्रहों की दूरी एवं कक्षाओं का एक मोटा अनुमान प्रस्तुत किया गया है। परन्तु यह सही पैमाने पर निर्मित चित्र नहीं है। कारण, किताब के पन्नों पर सौर परिवार की स्थिति का यथार्थ चित्रांकन करना संभव नहीं। इसके लिए वस्तुतः बहुत लंबी-चौड़ी जगह चाहिए। इस तथ्य को सुप्रसिद्ध ज्योतिषी सर जान हरशेल ने बड़े ही सुंदर ढंग से एक कल्पना द्वारा समझाने का यत्न किया है। उक्त कल्पना में, एक मॉडल की सहायता से सूर्य और ग्रहों की पारस्परिक दूरी के साथ-साथ एक-दूसरे के अनुपात में उनके छोटे या बड़े आकार का भी बहुत ही रोचक मान तुलनात्मक ढंग से सुझाया गया है। इस मॉडल के अनुसार १,४००,००० किलोमीटर व्यास के सूर्य के विशाल गोले को केवल दो फीट (अर्थात् लगभग ६० सेंटीमीटर) व्यास का कल्पित किया गया है और उसी पैमाने पर ग्रहों की दूरी तथा आकार का एक खाका खड़ा किया गया है।

उपर्युक्त पैमाने पर बुध को सूर्य से ५० मीटर की दूरी पर रक्खे गए राई के दाने जितना बड़ा हमें कल्पित करना होगा! शुक्र को ८६ मीटर दूर स्थित छोटे मटर के दाने की आकृति का मानना होगा! पृथ्वी को १३१ मीटर दूर रक्खे गए बड़े मटर के दाने के बराबर! मंगल को २१४ मीटर दूर स्थित आलपिन के सिरे के आकार का! अवान्तर ग्रहों को ३०० से ३५० मीटर की दूरी पर छितरे हुए धूलिकणों जैसा! बृहस्पति को करीब आधा किलोमीटर दूर स्थित एक बड़ी नारंगी-सा! शनि को लगभग पौन किलोमीटर दूर स्थित एक छोटी नारंगी-सा! और यूरेनस को सवा किलोमीटर की दूरी पर स्थित छोटे आलू-बुखारे के आकार का! इसी पैमाने पर बाद को खोजे गए नेपच्यून ग्रह को करीब डेढ़ किलोमीटर की दूरी पर रक्खे गए एक बड़े आलूबुखारे के बराबर और प्लूटो को सूर्य से पाँच किलोमीटर की दूरी पर स्थित एक नन्हें-से मटर के दाने के आकार का हमें कल्पित करना होगा। अब सोचो कि इतने छोटे पैमाने पर सौर परिवार का खाका उतारने के लिए भी कितनी लंबी-चौड़ी जगह चाहिए? क्या इस मानचित्र को पुस्तक के पन्नों पर की सीमित जगह में उतारना संभव हो सकता है?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लगभग पौने तेरह हजार किलोमीटर व्यास के एक विशाल गोले की कल्पना करो, जिसकी परिधि करीब चालीस हजार किलोमीटर के घेरे में फैली हो! फिर सोचो कि लट्टू की तरह अपनी धुरी पर नाचता हुआ यह गोला, लगभग उनतीस किलोमीटर प्रति सैंकड (अर्थात् १०५,५६० किलोमीटर प्रति घंटा) की चाल से, आसमान में भीषण वेग से बेलाग भागता चला जा रहा है! यही है आकाश में हमारी लीलाभूमि पृथ्वी की विहंगम झाँकी!

पृथ्वी भी एक ग्रह है

शायद अब भी कुछ लोग ऐसे मिल सकते हैं, जो न तो इस बात पर विश्वास करते हैं कि पृथ्वी गोल है, न यही स्वीकार करते हैं कि यह गोला अपने अक्ष पर चक्कर लगाता हुआ लगातार सूर्य की परिक्रमा कर रहा है। ये हैं वे काठ के दिमागवाले लोग, जिन्होंने या तो कभी कोई शिक्षा नहीं पाई या फिर जो जान-बूझकर आधुनिक विज्ञान की रोशनी को अपने मस्तिष्क में प्रवेश करने से रोककर नए ज्ञान के लिए अपनी खिड़कियाँ बंद किए रहने की मानो कसम खाए बैठे हैं! वरना आज किस पढ़े-लिखे आदमी के लिए यह एक अनजान बात होगी कि पृथ्वी भी एक ग्रह है—वह भी शुक्र, मंगल, बृहस्पति, शनि आदि की भाँति सौर परिवार का एक सदस्य है? आज तो स्कूल जानेवाला एक बालक तक इस बात को जानता है कि यदि पृथ्वी गोल न होती और अपनी धुरी पर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

घूमती हुई वह एक दीर्घवृत्ताकार कक्षा में सूर्य की परिक्रमा न लगाती होती, तो न तो दिन-रात का यह चक्र हमें नसीब होता, न जाड़ा, गरमी आदि विविध ऋतुओं की ही छबि इस धरती पर किसी को देखने को मिल पाती !

फिर, जब से हमारे जहाज और वायुयान एक स्थान से सीधी दिशा में चलकर, पृथ्वी की पूरी परिक्रमा लगा, उलटी दिशा से वापस उसी स्थान पर लौटकर आते हुए देखे जाने लगे हैं, तब से पृथ्वी की गोलाई एवं उसके आवर्तन-परिभ्रमण आदि के संबंध में भौगोलिक पुस्तकों की टकसाली दलीलों की आवश्यकता ही क्या रह गई है ? आज तो, हजारों-लाखों किलोमीटर की ऊँचाई तक आसमान में रॉकेट भेजकर उनके द्वारा पृथ्वी के ऐसे फोटो तक ले लिए गए हैं, जिनमें वह स्पष्टतः एक गेंद-सी दिखाई पड़ती है ! और तो और, रूस और अमेरिका के अंतरिक्ष-उड़ाकू कृत्रिम उपग्रहों में पृथ्वी की परिक्रमा करते समय सैकड़ों किलोमीटर की ऊँचाई से उसकी गोलाई को स्वतः अपनी आँखों से प्रत्यक्ष रूप से देखने का भी सौभाग्य पा चुके हैं ! तो भला, इस संबंध में संदेह की अब गुंजाइश ही कहाँ रही है ?

पृथ्वी के आकार-प्रकार संबंधी कुछ रोचक आँकड़े

हमारी इस लीलाभूमि की समूची कहानी तो दरअसल इतनी बड़ी है कि इसके लिए पूरी एक पोथी लिखने पर भी वह उसमें नहीं समा सकती। इसीलिए इस ग्रंथमाला में उसकी गाथा को अलग-अलग विभागों में बाँटकर कई खण्डों में प्रस्तुत किया गया है। तुम्हें पृथ्वी की भौतिक रचना का हाल दूसरे खण्ड में तथा उस पर पाई जानेवाली जीव-सृष्टि एवं वनस्पति-सृष्टि का विवरण क्रमशः तीसरे और चौथे खण्डों में पढ़ने को मिलेगा। यहाँ तो हम संक्षेप में उसके संबंध में केवल उतनी ही जानकारी देने जा रहे हैं, जितनी सौर परिवार के एक सदस्य के नाते उसकी स्थिति और गतिविधि से वास्ता रखती है।

यह तो पहले ही हम बता चुके हैं कि पृथ्वी का व्यास लगभग पौने तेरह हजार किलोमीटर है। परन्तु यह जानकर तुम्हें हैरानी होगी कि इस गोले का व्यास सब जगह एक जैसा नहीं है ! वह भूमध्य रेखा पर यदि १२,७८२.५६ किलोमीटर है, तो ध्रुवों पर केवल १२,६३९.३६ किलोमीटर ! इसका कारण यह है कि पृथ्वी की आकृति ठीक गेंद की तरह गोल न होकर, बहुत-कुछ नारंगी जैसी है-- अर्थात् वह ध्रुवों पर कुछ-कुछ चपटी है तथा भूमध्य रेखा पर अधिक फूली हुई ! इस विशाल गोले की ऊपरी सतह का कुल क्षेत्रफल ५०४,३२०,००० वर्ग-किलोमीटर आँका गया है, जिसमें से लगभग ३६३,५२०,००० वर्ग-किलोमीटर क्षेत्र जल से ढका हुआ है !

पृथ्वी के वजन और आयतन का भी मोटा अनुमान वैज्ञानिकों ने लगाया है। उसका तौल ६,०९६,०००,०००,०००,०००,०००,००० मीट्रिक टन बताया जाता है और आयतन १,०६४,९६०,०००,००० घन-किलोमीटर ! तुम यह सुनकर अचंभा करोगे कि विज्ञान के बाजीगरों ने पृथ्वी के आसपास लिपटे हुए वायुमंडल के भी तौल का आँक निर्धारित कर दिया है ! वह है--११,७८५,६००,०००,०००,०००,००० मीट्रिक टन ! इसी प्रकार सूर्य से १४ करोड़ ९५ लाख किलोमीटर की औसत दूरी पर जिस दीर्घवृत्ताकार कक्षा में यह गोला परिभ्रमण कर रहा है, उसकी भी लंबाई का नाप निश्चित कर लिया गया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। वह है—९३५,३६०,००० किलोमीटर ! इस दीर्घवृत्ताकार कक्षा में घूमने के कारण ही पृथ्वी की सूर्य से दूरी में कभी-कभी ५० लाख किलोमीटर तक का अंतर पड़ते पाया जाता है। इस प्रकार कभी सूर्य से दूर चले जाने और कभी अपेक्षाकृत निकट आ जाने का पृथ्वी की ऋतुओं और मौसम पर गहरा प्रभाव पड़ता है !

पृथ्वी की गतिविधि

भूगोल की पोथियों में तुमने पढ़ा ही होगा कि पृथ्वी एक ओर तो लट्टू की तरह अपनी धुरी पर घूमती है, दूसरे अपनी दीर्घवृत्ताकार कक्षा में सूर्य की परिक्रमा लगाते हुए आसमान में दौड़ रही है। उसकी प्रथम गति का एक चक्कर चौबीस घंटों में पूरा होता है तथा दूसरी का ३६५ दिनों में अर्थात् वर्ष भर में। पहली गति को 'आवर्तन' कहते हैं और दूसरी को 'परिभ्रमण'। हम सूचित कर ही चुके हैं कि जिस गति से पृथ्वी अपने परिभ्रमण-पथ पर दौड़ रही है, उसका वेग प्रति सैकंड २९ किलोमीटर (अर्थात् प्रति घंटा १०५,५६० किलोमीटर) के लगभग है ! इस तीव्र गति से दौड़ने के बावजूद इस गोले की हलचल का हमें भान नहीं हो पाता, यह प्रकृति की एक अद्भुत करामात है !

परन्तु यह तो उसकी केवल दो प्रधान गतियों की बात हमने बताई, जबकि विज्ञान के पंडित पृथ्वी की और भी कई एक गतियों का उल्लेख करते हैं। ये गतियाँ इतनी सूक्ष्म और पेचीदा हैं कि केवल विशेषज्ञ ही गणित के आँकड़ों की सहायता से उनकी जानकारी पा सकते हैं ! उदाहरण के लिए, अपने सारे ग्रह-परिवार सहित सूर्य भी आकाशगंगा की बाटी में न जाने किस अज्ञात केन्द्र के आसपास एक दीर्घ महाकक्षा में चक्कर लगा रहा है ! फलत: सौर परिवार के सदस्य के नाते, पृथ्वी भी उस विराट् परिभ्रमण-पथ पर एक विशेष गति में लीन है। उसकी यह गति 'आवर्तन' तथा 'परिभ्रमण' दोनों ही से सर्वथा भिन्न है ! इसी तरह उसकी अन्य एक गति चन्द्रमा के आकर्षण के प्रभाव से उसके परिभ्रमण-पथ के

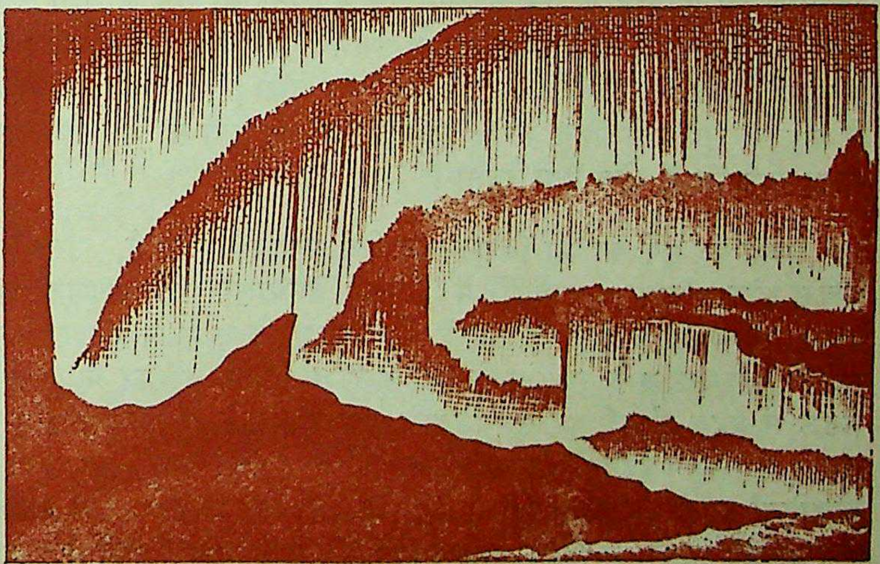

पृथ्वी पर सूर्य के प्रभाव का प्रखर प्रमाण प्रस्तुत करनेवाली ध्रुवप्रदेशों की अद्भुत झालरनुमा रंगबिरंगी रोशनियाँ, जिनका आविर्भाव सूर्य से आनेवाली विद्युत्-रश्मियों की बौछार से उपजे चुंबकीय तूफान के कारण होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
विचलन से संबंधित है और दूसरी उसके अक्ष के झुकाव में फेरबदल होने से वास्ता रखती है, जिसका एक फेरा २५,७६५ वर्षों में जाकर पूरा होता है ! यह भी अपनी भूगोल की पुस्तकों से तुम्हें मालूम हो ही चुका होगा कि पृथ्वी की कल्पित धुरी अपने परिक्रमा-पथ के लिहाज से ६६।। अंश का कोण बनाते हुए तिरछी झुकी हुई-सी है। धुरी के इस तिरछेपन का पृथ्वी के मौसम के निर्माण में गहरा हाथ है। धुरी के इस झुकाव के कारण अपनी दीर्घवृत्ताकार कक्षा में भ्रमण करते समय पृथ्वी के कुछ भागों को सूर्य के सामने अधिक समय तक रहने का मौका मिलता है और कुछ को अपेक्षाकृत कम समय तक। इसी तरह कुछ भागों पर सूर्य की किरणें एकदम सीधी पड़ती हैं, तो कुछ पर तिरछी। फलतः कुछ क्षेत्रों को अधिक रोशनी और गरमी मिलती है तथा कुछ को कम। इस बात का पृथ्वी के विविध भूभागों की ऋतुओं की भिन्नता पर क्या असर पड़ता है, तत्संबंधी विशेष जानकारी तुम इस ग्रंथमाला के द्वितीय खण्ड में पा सकोगे।

पृथ्वी पर सूर्य का प्रभाव

सूर्य के ग्रह-परिवार की सदस्या होने के नाते पृथ्वी अपने महान् कुलपति पर पूर्णतया अवलंबित है। फलतः उस ज्योतिपुंज नक्षत्र का उस पर तरह-तरह का प्रभाव पड़ता रहता है। उसी से वह अपनी रोशनी और गरमी पाती। उसी की बदौलत अपनी हरियाली और जीवन की छटा बनाए रखती। उसी के प्रबल आकर्षण-पाश में बँधी रहने के कारण ही वह अपनी कक्षा में बनी रहती है और बिचककर अनन्त शून्य में भटकने नहीं पाती। कुलपति सूर्य का उसके प्रति आकर्षण का यह पाश इतना सशक्त है कि यदि उसका अनुमान हम फौलाद के एक कल्पित दंड से पृथ्वी को सूर्य के साथ जकड़कर करें, तो इसके लिए ८।। हजार किलोमीटर व्यास के लगभग पौने पंद्रह करोड़ किलोमीटर लंबे लौहदंड की कल्पना हमें करना होगी [पृ० ३५ का चित्र देखो]। अपनी इस प्रबल आकर्षण-शक्ति के ही बल पर सूर्य पौने पंद्रह करोड़ किलोमीटर की दूरी से भी पृथ्वी के सागरों में ज्वार-भाटा उमगाने में योग देता रहता है !

पृथ्वी पर सूर्य का जो विद्युत्-चुंबकीय प्रभाव पड़ता है, उसकी प्रखर अभिव्यक्ति उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवप्रदेशों में दिखाई देनेवाली उन अद्भुत झालरनुमा रंगबिरंगी रोशनियों के रूप में होती है, जिन्हें 'मेरुप्रकाश' के नाम से पुकारा जाता है। ये रोशनियाँ सूर्य से निरन्तर आते रहनेवाली विद्युत्-रश्मियों की बौछार के फलस्वरूप पृथ्वी के वायु-मंडल में बहुत ऊँचाई पर उमगनेवाले एक प्रकार के चुंबकीय तूफान के कारण थिरका करती हैं। जिन दिनों सूर्यपृष्ठ पर कलंकों के बवंडर बाढ़ पर होते हैं, उन दिनों ये रोशनियाँ बहुत उग्र हो उठती हैं (दे० पृ० ५३ का चित्र)। सूर्य-कलंक (जोकि सूर्य पर उमगनेवाले भीषण चुंबकीय बवंडर होते हैं) किस प्रकार पृथ्वी पर अपना प्रभाव डालते हैं और उनके ग्यारह-वर्षीय बढ़ती के चक्र का किस प्रकार हमारे विशाल वृक्षों के भीतर की पर्तों पर आलेख अंकित रहता है, इसका उल्लेख हम पहले कर ही चुके हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

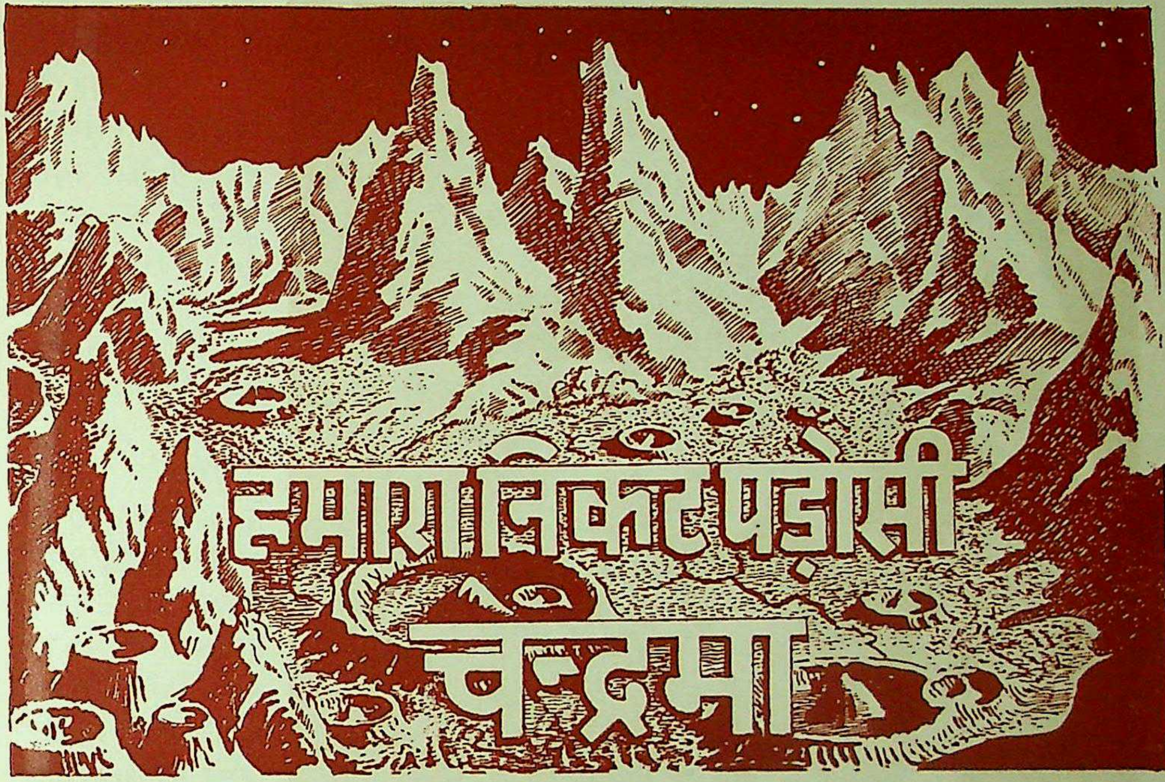

आकाश के कौतुकों में हमारे लिए यदि सबसे तेजस्वी और महत्वपूर्ण सूर्य है, तो सबसे सुंदर और लुभावना निस्संदेह चन्द्रमा ही है। यह अनोखा रुपहला गोला अपनी शीतल चाँदनी की छटा छहराकर धरती पर की हमारी दुनिया को कुछ समय के लिए मानो परीलोक में बदल दिया करता है। आदिकाल ही से वह मनुष्य के लिए आकर्षण की वस्तु रहा है। वह नन्हें-नन्हें बच्चों से लेकर कवियों-कलाकारों तक सभी को अपने सौन्दर्य के जादू से मंत्रमुग्ध करता रहा है। और तो और, वैज्ञानिकों तक को उसने अपने मोहपाश में उलझा लिया है––तभी तो वे उस तक जा पहुँचने की जीतोड़ कोशिशों में लगे हुए हैं!

धरती के साथ चाँद का गहरा नाता

चाँद के साथ धरती के निवासियों का लगाव कोई अनहोनी या अस्वाभाविक बात भी नहीं है। क्योंकि समस्त आकाशीय पिंडों में वही तो इस पृथ्वी का सबसे निकट का पड़ोसी है––वही तो है उसका एकमात्र अनन्य सहचर और अभिन्न साथी। फिर कुछ वैज्ञानिकों का तो कहना है कि चाँद संभवतः इस धरती की ही संतान है। उनकी धारणा है कि करोड़ों या अरबों वर्ष पूर्व किसी समय पृथ्वी की कोख से जनमकर वह आसमान में छिटक गया है। तभी से माता के साथ लगे रहनेवाले शिशु की तरह वह पृथ्वी के आकर्षण में बँधा-बँधा साथ-साथ चल रहा है। तो फिर, क्यों न हमें उसके प्रति मोह हो? आखिर वह है तो हमारा ही सहोदर बन्धु––उसी धरती माता का लाल, जिसकी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नन्हें-नन्हें बच्चों से लेकर कवियों और कलाकारों तक छोटे-बड़े सभी को अपनी सुन्दरता से लुभानेवाला चन्द्रमा दूरदर्शक में ऐसा ही दिखाई देता है ! ये जो चेचक के दाग जैसे व्रण उसके चेहरे पर देख पड़ते हैं, वे ही चन्द्रपृष्ठ के ठंढे ज्वालामुख हैं ! उधर वे काले-काले चकत्ते वहाँ के मैदान हैं, जिन्हें गैलीलियो 'समुद्र' समझ बैठा था ! मनोरंजक बात यह है कि ये मैदान अभी भी 'सागर कहलाते हैं !

कि संतान हम सब हैं ! कुछ वैज्ञानिकों का कहना यह है कि चन्द्रमा पृथ्वी के साथ ही जनमा हुआ उसका भाई है, अर्थात् वह एक छोटा-सा ग्रह है, जोकि संयोग-वश किसी समय अचानक पृथ्वी के आकर्षण के दायरे में आकर उसके द्वारा पाशबद्ध कर लिया गया है ! इस प्रस्थापना को मान लेने पर भी चाँद के साथ हमारे नाते-रिश्ते की गहराई में कोई अंतर नहीं पड़ता। कारण, तब तो सचमुच ही वह हमारा 'चंदा मामा' साबित हो जाता है, जिस नाम से कि बच्चे उसे पुकारा करते हैं।

चन्द्रलोक की वास्तविक छबि—पहाड़, खाई-खंदक और ज्वालामुख

चन्द्रमा पृथ्वी से केवल चार लाख किलोमीटर की दूरी पर है। उसकी इस निकटता के कारण ही वैज्ञानिक उस पर जा पहुँचने के सपने बुन रहे हैं। जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं, वह हमारे इतने नजदीक है कि सबसे बड़े दूरदर्शक में वह इतना अधिक बड़ा देख पड़ता है मानो चालीस-पचास किलोमीटर की दूरी पर ही स्थित हो ! उसकी इस निकटता के कारण ही ज्योतिषियों ने बड़ी बारीकी के साथ उसका अध्ययन किया है। उसके धरातल के विविध क्षेत्रों के उत्तम फोटो-चित्र भी उतारे गए हैं। उसकी सतह के ब्योरेवारे नक्शे भी तैयार कर लिए गए हैं। उस पर पाए जानेवाले मैदानों, पहाड़ों, खंदकों, ज्वालामुखों आदि के विधिवत् नाम भी रख दिए गए हैं। इधर सोवियत रूस और अमेरिका दोनों ही ने उस पर यंत्रों से सज्जित रॉकेट-यान उतारकर, उसकी अत्यन्त निकट

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की झाँकी प्राप्त करने तथा उसके उस पीठ के भाग की भी जानकारी पाने में सफलता प्राप्त कर ली है, जोकि चन्द्रमा के अपनी धुरी पर न घूम पाने के कारण पृथ्वी से हमें नहीं दिखाई देता ! ये सब उपलब्धियाँ चन्द्र-लोक की किस प्रकार की छवि हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं और उसकी कैसी कहानी सुनाती हैं, आओ देखें !

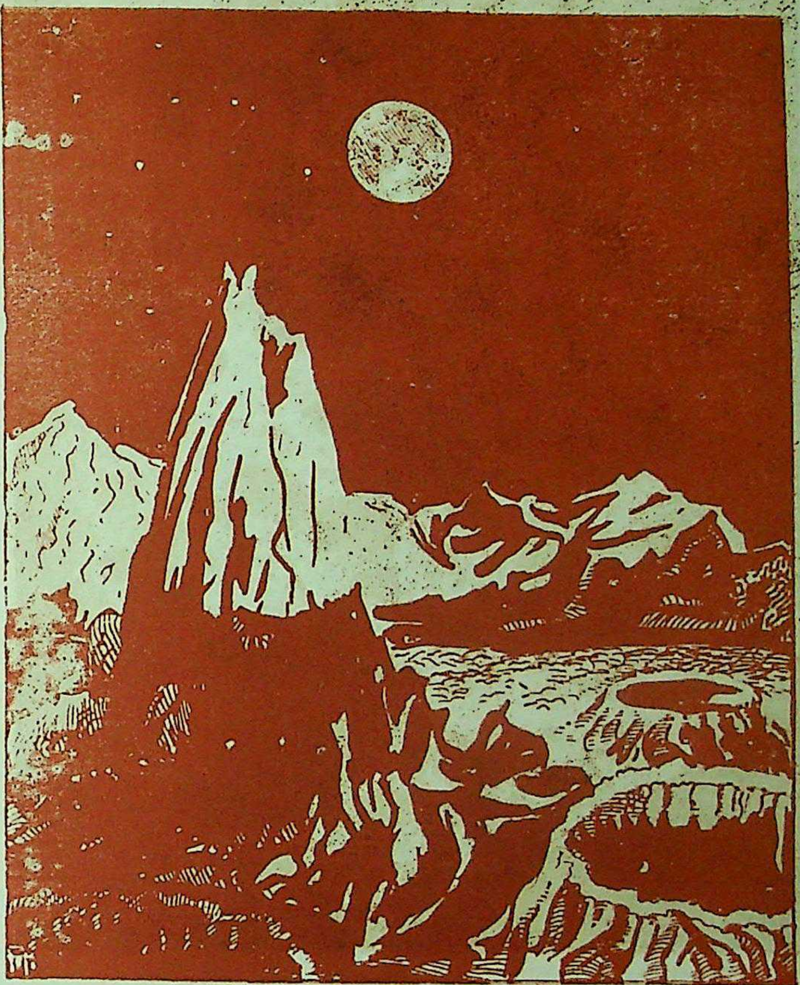

ऊँचे-ऊँचे तीखे सूखे पहाड़, गहरे खंदक, ठंडे पड़े हुए असंख्य ज्वालामुख, जलरहित हरियालीरहित मैदान और रात को आकाश में एक बड़े-से चाँदी के हण्डे की तरह जगमगाता हुआ पृथ्वी का गोला—चन्द्रलोक की झाँकी ऐसी ही कुछ है !

तुम्हें याद होगा कि आज से कोई तीन शताब्दी पूर्व गैलीलियो ने सबसे पहले अपने प्रारंभिक दूरदर्शक से वेध करके यह पता लगाया था कि चन्द्रमा पर जो दाग और धब्बे आदि देख पड़ते हैं, वे दरअसल उसके ऊबड़ खाबड़ धरातल के निशान-हैं। आगे चलकर जब अधिक शक्तिशाली दूर-दर्शक बने और उनके द्वारा चन्द्रपृष्ठ के कहीं अधिक स्पष्ट तथा परिवर्द्धित फोटो-चित्र प्राप्त हुए, तो यह निश्चित रूप से ज्ञात हो गया कि चन्द्रमा पर भी हमारी पृथ्वी की तरह अनेक ऊँचे-ऊँचे पहाड़ हैं ! उनकी श्रेणियाँ विशाल घाटियों और खाई-खन्दकों की रचना करती हुई सैकड़ों किलोमीटर तक फैलती चली गई हैं। वहाँ बहुतेरे मैदान भी हैं, जो पृथ्वी पर से हमें कोरी आँखों से बड़े-बड़े काले चकत्तों जैसे देख पड़ते हैं। इन काले सपाट भागों को बेचारा गैलीलियो (अपने कम शक्ति के दूरदर्शक के कारण) चन्द्रलोक के सागर समझ बैठा था ! इसीलिए उनके नाम 'प्रशान्त सागर', 'वर्षा सागर', 'अमृत सागर', शान्ति सागर' आदि के ढंग पर रख दिए गए ! बाद में यह निश्चित रूप से ज्ञात हो जाने पर भी कि चन्द्रमा पर पानी का कहीं पता भी नहीं है, इन क्षेत्रों का नाम एक बार सागरों के नाम पर जो रख दिया गया, सो अब भी ज्यों-का-त्यों प्रचलित है ! यह एक मजाक की बात ही समझो !

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

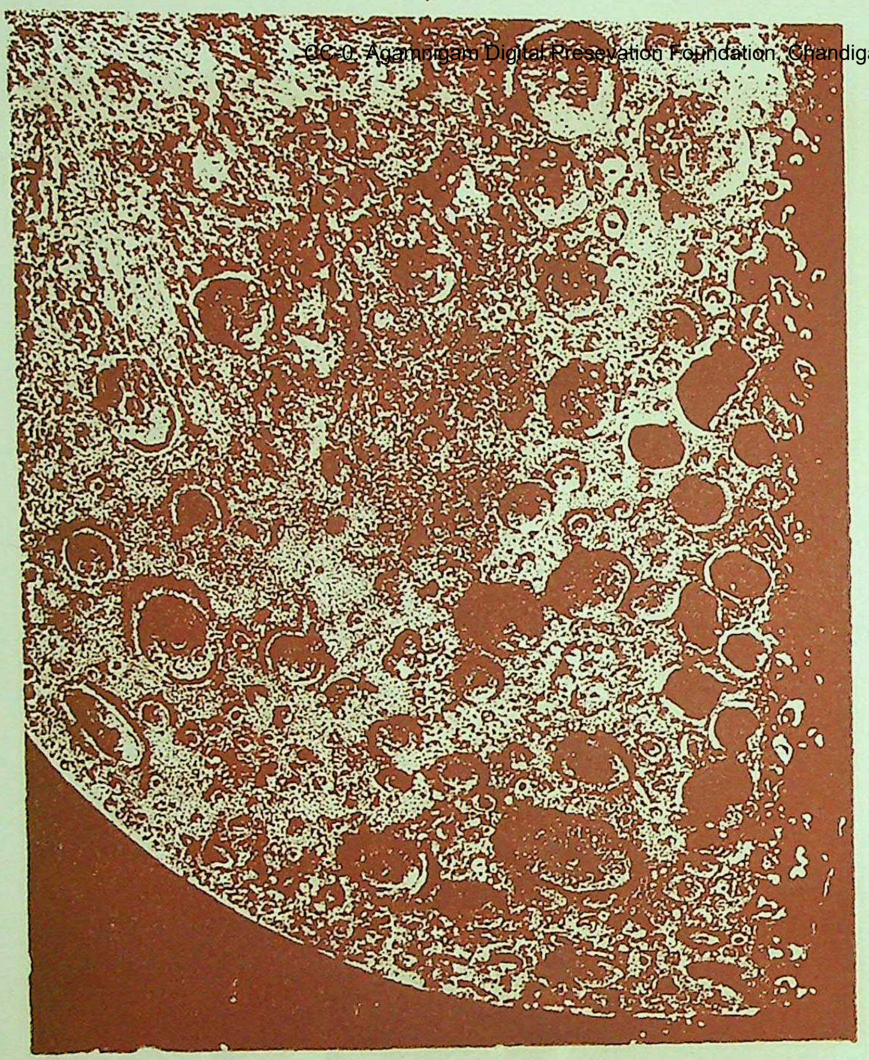

दूरदर्शक से चन्द्रमा के अलग-अलग हिस्सों के कुछ बड़े ही मार्के के फोटो लिये गए हैं। उनमें उसकी सतह पर के ज्वालामुखों, पर्वतश्रेणियों आदि की बड़ी भव्य और ब्योरेवार झाँकी उतर आई है। चेचक के दाग जैसे इन ठंडे पड़ गए ज्वालामुखों पर ध्यान दो! इनमें से कुछ का व्यास सौ किलोमीटर से भी अधिक है!

पर्वतों और मैदानों के साथ-साथ चन्द्रपृष्ठ की झाँकी की एक विशेषता वहाँ हजारों की संख्या में मौजूद ठंढे पड़े हुए ज्वालामुखों जैसी वे रचनाएँ हैं, जो कि दूरदर्शकों में चाँद के चेहरे पर के चेचक के दाग जैसे जान पड़ते हैं! ये ज्वालामुख आकार में कुछ मीटर से लेकर करीब सौ-डेढ़ सौ किलोमीटर व्यास तक के पाए गए हैं! इनमें से कुछ की दीवारें तो दो-तीन किलोमीटर तक ऊँची हैं! इन रहस्यपूर्ण गड्ढों के मध्य में प्रायः एक शिखर या पर्वतीय शृंग भी अपना मस्तक ऊँचा उठाए हुए देखने को मिलता है। साथ ही कुछ बड़े ज्वालामुखों के आसपास से एक प्रकार की श्वेत चमकीली धारियाँ देशान्तर रेखाओं की भाँति चारों ओर से फूटकर सैकड़ों-हजारों किलोमीटर तक मैदानों, घाटियों, पर्वतमालाओं, खाई-खन्दकों, यहाँ तक कि छोटे-छोटे ज्वालामुखों तक को चीरती हुई एकदम सीधे फैलती चली गई हैं। ये रहस्यपूर्ण धारियाँ क्या हैं, निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

दूर से लुभावना देख पड़ने पर भी चन्द्रलोक निरा प्रेतलोक-सा डरावना है

पृथ्वी पर से शुक्ल पक्ष की किसी भी रात्रि को इतना सुन्दर, शीतल और लुभावन दिखाई देनेवाला चन्द्रमा वास्तव में अपने अंचल में कैसी सुनसान, निर्जीव और बीहड़ दुनिया बसाए हुए है, इसकी सही झाँकी यदि तुम्हें देखने को मिल सके, तो संभवतः उसके प्रति तुम्हारा खयाल ही बदल जायगा और तुम चाँद के नाम से ही भय खाने लगोगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कारण, चन्द्रलोक सचमुच ही एक डरावना लोक है ! जरा कल्पना करो ऐसी दुनिया की, जहाँ न तो हवा है न पानी ! न पेड़-पौधे हैं, न किसी भी तरह के जीवधारी ! न बादलों की हलचल है, न आँखों को लुभानेवाली हरियाली ! वहाँ है क्या ? केवल ऊँचे-ऊँचे तीखे सूखे पहाड़ ! कई किलोमीटर गहरे खंदक ! ठंडे पड़े हुए असंख्य ज्वालामुख ! जल-रहित हरियाली-रहित मरुभूमि जैसे भीषण नंगे मैदान ! खाईनुमा दरारें ! भयावनी शक्ल की चट्टानें ! भला, कौन ऐसे लोक में क्षण भर को भी टिकना चाहेगा ? और यदि कोई टिकना भी चाहे, तो उसके लिए ऐसा करना कितना कठिन होगा ! क्योंकि, वायु के सर्वथा अभाव के कारण, एक तो वहाँ जीवित रहना ही दूभर हो जायगा; दूसरे, पृथ्वी के वायुमंडल की तरह कोई बीच-बचाव का साधन न होने की वजह से वहाँ का धरातल दिन में तवे की तरह तप जाता होगा और रात में सूरज के छिपते ही हमारे ध्रुवप्रदेशों की घोर शीत को भी मात कर देनेवाली (शून्य डिग्री से भी १३० शतांश कम ताप की) सरदी का साम्राज्य वहाँ छा जाता होगा । फिर वहाँ के दिन और रात भी पृथ्वी जैसे चौबीस घंटे के चक्र में निबद्ध न होकर प्रत्येक चौदह-चौदह दिनों के बराबर के होंगे, अर्थात् हमारे यहाँ के लगभग एक महीने के बराबर का वहाँ का दिन-रात का एक चक्र चलता होगा ।

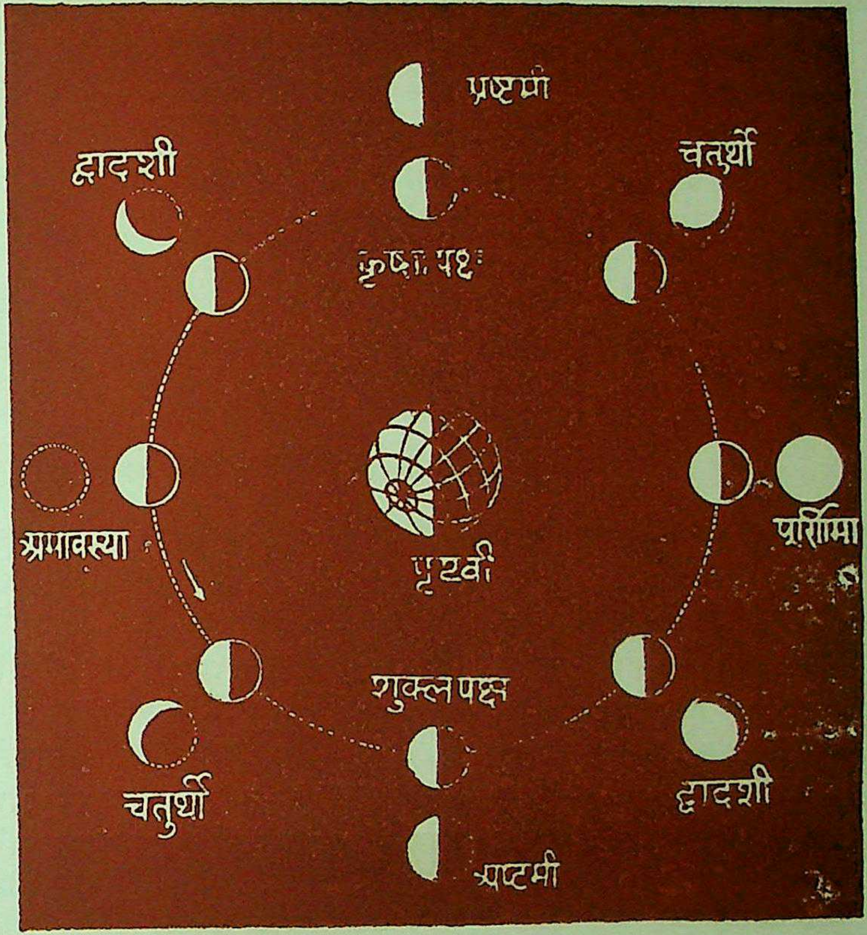

चन्द्रमा की कलाएँ केवल पृथ्वी और सूर्य के लिहाज से उसकी स्थिति के फेरबदल के कारण ही दिखाई पड़ती हैं । वैसे तो चन्द्रलोक का आधा हिस्सा पृथ्वी की तरह सदैव सूर्य की रोशनी से प्रकाशित रहता है, जैसा कि चित्र के मध्य भाग में दिखाया गया है । परन्तु अलग-अलग स्थिति में दृष्टि के अंतर से चन्द्रमा के इस प्रकाशित हिस्से का कम-ज्यादा अंश हमें पृथ्वी से दिखाई पड़ता है, जैसा कि बाहरी आकृतियों द्वारा दरसाया गया है । इसी के फलस्वरूप शुक्ल और कृष्ण पक्ष की विविध कलाएँ हमें दिखाई देती हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तुम्हें यह जानकर हैरानी होगी कि वायु के सर्वथा अभाव के कारण चन्द्रलोक में आवाज या ध्वनि के सुनाई पड़ने की कोई संभावना ही नहीं है! न वहाँ आसमान में बादल, आँधी, कोहरा, वर्षा, हिमपात आदि की पृथ्वी जैसी हलचलों के घटने की ही कोई गुंजाइश है! वहाँ तो केवल सन्नाटे और मौत की-सी डरावनी शान्ति का ही अखण्ड साम्राज्य छाया रहता होगा! हाँ, यदि सूनेपन की उस भयावनी दुनिया में भी चकित थकित कर देनेवाली कोई आकर्षण की वस्तु दिखाई देती होगी, तो वह होगी दिन में सूरज के तमतमाते रहने पर भी, चँदोवे की तरह तने हुए काले आसमान में छाई हुई, चमकीले तारों की अनूठी झाँकी तथा रात को चाँदी के बड़े से हंडे के रूप में उदय होकर अपनी अद्भुत चाँदनी छितरानेवाले पृथ्वी के विशाल गोले की कभी भी न भुलाई जाने योग्य छटा, जिसकी कि समता का दृश्य हमें इस धरती पर देखने को कदापि नहीं मिल सकता!

आज चन्द्रमा के बारे में हम क्या जानते हैं?

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, पृथ्वी से अपनी निकटता के कारण चन्द्रमा का अन्य आकाशीय पिण्डों की अपेक्षा अधिक बारीकी के साथ अध्ययन किया जा सका है और फलतः ज्योतिषियों को उसके बारे में आज निश्चित रूप से बहुतेरी बातें ज्ञात हैं। उदाहरणार्थ, सब कोई इस बात से सहमत हैं कि पृथ्वी से चाँद की औसत दूरी ३८०,८०० किलोमीटर है—अर्थात् वह अपनी कक्षा में पृथ्वी से अधिक से अधिक ४०४,७५२ किलोमीटर तक दूर जाते और ३५४,५७६ किलोमीटर तक समीप आते हुए पाया गया है। इसी तरह यह भी निश्चित हो चुका है कि उसका व्यास ३,४६१ किलोमीटर है। परिधि १०,८७२ किलोमीटर है। आयतन २१,७०८,८००,००० घन-किलोमीटर है। वजन ७९,२४८,०००,०००,०००,०००,००० मी० टन है। क्षेत्रफल ३७,५२९,६०० वर्ग-किलोमीटर है। गति ३,६५९·२ कि०मी० प्रति घंटा है। पृथ्वी के आसपास का परिक्रमण-काल २७ दिन ७ घंटा ४३ मिनट ११ सैकंड है। आकर्षण-शक्ति पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति का छठवाँ भाग है। चमक सूर्य की

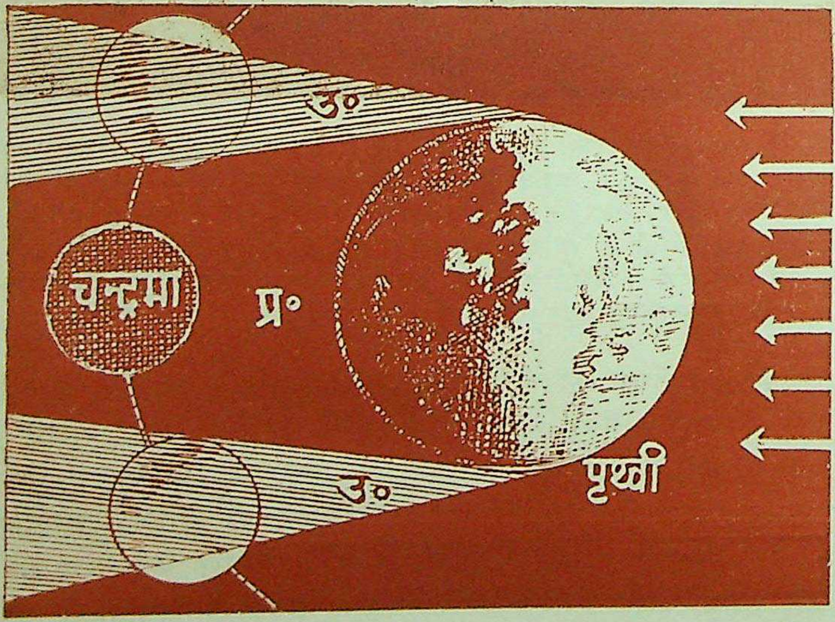

चन्द्र-ग्रहण चन्द्रमा और सूर्य के बीच पृथ्वी के आड़ में आ जाने के कारण होता है। जब चन्द्रमा प्रच्छाया ('प्र') के मार्ग में पड़ता है, तो उसका खग्रास या पूर्ण ग्रहण और उपच्छाया ('उ') के मार्ग में पड़ता है, तो खंड ग्रहण दिखाई पड़ता है!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चमक का ६१८,०००वाँ भाग है और दिन का अधिकतम ताप ९३·३° सेंटीग्रेड तथा रात का शून्य से १३० शतांश कम होगा ! फिर इस बात में भी किसी को कोई शंका नहीं है कि चन्द्रमा पर कोई वायुमंडल नहीं है। फलतः वहाँ न तो हवा है, न पानी ! न वहाँ वनस्पति पाए जा सकते हैं, न किसी भी तरह के जीवधारी ! ज्यादा से ज्यादा संभावना यही है कि धरातल के समीप के कतिपय गड्ढों और खंदकों में शायद कहीं-कहीं किसी गैस की हल्की परत मौजूद हो, जिसके कि कुछ संकेत रूसी ज्योतिषियों को मिले हैं !

दूरदर्शकों की दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही शक्ति की बदौलत तथा चन्द्रमा पर रूस एवं अमेरिका द्वारा यंत्रसज्जित रॉकेट उतारने के फलस्वरूप चन्द्रपृष्ठ के उत्तम फोटो-चित्र प्राप्त हुए हैं। उनसे अपने इस निकट पड़ोसी का घनिष्ट परिचय पाने में मूल्यवान् सहायता मिली है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, आज ज्योतिषियों के पास चन्द्रमा की सतह के वैसे ही मानचित्र या नकशे हैं, जैसे कि भूगोलशास्त्रियों के पास पृथ्वी के धरातल के नकशे रहा करते हैं। इन मानचित्रों में चन्द्रमा के पर्वत और मैदान, गिरिमालाएँ और घाटियाँ, खाइयाँ और दरारें तथा हजारों की संख्या में छितरे हुए छोटे-बड़े ज्वालामुख आदि अपने-अपने नाम सहित अंकित रहते हैं ! आइए, चन्द्रपृष्ठ के इन कौतुकों का अधिक ब्योरेवार परिचय प्राप्त करें।

गगनचुंबी पर्वत और सैकड़ों किलोमीटर लंबी दरारें

तुम्हें यह जानकर कौतूहल होगा कि चन्द्रमा यद्यपि पृथ्वी से बहुत छोटा है, तथापि उस पर ऐसे गगनचुंबी पर्वत हैं, जो हिमालय जैसी हमारी श्रेणियों के शिखरों से होड़ बद सकते हैं ! चन्द्रपृष्ठ के नकशों में दस प्रमुख पर्वत-श्रेणियाँ सूचित मिलती हैं। चूँकि ये पहलेपहल योरपीय ज्योतिषियों द्वारा ही खोज निकाली गई थीं, अतः उनका नामकरण योरप की कतिपय सुप्रसिद्ध गिरिमालाओं के नाम पर ही हुआ है––यथा, 'आल्प्स', 'एपेनाइन्स', 'कार्पेथियन्स', 'काकेशश' आदि। इनमें एपेनाइन्स पर्वतमाला की लंबाई लगभग सवा सात सौ किलोमीटर आँकी गई है और उसके तीन सौ

चन्द्रमा पर गुरुत्वाकर्षण-शक्ति पृथ्वी के मुकाबले में इतनी कम है कि यदि हम पृथ्वी पर ऊँचाई में लगभग २ मीटर तथा लंबान में अधिक से अधिक ८-९ मीटर कूद सकते हैं, तो चन्द्रलोक में लगभग १२।। मीटर ऊँची एवं ४८ मीटर लंबी छलांग भर सकते हैं, जैसा कि इस काल्पनिक छबि में दिग्दर्शित है !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिखर गिने गए हैं ! इस पर्वतमाला की जो परछाईं चन्द्रपृष्ठ पर पड़ती है, वह १२८ किलोमीटर तक चौड़ी नापी गई है ! इन परछाइयों की नाप के आधार पर ही चन्द्रलोक के पर्वत-शिखरों की ऊँचाई का भी अनुमान वैज्ञानिकों ने लगाया है। उदाहरणार्थ, डोरफेल पर्वतमाला ८,१३५ मीटर ऊँची पाई गई है, जो हिमालय के नंदादेवी शिखर से होड़ बद सकती है। अनेक ज्वालामुखों के कगार तथा उनके बीच की चोटियाँ भी आश्चर्यजनक रूप से गगनचुंबी हैं ! उदाहरण के लिए, न्यूटन नामक ज्वालामुख का कगार ७,२७० मीटर ऊँचा है और एराटोस्थिनीज ज्वालामुख की मध्यवर्ती चोटी की ऊँचाई ४,८०० मीटर है ! इन आँकड़ों से यह स्पष्ट हो जाता है कि चन्द्रमा के पहाड़ अपने आकार के अनुपात में काफी ऊँचे हैं !

उधर चन्द्रलोक के खाई-खंदकों और वहाँ की दरारों की भी लंबाई-चौड़ाई तथा गहराई चौंका देनेवाली हैं। उनकी समता की कोई करामात पृथ्वी पर नहीं है। ये खाइयाँ और दरारें सैकड़ों किलोमीटर लंबी, तीन-चार किलोमीटर तक चौड़ी और साढ़े तीन सौ मीटर तक गहरी पाई गई हैं ! इन खाई-खंदकों से भी अधिक रहस्यपूर्ण हैं वे चमकीली श्वेत धारियाँ, जोकि कई ज्वालामुखों के चारों ओर से फूटकर सैकड़ों-हजारों किलोमीटर की लंबाई तक एकदम सीधी फैलती चली गई हैं। वे अपनी राह में पड़नेवाले पर्वतों और ज्वालामुखों की भी परवा नहीं करतीं ! वे इस प्रकार बढ़ती चली गई हैं मानो इन सब बाधाओं को चीरकर निकली हों ! इस प्रकार की बड़ी ही स्पष्ट और सुन्दर धारियाँ 'टाइको' नामक ज्वालामुख के आसपास देशान्तर रेखाओं की तरह फैली देख पड़ती हैं। ये धारियाँ दरअसल क्या हैं, कोई नहीं जानता। केवल अटकल लगाया जाता है कि संभव है मूलतः ये ऐसी दरारें रही होंगी, जिनमें ज्वालामुखों की राह से चंद्रमा के गर्भ का पिघला हुआ पदार्थ कभी बहकर जम गया होगा। तारीफ तो यह है कि ये धारियाँ न तो धरातल से ऊपर उभरी हुई हैं, न खाइयों या दरारों की तरह भीतर धँसी हुई हैं। इसी कारण, उनकी कोई परछाईं नहीं पड़ती। जो भी हो, अपने अंचल में वे चन्द्रमा के अतीत का एक गूढ़ रहस्य छिपाए हुए हैं।

ज्वालामुख—क्या और क्यों ?

परन्तु चन्द्रलोक के सबसे रहस्यपूर्ण कौतुक निस्संदेह उसकी सतह पर चेचक के दाग और मुँहासे जैसी दिखाई पड़नेवाली वे रचनाएँ हैं, जिन्हें उसके 'ज्वालामुख' कहकर पुकारा जाता है। इन गड्ढों की संख्या दो लाख से भी अधिक आँकी गई है ! इनमें से कुछ तो इतने छोटे हैं कि वे दूरदर्शक में भी मुश्किल से दिखाई पड़ते हैं, परन्तु बहुतेरे इतने बड़े हैं कि उनका व्यास डेढ़ सौ किलोमीटर तक का पाया गया है तथा उनके आसपास का परकोटा दो-तीन किलोमीटर से अधिक ऊँचा नापा गया है। इन थालीनुमा रचनाओं के मध्य में प्रायः एक पर्वतीय चोटी होने का उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं। यह एक अनोखी विशेषता है, जो पृथ्वी के ज्वालामुखों में प्रायः देखने को नहीं मिलती।

चन्द्रलोक के इन ज्वालामुखों में से कई के नाम प्रसिद्ध पाश्चात्य ज्योतिषियों के नाम पर रख दिए गए हैं—जैसे कि कापर्निकस, केप्लर, टाइको, न्यूटन आदि। कुछ प्राचीन यूनानी दार्शनिकों के नाम से भी पुकारे जाते हैं—जैसे प्लेटो, आर्कीमीडीज आदि। प्रश्न उठता है कि आखिर इन फफोले जैसी रचनाओं की चन्द्रमा पर भरमार क्यों है ? ये

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ज्वालामुख कब पैदा हुए और कैसे, इस संबंध में वैज्ञानिकों ने तरह-तरह की अटकल लगाई है। कुछ कहते हैं कि ज्वालामुखों जैसी ये रचनाएँ आज यद्यपि ठंढी और शान्त हैं, परन्तु किसी समय वे अवश्य ही जाग्रत और तप्त रही होंगी। तब यही ज्वालामुख-रूपी चिमनियाँ पिघले हुए लावा एवं राखमिश्रित धुएँ के बादलों के गरम उद्गार निकालते हुए मानो प्रलय का दृश्य उपस्थित करती होंगी ! इस प्रकार की अटकल लगानेवालों का कहना यह है कि सुदूर अतीत में चाँद भी गरम था और उसका अंतराल पृथ्वी के गर्भ-मंदिर की तरह पिघले हुए तप्त द्रव्य से तमतमा रहा था। उसकी भीतरी भट्टी के गैसीय पदार्थ के दवाव के फलस्वरूप ही चन्द्रपृष्ठ पर ये ज्वालामुख-रूपी फफोले फूटते चले गए, जिनमें से होकर उसका भीतरी विकार उबल-उबलकर निकलता रहा !

परन्तु कुछ वैज्ञानिक ऊपर उल्लिखित मत से सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि इन गड्ढों की अपरिमित संख्या को देखते हुए अधिक संभावना इस बात की है कि ये चन्द्रमा के अंतस्तल की क्रिया-प्रक्रिया के कारण नहीं, वरन् बाहरी उत्पातों के फलस्वरूप उपजे हैं। इन लोगों के मतानुसार उन दिनों जब कि चन्द्रमा की सतह अर्द्ध पिघले हुए तप्त द्रव्य से आच्छादित थी, उस पर ऊपर से उल्कापात के रूप में लगातार रोड़े बरसते रहे होंगे। इसी के फलस्वरूप ये ज्वालामुख जैसे गड्ढे बन गए। इन गड्ढों के बीच जो पर्वतीय चोटी-सी पाई जाती है, उसका यही उचित समाधान मालूम देता है।

चन्द्रमा की कलाएँ

रह-रहकर तुम्हारे मन में यह प्रश्न भी उठता होगा कि आखिर चाँद की शक्ल प्रति दिन हमें अलग-अलग आकार की क्यों दिखाई देती है, अर्थात् वह हर पखवाड़े में घटते-बढ़ते क्यों देख पड़ता है ? इस बात का रहस्य समझने के लिए तुम्हें इस तथ्य पर ध्यान देना होगा कि जहाँ पृथ्वी (ग्रह होने के नाते) सूर्य की निरंतर प्रदक्षिणा करती रहती है, वहाँ चन्द्रमा भी पृथ्वी का उपग्रह होने के कारण उसके आसपास घूमते हुए साथ-साथ चलता रहता है। फलतः पृथ्वी और सूर्य के लिहाज से चंद्रमा की स्थिति निरन्तर बदलती रहती है। चूँकि चन्द्रमा की अपनी कोई रोशनी नहीं है--वह सूर्य के प्रकाश से ही प्रकाशित है, अतः उसकी स्थिति के इस फेरबदल के कारण पृथ्वी से अलग-अलग स्थिति में उसके प्रकाशित मुखमंडल का कम-ज्यादा भाग हमें देखने को मिलता है। फलतः हमें द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, आदि से लेकर पूर्णिमा तक के शुक्ल पक्ष के तथा पुनः उल्टे क्रम से कृष्ण पक्ष के चाँद की कलाएँ दृष्टिगत होती हैं। चूँकि पृथ्वी के आसपास चन्द्रमा लगभग २९।। दिनों में एक परिक्रमा लगाता है, अतः उसकी ये कलाएँ लगभग १४-१५ दिनों के दो पखवाड़ों की अवधि में क्रम से बँटी रहती हैं। भारतीय पंचागों (तिथिपत्रों) की काल-गणना इन्हीं चन्द्र-कलाओं के आधार पर निर्धारित की जाती है। पृ० ५९ के मानचित्र से चन्द्रमा की इन कलाओं का रहस्य तुम बखूबी समझ सकते हो।

चन्द्र-ग्रहण

जैसा कि प्रायः तुमने देखा होगा, वर्ष में कभी न कभी सूर्यग्रहण की भाँति चन्द्रमा का भी ग्रहण हुआ करता है। यह घटना क्योंकर होती है, इसका खुलासा पृ० ६० के मानचित्र में किया गया है। स्पष्ट है कि अपनी कक्षा में भ्रमण करते हुए जब चन्द्रमा सूर्य

और पृथ्वी के लिहाज से ऐसी स्थिति में आ जाता है कि पृथ्वी का गोला आड़ में आकर सूर्य से चाँद पर पड़नेवाली रोशनी के लिए बाधक बन जाता है, तभी हमें चन्द्र-ग्रहण दिखाई देता है। यह घटना केवल पूर्णिमा की तिथि पर ही घट पाती है। ग्रहण के समय चन्द्रमा एकदम काला न पड़कर ताम्रवर्ण के मंद प्रकाश से कुछ-कुछ प्रकाशित-सा रहता है। यह रोशनी पृथ्वी के प्रतिबिंबित प्रकाश के उस पर पड़ने के फलस्वरूप देख पड़ती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चन्द्रमा के बारे में अन्य रोचक बातें

चन्द्रमा के बारे में कई बातें ऐसी हैं, जिन्हें सुनकर तुम अचंभे में पड़े बिना नहीं रह सकते। उनमें से एक यह है कि चाँद का केवल ५९ प्रतिशत भाग ही हम पृथ्वी से देख पाते हैं, उसकी पीठ का हिस्सा हमें कभी भी देखने को नहीं मिलता! इसका कारण यह है कि चाँद बेचारा अपनी धुरी पर नहीं घूम पाता——वह सदैव ही पृथ्वी की ओर अपना चेहरा किए रहता है! हाँ, पिछले दिनों सोवियत रूस और संयुक्त राज्य (अमेरिका) दोनों ही ने अपने रॉकेटों से चाँद के गोले की परिक्रमा लगवाकर उसके पीठ के हिस्से के फोटो-चित्र प्राप्त किए हैं। उनसे यह बात मालूम हो सकी है कि चन्द्रमा का वह छिपा हुआ भाग भी देखने में लगभग वैसा ही है, जैसा कि दिखाई पड़नेवाला हिस्सा!

इसी तरह अन्य एक रोचक बात यह है कि पृथ्वी और चन्द्रमा की गुरुत्वाकर्षण-शक्तियों में इतना अधिक अंतर है कि जो वस्तु पृथ्वी पर छः किलोग्राम वजन की होगी, वही चाँद पर तौल में एक किलोग्राम ही उतरेगी! इसी प्रकार यदि पृथ्वी पर हम अधिक से अधिक लगभग दो मीटर ऊँचे और आठ-नौ मीटर लंबान में कूद सकते हैं, तो चन्द्रलोक में पहुँचकर इसके बजाय लगभग १२॥ मीटर ऊँची और ४८ मीटर लंबी कुदान भर सकेंगे!

यह तो तुमने समाचारपत्रों में पढ़ा ही होगा कि सोवियत रूस और संयुक्त राज्य (अमेरिका) दोनों ही चन्द्रमा पर रॉकेट-यान द्वारा आदमी को उतारने और उसे वहाँ से पुनः पृथ्वी पर वापस ले आने के प्रयत्न में जी-जान से जुटे हुए हैं! ये दोनों ही देश चन्द्रमा की सतह पर अपने यंत्रसज्जित रॉकेटों को तो एक से अधिक बार उतार चुके हैं! उक्त यानों के संयत्रों से टेलिवीजन द्वारा चन्द्रलोक के हजारों अद्भुत अपूर्व फोटो-चित्र भी प्राप्त किए जा चुके हैं। इन फोटो-चित्रों ने चन्द्रमा की जो झाँकी हमें दरसाई है, उससे उसके बारे में अनेक वैज्ञानिक तथ्यों की पुष्टि हो गई है। यह भी पक्के तौर पर मालूम हो चुका है कि चन्द्रपृष्ठ काफी मजबूत और ठोस है। वह धूलि के अंबार से ढका हुआ नहीं है, जैसा कि कुछ ज्योतिषियों को शंका थी। फलतः पृथ्वी से जब कभी अंतरिक्ष-यात्रियों को लेकर कोई राकेट यान चन्द्रलोक में पहुँचेगा, तो वह सही-सलामत चाँद की सतह पर उतर जाएगा——वह धूलि के अंबार में धँसकर खतरे में नहीं पड़ेगा। सबसे बड़ी बात तो यह मालूम हुई है कि चन्द्रमा की चट्टानें रासायनिक दृष्टि से पृथ्वी की चट्टानों से सर्वथा मिलती-जुलती हैं। इससे इस प्रस्थापना को विशेष बल मिला है कि चन्द्रमा कभी न कभी पृथ्वी की ही कोख से जनमा था।

तो लो, हमने अपने इस पड़ोसी के बारे में कितनी ही अद्भुत बातें जान लीं। परन्तु अभी तो उसके बारे में न जाने क्या-क्या गुल खिलेंगे, जबकि आदमी उस पर जा उतरेगा!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

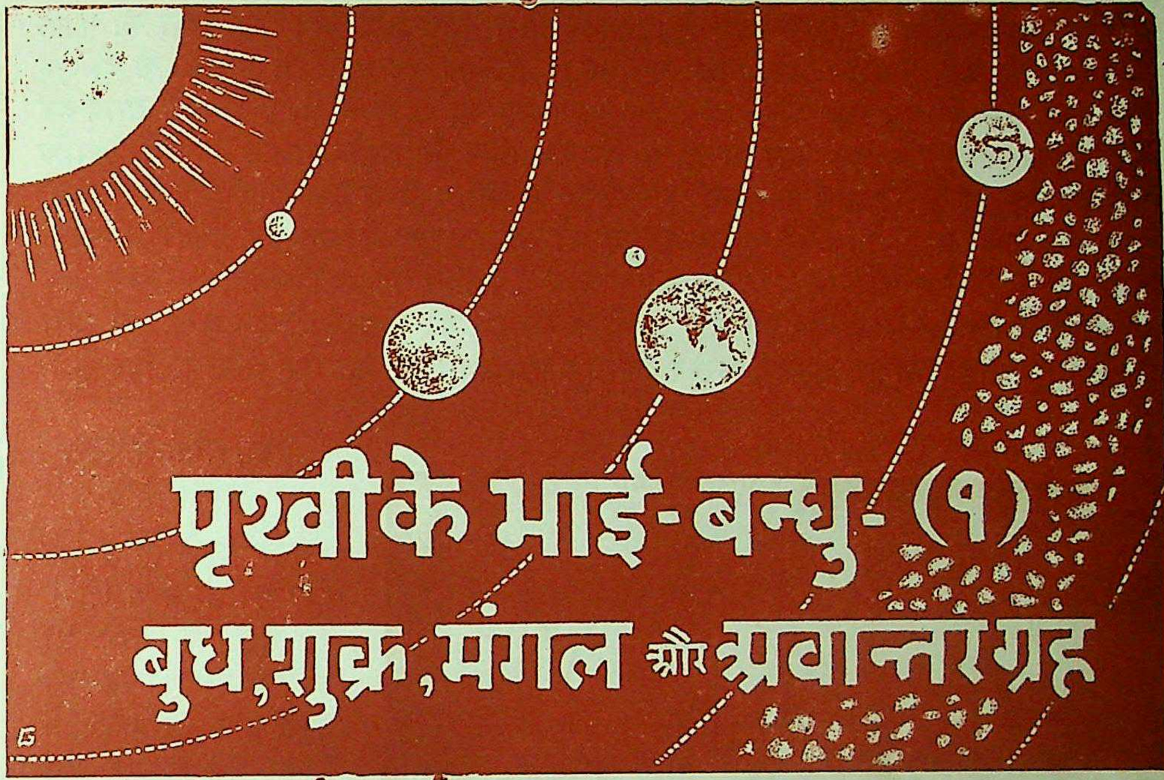

यों तो रात को नित ही हजारों ज्योतियाँ आसमान में जगमगाती दिखाई देती हैं। परन्तु समीपता की दृष्टि से चन्द्रमा के बाद सौर परिवार के वे गिने-चुने सदस्य ही हमारे निकट पड़ोसी हैं, जोकि 'ग्रह' कहलाते हैं। इन्हें एक ही कुटुंब के होने के नाते 'पृथ्वी के भाई-बन्धु' के नाम से पुकारना अनुचित न होगा। इन ग्रहों में कुछ तो पृथ्वी से छोटे और कुछ बहुत बड़े हैं। यह एक कौतूहलजनक बात है कि छोटे ग्रह बड़ों की अपेक्षा हमारे अधिक समीप हैं--केवल प्लूटो ही एक ऐसा छोटा ग्रह है, जो काफी दूर है। तो फिर, आओ, अपने इन निकट के भाई-बन्धुओं का परिचय प्राप्त करें! हम इनका वर्णन सूर्य से उनकी दूरी के अनुसार क्रम से करेंगे।

कुलपति सूर्य की सबसे निकटवर्ती संतान--बुध

सबसे छोटी संतान सबसे अधिक लाड़ली और पिता के सबसे नजदीक रहनेवाली होती है। सौर परिवार में यह गौरव जिस ग्रह को प्राप्त है, उसका नाम है बुध। न केवल दूरी ही के लिहाज से यह ग्रह अपने अन्य भाई-बन्धुओं की अपेक्षा कुलपति सूर्य के सबसे अधिक नजदीक है, बल्कि अवान्तर ग्रहों के वर्ग को छोड़कर मुख्य नौ ग्रहों में वही आकार में सबसे छोटा, गति में सबसे तेज, वजन में सबसे हल्का और सबसे अधिक तपनेवाला भी है। सच तो यह है कि सूर्य के सबसे निकट होने के कारण हर बात में उसे पिता मार्त्तण्ड के प्रखर तेज का सबसे अधिक कान्तिमान अंश मिला है!

CC0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

परन्तु सूर्य के अति निकट होने के कारण इस ग्रह को पृथ्वी से देख पाना और उसकी ठीक से छानबीन करना सरल नहीं हैं। उसकी कक्षा बहुत छोटी है। वह पृथ्वी की कक्षा के भीतर है, बाहर नहीं। अतः प्रायः सूर्योदय से दो-एक घंटे पहले या सूर्यास्त से दो-एक घंटे बाद तक ही वह देखा जा सकता है--अन्य ग्रहों या तारों की तरह रात के समय वह नहीं दिखाई पड़ता। इस अल्प समय में भी वह ठीक से तभी दिखाई देता है, जबकि सूर्य की एक या दूसरी बाजू में पृथ्वी के लिहाज से अधिक से अधिक कोणीय दूरी पर वह होता है। बाकी समय भगवान् भुवनभास्कर की रश्मिमाला में वह इस प्रकार ओतप्रोत रहता है कि उसका पता पाना मुश्किल हो जाता है। फिर भी ज्योतिषियों ने उसके बारे में काफी जानकारी प्राप्त कर ली है। उसी के आधार पर कुछ बातें हम तुम्हें यह बता देते हैं। तुम यह जानकर अचंभा करोगे कि यह ग्रह अपने ढंग का एक निराला पिंड है!

दूरी, गति, आकार, चमक आदि

सबसे पहले तो इसकी दूरी का ही प्रश्न लो! इस संबंध में ध्यान देने की बात यह है कि इसकी कक्षा ठीक वृत्ताकार न होकर बड़े ही बाँके ढंग की है। इसीलिए यह कभी तो सूर्य के काफी नजदीक और कभी उससे बहुत दूर चले जाते देखा जाता है। यह सूर्य से ४५,७४०,८०० किलोमीटर तक समीप और ६९,४१७,६०० किलोमीटर तक दूर पहुँचते पाया गया है। इसी प्रकार पृथ्वी से इसकी अधिक से अधिक दूरी २२०,६५६,००० किलोमीटर पाई गई है और कम से कम दूरी ७६,८३२,००० किलोमीटर तक नापी गई है।

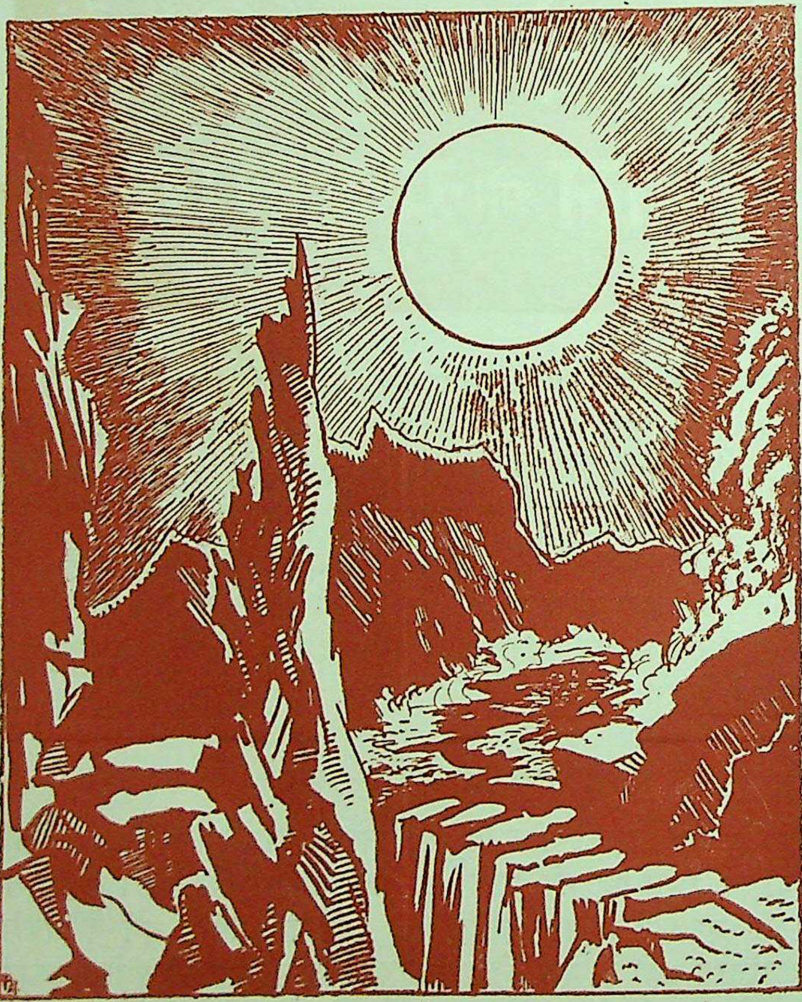

करकराती धारवाले ऊँचे काले पहाड़, भयावने खंदक और ऊपर से आग बरसाता हुआ सूर्य का बड़ा-सा प्रचण्ड गोला--शायद यही होगी बुध की बीहड़ झाँकी!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तुम्हें यह जानकर आश्चर्य होगा कि जिस तरह चन्द्रमा पृथ्वी को अपनी पीठ नहीं दिखाता, उसी तरह बुध भी सूर्य की इस तरह परिक्रमा लगाता है कि सदैव उसका एक ही भाग अपने कुलपति के सामने रहता है ! इसका कारण सूर्य की अति प्रबल आकर्षण-शक्ति है ! उसके पाश में बँधकर बेचारा बुध उसी प्रकार लगातार एक तरफ मुँह किए भागता रहता है, जिस प्रकार कि सरकस का घोड़ा अखाड़े में चाबुक लिए हुए निर्देशक के आस-पास चक्कर लगाता रहता है ! सूर्य की यह परिक्रमा बुध लगभग ८८ दिनों में पूरी कर लेता है। कहते हैं, इस अवधि में वह बेचारा अपनी धुरी पर केवल एक ही चक्कर लगा पाता है ! इस थोड़े से समय में इतनी लंबी परिक्रमा करने के लिए उसे ४० किलोमीटर प्रति सैकंड अथवा ४० लाख कि० मी० प्रति दिन की तेज गति से दौड़ना पड़ता है !

इस असाधारण शीघ्रगामी ग्रह का व्यास हमारे चन्द्रमा से कुछ ही अधिक है--केवल ४,७०० कि० मी०। इसी तरह उसका घनत्व पृथ्वी के घनत्व का ·८ भाग और वजन पृथ्वी के तौल का लगभग अठारहवाँ भाग है। हाँ, सूर्य के अत्यन्त समीप होने के कारण उसकी चमक और ताप निस्संदेह असाधारण हैं ! कहते हैं, वह पृथ्वी की अपेक्षा सात गुनी रोशनी और गरमी सूर्य से पाता है। इसका फल यह होता है कि उसका जो हिस्सा सूर्य के सामने पड़ता है, वहाँ का ताप हमारे यहाँ के सहारा रेगिस्तान के अधिक से अधिक ताप से भी सात गुना होता है ! इस ताप में सीसा धातु आसानी से पिघल सकती है ! इसके विपरीत जो भाग सूर्य से छिपा हुआ रहता है, वहाँ निबिड़ अंधकार के साथ साथ घोर सरदी का बोलबाला छाया रहता होगा, ऐसा अनुमान है !

घने वायुमंडल से ढके हुए शुक्र ग्रह पर से पृथ्वी शायद एक तारे के रूप में आसपास ऐसे ही अनोखे प्रकाश के छल्लों से घिरी हुई दिखाई पड़ती होगी !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

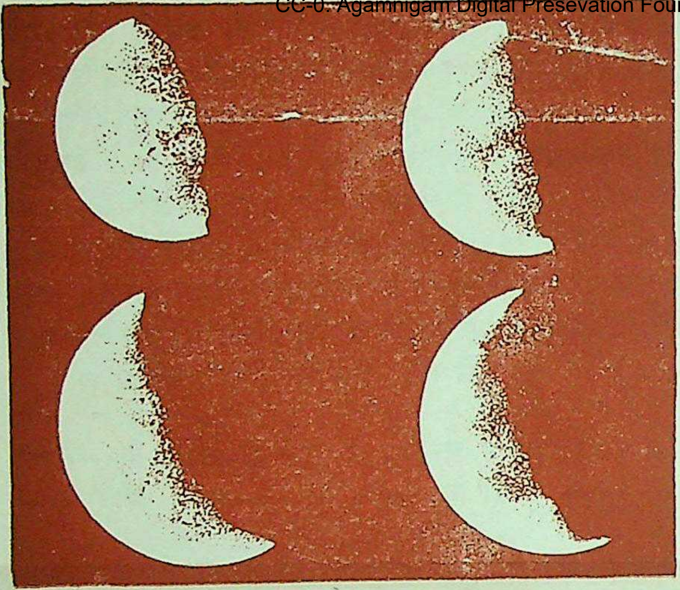

शुक्र में भी चन्द्रमा की भांति कलाएँ दिखाई पड़ती हैं। दूरदर्शक में शुक्र की ये कलाएँ ऐसी ही नजर आती हैं।

चन्द्रलोक से भी अधिक डरावनी झाँकी

एसी स्थिति में बुध पर किसी तरह के वायु मंडल के लिए क्या गुंजाइश हो सकती है? साथ ही वहाँ किसी तरह के जीवन की कल्पना करना भी व्यर्थ ही है! दरअसल, चन्द्रमा की तरह बुध भी एक उजाड़, निर्जीव और सुनसान लोक ही है। बल्कि कई बातों में वह चन्द्रलोक से भी अधिक भयावना है। यद्यपि इस बीहड़ लोक की कोई झाँकी दिखाई पड़ना हमारे लिए संभव नहीं, फिर भी वैज्ञानिकों का यह अनुमान सर्वथा सही जान पड़ता है कि लगातार भीषण गरमी में तपते रहने तथा वायुमंडल-रूपी बचाव का कोई भी साधन न होने के कारण, उसकी सतह पर अठारह हजार मीटर तक ऊँचे, करकराती धारवाले काले रंग के पहाड़ों, चन्द्रमा से भी ज्यादा भयावने खंदकों तथा ऊबड़-खाबड़ पथरीले मैदानों आदि का ही दृश्य फैला होगा! उस पर, वहाँ के स्वच्छ नीले आकाश में प्रखर रूप से तमतमाता हुआ प्रचण्ड सूर्य निरंतर जो आग बरसाता होगा, उसकी भीषणता का अनुमान कौन कर सकता है!

समीपता के कारण बुध पर सूर्य की रोशनी प्रायः तिरछे ढंग से पड़ती है। फलस्वरूप, दूरदर्शक में वह प्रायः भिन्न-भिन्न शक्ल का दिखाई देने लगता है। इससे चन्द्रमा की तरह उसमें भी दूज, चतुर्थी, सप्तमी आदि की-सी कलाएँ दिखाई पड़ती हैं! इसी प्रकार अपनी परिक्रमा के दौरान कभी-कभी वह सूर्यपृष्ठ के ठीक सामने पड़ जाता है, जिससे कि सूर्य-बिम्ब की आड़ में उसकी आकृति एक काली बिन्दी जैसी स्पष्ट दिखाई देने लगती है। यह घटना 'रवि-बुध-गमन' कहलाती है और ऐसा अवसर कई वर्षों के बाद कभी-कभी ही आता है।

सबसे अधिक चमकीला ग्रह--शुक्र

सूर्य से दूरी के लिहाज से, बुध के बाद जिस ग्रह की ओर हमारी निगाह जाती है, वह है शुक्र! यह चमकीला आकाशीय पिण्ड अपनी जगमगाती ज्योति के कारण सूर्य और चन्द्रमा के उपरान्त आकाश के कौतुकों में हमारी सबसे अधिक जानी-पहचानी वस्तु है। सुबह-शाम पूर्वीय या पश्चिमी आसमान से सबसे अधिक चमकीले सितारे के रूप में प्रकट होनेवाले इस ग्रह से भला कौन परिचित न होगा? शुक्र दरअसल इतना अधिक चमकीला है कि कभी-कभी तो सूर्य की मौजूदगी में दिन में भी वह कोरी आँखों से देखा जा सकता है! यही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
नहीं, अँधेरी रात में प्रायः धरती पर इसकी चाँदनी तक पड़ते देखी गई है! परन्तु बुध की तरह इसके भी दिखाई पड़ने का समय सूर्यास्त या सूर्योदय के आसपास कुछ घंटों तक——लगभग ४ घंटे इधर-उधर तक——ही सीमित रहता है।

चन्द्रमा या बुध की तरह शुक्र में भी पृथ्वी पर से कलाएँ दिखाई देती हैं। फलतः उसकी चमक काफी घटती-बढ़ती रहती है। उसकी चमक का यह घटाव-बढ़ाव सूर्य के आसपास चक्कर लगाते समय उसके पृथ्वी से बहुत दूर निकल जाने या अत्यधिक समीप आ जाने के कारण ही होता है। इस संबंध में एक मार्के की बात यह है कि जब यह हमारी धरती के सबसे अधिक पास आता है, तब अमावस्या के चाँद की तरह एकदम अदृश्य हो जाता है! और जब उसका बिंब पूर्णिमा के चाँद का-सा पूरा रहता है, तब वह पृथ्वी से सबसे अधिक दूरी पर होता है! वस्तुतः जिस समय कि वह हमें सबसे अधिक चमकता हुआ जान पड़ता है, उस समय उसकी शक्ल केवल पंचमी के चन्द्रमा की-सी होती है!

वायुमंडल का लिहाफ

परन्तु इतना अधिक चमकीला होने के बावजूद शुक्र की सतह के बारे में वैज्ञानिकों को नहीं के बराबर ही हाल मालूम है! इसका कारण यह है कि इसके आसपास घने वायुमंडल का एक लिहाफ लिपटा हुआ है, जिससे इस ग्रह की सतह की झलक पाना असंभव-सा है। हम वस्तुतः उसके ऊपर छाये रहनेवाले बादलों का घटाटोप ही देख पाते हैं। फिर भी अनुमान किया जाता है कि शुक्र का धरातल चन्द्रमा या बुध की तरह एकदम वीरान, ऊबड़-खाबड़ और मरुतुल्य न होगा। वस्तुतः शुक्र की परिस्थिति पृथ्वी से बहुत-कुछ मिलती-जुलती मालूम देती है। यर्किज-वेधशाला के प्रोफेसर फ्रॉस्ट की भाँति वैज्ञानिकों का अधिकतर झुकाव इसी मत की ओर है कि यदि पृथ्वी के बाद अन्य किसी भी ग्रह पर किसी प्रकार के जीवन की सबसे अधिक संभावना है, तो वह शुक्र और मंगल पर ही हो सकती है।

सौर परिवार के सबसे रहस्यपूर्ण ग्रह मंगल का दृश्य दूरदर्शक में ऐसा ही दिखाई देता है। ध्रुवप्रदेश पर के ऊपरी सफेद चकत्ते पर ध्यान दो!

शुक्र पर वायुमंडल होने के पक्के प्रमाण मिले हैं। यह वायुमंडल बेहद घना है। फलतः सतह के पास की हवा में कौन-कौन से तत्त्व हैं, यह जानना हमारे लिए कठिन है। ऊपरी वायुमंडल में ऑक्सिजन का नामोनिशान भी नहीं मिलता। परन्तु इससे इस नतीजे पर भी नहीं पहुँचा जा सकता कि सतह के करीब भी हवा में उक्त जीवनप्रदायिनी गैस न होगी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आकार-प्रकार, दूरी, गति, आदि

आकार-प्रकार में पृथ्वी से बहुत-कुछ मिलता-जुलता होने के कारण शुक्र को हम पृथ्वी का जुड़वा भाई कह सकते हैं। उसका व्यास १२,२०० कि० मी० है। वजन पृथ्वी के तौल का ·८वा भाग है। घनत्व पृथ्वी से कुछ ही कम है। गति ३४·७२ कि० मी० प्रति सैकंड है। सूर्य के आसपास का परिक्रमण काल २२५ दिन १६ घंटे ४८ मिनट है। सूर्य से अधिक से अधिक दूरी १०८,३२८,००० कि० मी० और कम से कम दूरी १०६,८५९,२०० कि० मी० है। पृथ्वी से अधिक से अधिक दूरी २४३,५६६,४०० कि० मी० और कम से कम दूरी ३७,९२१,६०० कि० मी० है तथा कक्षा लगभग वृत्ताकार या गोल है। यह ग्रह सूर्य से अधिक समीप होने के कारण पृथ्वी से लगभग दुगुनी रोशनी और गरमी पाता है।

उसकी सतह के कोई निशान न दिखाई पड़ने के कारण इसका ठीक-ठीक निर्णय नहीं हो पाया है कि शुक्र अपनी धुरी पर कितने समय में एक चक्कर लगा लेता है! इटैलियन ज्योतिषी शायापरेली ने यह शंका प्रस्तुत की थी कि संभव है, बुध की तरह शुक्र भी केवल अपना एक ओर का चेहरा दरसाते हुए ही सूर्य की परिक्रमा करता हो! तब वर्णक्रमदर्शी यंत्र की मदद से यह ज्ञात हुआ कि शुक्र अपनी धुरी पर अवश्य घूमता है, क्योंकि उसके अप्रकाशित भाग का ताप इतना कम नहीं है, जिससे यह कहा जाय कि उक्त भाग सूर्य के प्रकाश से सर्वथा वंचित रहता होगा। श्रेटर का मत था कि उसका आवर्तन-काल २३ घंटा २१ मिनट है। कई ज्योतिषी श्रेटर के इस अनुमान को ही सही मानते हैं।

तुम्हें यह जानकर हैरानी होगी कि सोवियत रूस और संयुक्त राज्य (अमेरिका) दोनों ने शुक्र तक अपने रॉकेट भेजे हैं। रूस ने तो १८ अक्टोबर, १९६७ ई०, के दिन अपना एक यंत्रसज्जित यान सही-सलामत शुक्र की सतह पर उतारने में भी सफलता प्राप्त की है! इससे सबसे महत्वपूर्ण जानकारी यह प्राप्त हुई है कि शुक्र की सतह का ताप २५०–३०० अंश सेंटीग्रेड है और उसके वायुमंडल में नाइट्रोजन का सर्वथा अभाव है।

रहस्यपूर्ण ग्रह मंगल

सौर परिवार के सदस्यों में, पृथ्वी और चन्द्रमा के बाद, जिस आकाशीय पिण्ड की सबसे अधिक चर्चा पिछले कुछ वर्षों में हुई है, वह है मंगल। यह ग्रह पृथ्वी से लगभग साढ़े पाँच करोड़ किलोमीटर की दूरी पर है। यह अद्भुत पिंड अपने लाल वर्ण के कारण सहज ही पहचाना जा सकता है। मंगल के सौर जगत् का सबसे रहस्यमय ग्रह होने का मुख्य कारण उसकी सतह पर दिखाई पड़नेवाली कुछ असाधारण रेखाएँ हैं! इनके आधार पर वहाँ मनुष्यों से भी अधिक बुद्धिमान् प्राणियों के होने की संभावना मानी जाती है। पृथ्वी से परे के अन्य लोकों की यात्रा के जो सपने वैज्ञानिक इन दिनों बुन रहे हैं, उनमें चन्द्रमा के बाद मंगल ग्रह का ही नाम प्रायः लिया जाता है। कारण, अपनी निकटतम स्थिति में यह ग्रह बहुत कुछ हमारी पहुँच की सीमा में आ जाता है। फिर वह की परिस्थिति भी पृथ्वी से जानेवाले प्रवासियों के लिए अनुकूल पड़ सकती है! इस छोटे-से ग्रह पर हवा, पानी, वनस्पति, जीवधारी––यह तक कि उत्तम कोटि की सभ्यता तक––के होने का विश्वास कई लोगों को है!

मंगल का आकार पृथ्वी से लगभग आधा है। इसकी कक्षा हमारी धरती की कक्षा से बाहर है। इस प्रकार सूर्य से दूरी के लिहाज से इसका स्थान चौथा है। इसका व्यास ६,९६३ कि०मी०है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

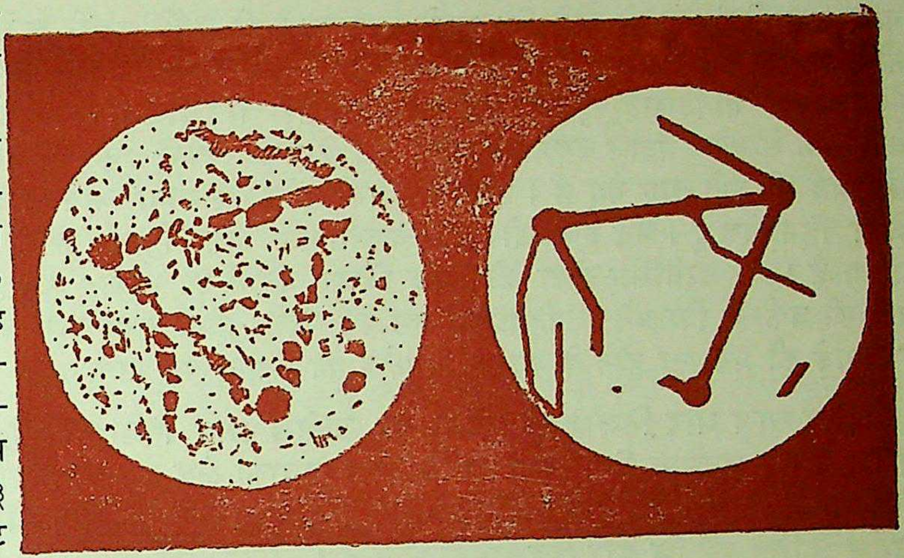

कई ज्योतिषी मंगल की नहरों की धारणा को केवल आँखों का भ्रम मानते हैं — वैसा ही जैसा कि बाईं ओर के चित्र में छितरे चिह्नों को दूरी से देखने पर होता है। तब ये बिन्दु और निशान मिलकर दाहिनी ओर की रेखाओं जैसे दिखाई देंगे!

वजन पृथ्वी के तौल का लगभग दसवाँ भाग है। घनत्व पृथ्वी का लगभग तीन-चौथाई है। गति २३.८४ कि० मी० प्रति सैकंड है। सूर्य के आस-पास की परिक्रमा का समय ६८६ दिन २३ घंटे ३१ मिनट है। सूर्य से अधिकतम २४७,७७६,००० कि०मी० और कम से कम २०५,५०४,००० कि० मी० तक वह रहता है। पृथ्वी से उसकी अधिकतम दूरी ३८६,०१४,४०० कि० मी० और कम से कम दूरी ५४,२६५,६०० कि० मी० है तथा आवर्तनकाल (अर्थात् अपनी धुरी पर एक बार चक्कर लगाने का समय) २४ घंटा ३७ मिनट २२.७ सैकंड है। इस ग्रह को सूर्य से जितनी गरमी और रोशनी मिल पाती है, वह पृथ्वी को मिलनेवाली गरमी और रोशनी की मात्रा से आधे से भी कम होती है। इसीसे उसका ताप काफी कम पाया गया है। अनुमान किया जाता है कि भर दोपहरी में मंगल के विषुवत् रेखा के प्रदेश का ताप जाड़े के लंदन के दोपहर के ताप का-सा रहता होगा और रात को वहाँ हमारे ध्रुवप्रदेशों की-सी सरदी छा जाती होगी! उसकी चमक प्रायः काफी बढ़ती-घटती रहती है। इसका कारण यह है कि अपनी कक्षा में घूमते हुए कभी तो वह हमारे काफी समीप आ जाता है और कभी पर्याप्त दूर निकल जाता है। जब वह दूरतम स्थिति में होता है, तब उसकी चमक लगभग ध्रुवतारे की-सी होती है। परन्तु अपनी निकटतम स्थिति में वह ध्रुवतारे से लगभग पचपन गुना ज्यादा चमकीला हो जाता है। उस समय, संभवतः, शुक्र को छोड़कर दूसरे सभी ग्रह-नक्षत्रों से वह अधिक प्रकाशमान दिखाई देने लगता है!

दूरदर्शक से मंगल की अनूठी झाँकी

किसी भी बड़े दूरदर्शक से वेध करने पर मंगल की सतह की बड़ी ही सुंदर और अनोखी झाँकी हमें देखने को मिलती है! उस पर कई तरह के रंग और बहुतेरे विशिष्ट चिन्ह या निशान दिखाई देते हैं! इनके आधार पर भाँति-भाँति की कल्पनाएँ इस ग्रह के संबंध में की गई हैं। उदाहरण के लिए, उसके कुछ भाग लाल रंग के दिखाई देते हैं, तो दूसरे कुछ भाग निलौंहा हरे रंग के! इनका रंग खास-खास मौसमों में बदलता भी रहता है। तब वे भूरे या

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गहरे बादामी रंग के हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त कभी उसके ऊपरी सिरे पर और कभी नीचे के भाग में (तथा कभी-कभी दोनों ओर) एक तरह के टोपीनुमा गोल-गोल अत्यन्त चमकीले श्वेत चकत्ते भी दिखाई पड़ते हैं। इन्हें मंगल के उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवप्रदेशों पर छाये रहने-वाले बर्फ से ढके मैदान बतलाया जाता हैं। ये सफेद चकत्ते ऋतु-परिवर्तन के अनुसार छोटे-बड़े भी होते पाए गए हैं। इससे यह पक्के तौर पर माना जाने लगा है कि निश्चय ही ये हिमप्रदेश हैं। जब एक ओर का चकत्ता घट जाता है, तो दूसरी ओर का बढ़ने लगता है। यह इसीलिए होता होगा कि जिधर गरमी का मौसम शुरू हो जाता होगा, वहाँ की बर्फ के पिघलने से हिमप्रदेश कम पड़ जाता होगा तथा उसी समय दूसरे ध्रुव पर जाड़े की प्रबलता होने के कारण हिमक्षेत्र का फैलाव बढ़ जाता होगा।

जिन लाल और निलौंहे हरे प्रदेशों का उल्लेख ऊपर किया गया है, उनके बारे में आरंभ में यह अनुमान किया गया था कि लाल रंगवाला क्षेत्र स्थलभाग है और निलौंहे हरे रंगवाला क्षेत्र जलभाग। परन्तु अधिक शक्तिशाली दूरदर्शकों से वेध करने पर यह धारणा निर्मूल साबित हुई कि हरा क्षेत्र समुद्री भाग हैं। फिर, यदि वहाँ इतने लंबे-चौड़े समुद्र लहराते होते, तो मंगल का वायुमंडल कहीं अधिक घना होता! साथ ही उन सागरोंपर सूर्य का प्रतिबिंब भी अवश्य पड़ते दिखाई पड़ता। अतः अब यही माना जाता है कि ये ऐसे मैदान हैं, जहाँ तक संभवतः कभी सागर रहा होगा, किन्तु अब वे एकदम सूखे पड़े हैं। शायद उन पर किसी प्रकार की वनस्पति उगी हुई है, इसीसे उनका रंग हरा दिखाई पड़ता है। लाल रंगवाला क्षेत्र संभवतः रेगिस्तानी इलाका है। इस क्षेत्र के अधिक विस्तार के कारण ही हमें मंगल अंगारे की तरह लाल रोशनी फेंकता हुआ-सा दिखाई पड़ता है।

क्या मंगल पर कृत्रिम नहरें हैं?

किन्तु इस रहस्यपूर्ण ग्रह के धरातल के अचरजभरे चिह्नों की समाप्ति यहीं जाकर नहीं हो जाती। उपर्युक्त चिह्नों के अतिरिक्त विचित्र प्रकार की कुछ ऐसी सीधी और लंबी रेखाओं का एक जाल भी समय-समय पर ज्योतिषियों को इस अद्‌भुत् ग्रह पर दिखाई दिया है, जोकि प्राकृतिक नहीं बल्कि कृत्रिम जान पड़ती हैं! इन रहस्यपूर्ण रेखाओं के बारे में कई एक अटकलें लगाई गई हैं। उनमें सबमें प्रसिद्ध कल्पना यह है कि वे कृत्रिम जलमार्ग हैं अर्थात् किसी के द्वारा बनाई गई लंबी-चौड़ी नहरें हैं! इन नहरों की लंबाई-चौड़ाई तथा उनकी चमत्कारपूर्ण रचना को देखते हुए वे किसी साधारण दिमाग की उपज नहीं हो सकती! कहते हैं, इनमें की एक नहर तो लगभग साढ़े पाँच हजार कि० मी० लंबी है और दूसरी कई एक तीन-चार हजार किलोमीटर तक बढ़ती चली गई हैं! इसी तरह इनकी चौड़ाई भी कहीं डेढ-दो कि० मी० से कम नहीं है! इसका तो अर्थ यह हुआ कि मंगल पर अवश्य ही सभ्यता के उच्च शिखर पर पहुँचे हुए कोई प्राणी बसते हैं!

इन नहरों जैसी रेखाओं को सबसे पहले ज्योतिषी शायापरेली ने देखा था। उसीने यह भी बताया था कि ये इकहरी नहीं बल्कि रेल की पटरी की तरह दोहरी हैं! तब पिकरिंग ने घोषणा की कि ये केवल लाल रंग के मरुप्रदेशों ही में नहीं, बल्कि निलौंहे हरे रंग के भागों में भी दिखाई देतीं हैं! उसने इन रेखाओं के संगम-स्थलों पर मैले हरे रंग के कुछ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गोल-गोल धब्बे भी देखे थे। अनुमान किया गया कि ये धब्बे उनके संगम के पास पनपनेवाले हरे-भरे क्षेत्र या नखलिस्तान होंगे। इन रेखाओं का बड़ा ही सूक्ष्म अध्ययन लॉवेल नामक अमेरिकन ज्योतिषी ने किया। वह मंगल पर नहरों के सिद्धान्त का सबसे बड़ा समर्थक था। उसका मत था कि ये नहरें वहाँ के बुद्धिमान् प्राणियों द्वारा शायद इसलिए बनाई गई हैं कि ध्रुवप्रदेशों के हिमक्षेत्र के बर्फ के पिघलने से मिलनेवाले पानी को रेगिस्तानी इलाकों में लाकर उनसे पेड़-पौधें उगाये जा सकें। उसका कहना था कि नहरें स्वयं तो इतनी पतली होंगी कि वे दिखाई नहीं दे सकतीं। अतः उनके आसपास की भूमि की वे लंबी पट्टियाँ ही हमें दिखाई पड़ती हैं, जिन पर कि घासपात या वनस्पति उगते होंगे।

परन्तु बहुतेरे वैज्ञानिक ऐसे भी हैं, जो नहरों की इस कल्पना को निरा आँखों का भ्रम मानते हैं। इसकी पुष्टि के लिए वे एक रोचक प्रयोग का सहारा लेते हैं। इस प्रयोग के अनुसार यदि बहुत-से अलग-अलग छितरे हुए छोटे-बड़े बिन्दुओं, धब्बों और अस्पष्ट चिह्नों को कुछ दूरी से देखा जाय, तो वे मिलकर इन्हीं नहरों की-सी धारियों का दृष्टि-भ्रम हमारी आँखों में पैदा कर सकते हैं (देखो पृष्ठ ७१ का मानचित्र)। बड़े दूरदर्शक भी लॉवेल की प्रस्थापना की पुष्टि नहीं करते!

तुम्हें यह जानकर कौतूहल होगा कि जहाँ हमारी पृथ्वी का केवल एक ही चन्द्रमा है, वहाँ मंगल के दो हैं——'फोबास' और 'डाइमास'! इनमें से एक का व्यास है शायद १६ कि० मी० और दूसरे का केवल ८ कि० मी०! ये उपग्रह

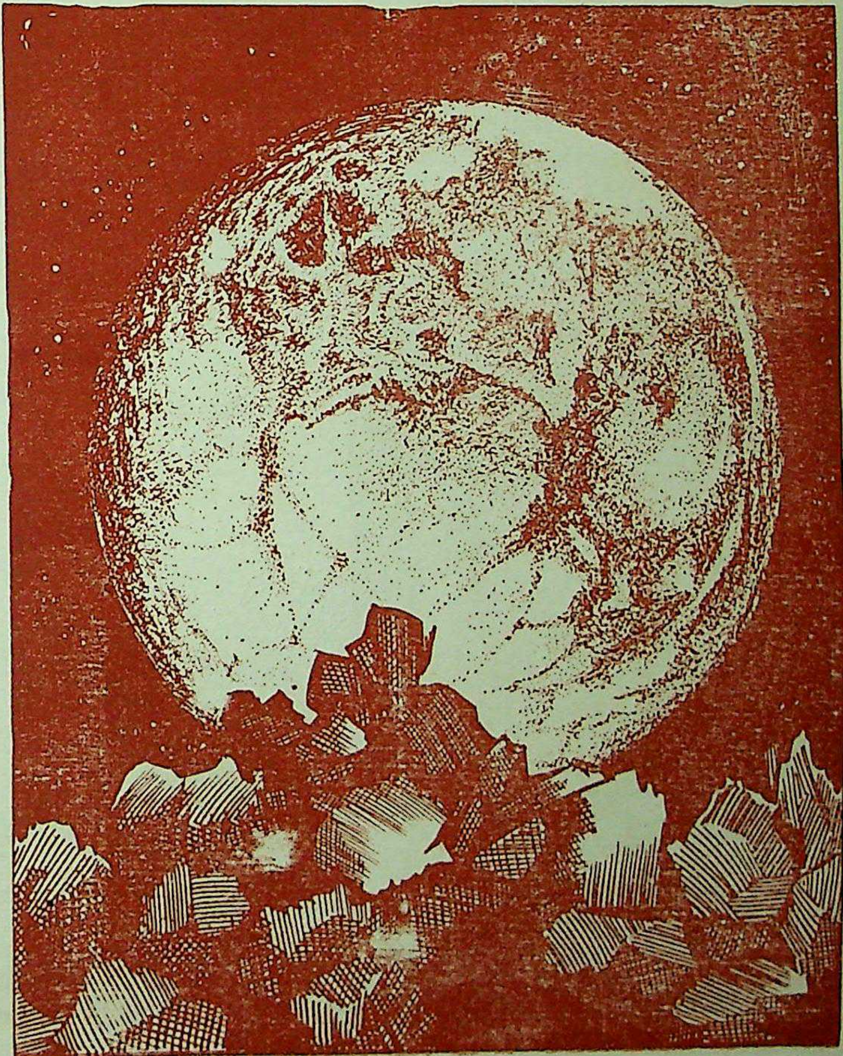

'डाइमास' नामक अपने उपग्रह से मंगल संभवतः ऐसा ही देख पड़ता होगा!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मंगल के इतने समीप हैं कि एक ही रात में उनकी अमावस से पूनो तक की सभी कलाएँ आकाश में दिखाई दे जाती होंगी ! पिछले पृष्ठ पर जो चित्र दिया गया है, उसमें 'डाइमास' नामक अपने उपग्रह से मंगल कैसा दिखाई देता होगा, इसकी परिकल्पना की गई है ।

सौर परिवार के सदस्यों का एक अनोखा समूह--अवान्तर ग्रह

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, बुध, शुक्र आदि प्रधान नौ ग्रहों के अतिरिक्त सौर परिवार में लगभग डेढ़-दो हजार नन्हें-नन्हें आकाशीय पिण्डों का एक और ग्रह-समूह भी है, जोकि मंगल और बृहस्पति की कक्षाओं के बीच में आसमान में छितरा हुआ है । इस समूह के सभी ग्रह इतने छोटे हैं कि उनमें का सबसे बड़ा--'सीरिस'--केवल ७६८ कि० मी० व्यास का है ! इस समूह के छोटे पिण्ड तो इतने कम व्यास के हैं कि वे किसी भी बड़े शहर के चौक में रखे जा सकते हैं ! उदाहरणार्थ, इस समूह के एक लघु सदस्य का व्यास केवल ५०३ मीटर है--अर्थात् इतना कम कि यह ग्रह दिल्ली के हमारे संसद्-भवन के ऊपर बड़ी आसानी से रक्खा जा सकता है ! वैज्ञानिकों का अनुमान है कि ये अनोखे आकाशीय पिण्ड या तो ऐसे किसी लुप्त बड़े ग्रह के टुकड़े हैं, जो कभी मंगल और बृहस्पति की कक्षाओं के बीच स्थित था और बाद में टूक-टूक होकर बिखर गया। या फिर वे आरंभ ही से ऐसे छोटे-छोटे भूखण्ड रहे होंगे, जो कि सौर ग्रह-परिवार की उत्पत्ति के समय यों ही बिखरे रह गए और कभी भी बँधकर एक पिण्ड न बन पाए ! ऐसे और भी कई नए-नए अवान्तर ग्रह अभी मिलते ही चले जा रहे हैं ।

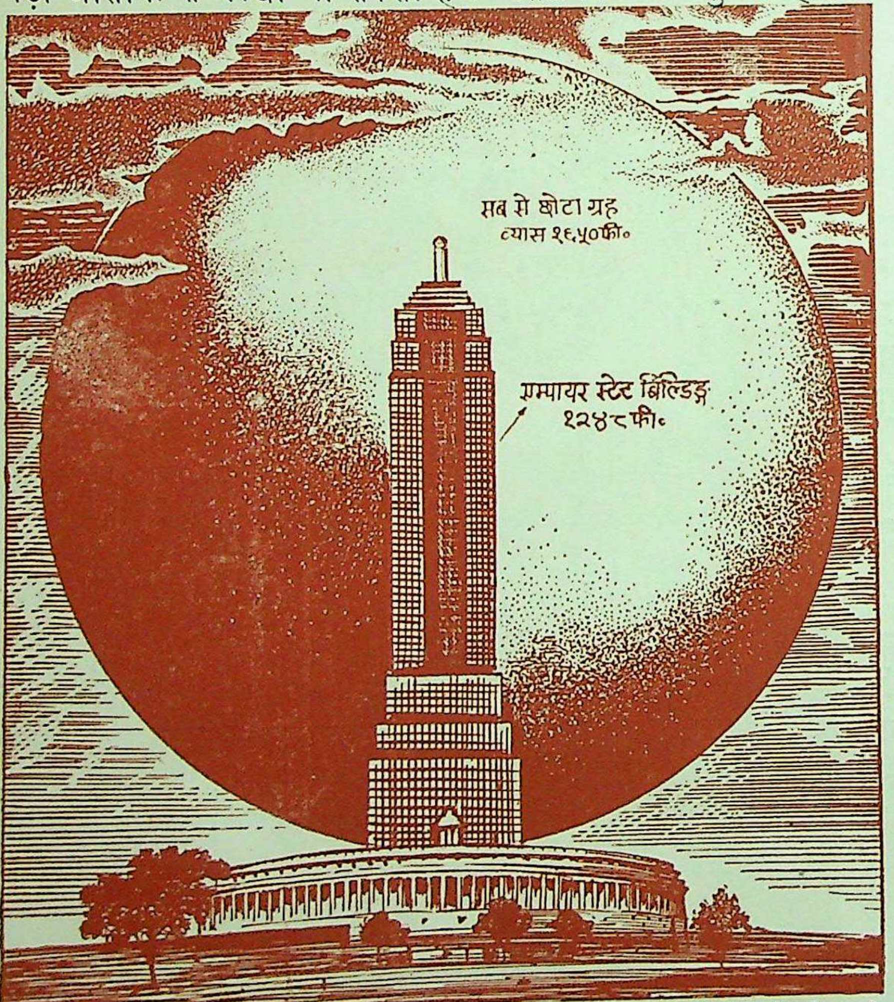

एक अवान्तर ग्रह का व्यास केवल ५०३ मीटर है ! उसका गोला बखूबी दिल्ली में हमारे संसद्-भवन के ऊपर रक्खा जा सकता है ! उसका कद न्यूयार्क की 'एम्पायर स्टेट बिल्डिंग' से कुछ ही अधिक बड़ा होगा !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

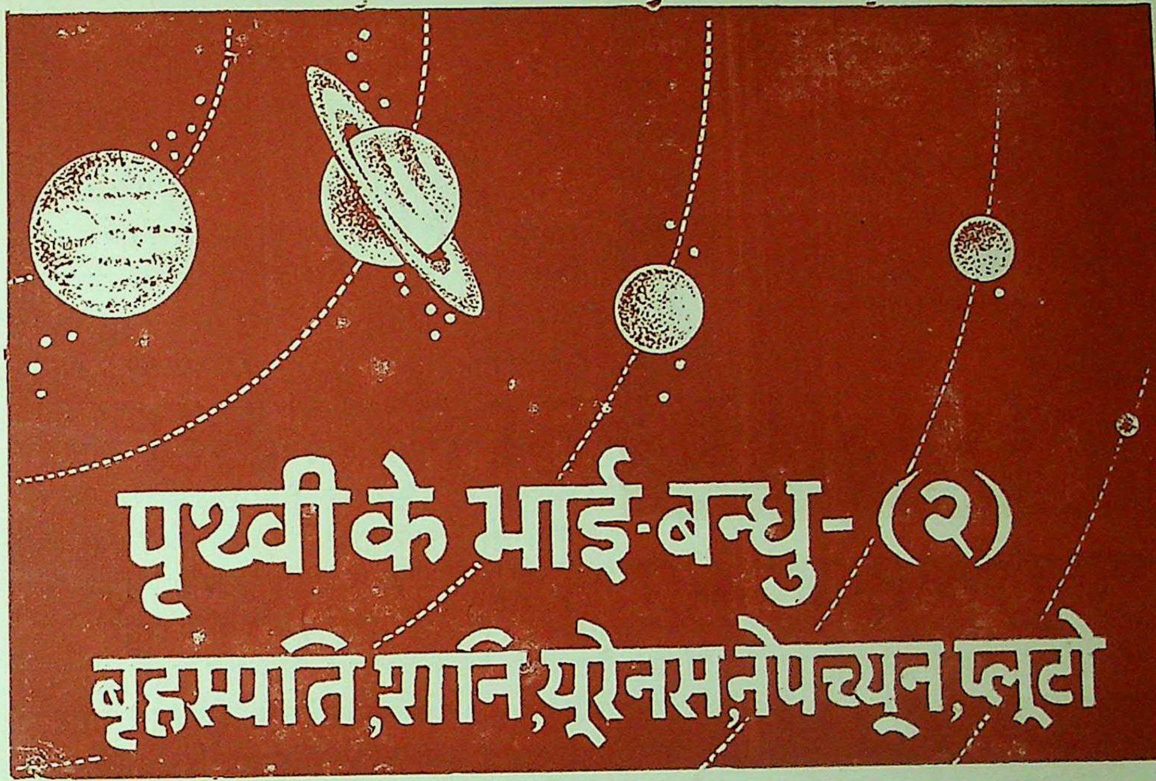

पिछले अध्याय में हमने सौर कुटुंब के उन सदस्यों का परिचय प्राप्त किया, जोकि पृथ्वी के भाई-बन्धुओं में अपेक्षाकृत न केवल छोटे ही हैं, बल्कि हमारे अधिक निकट भी हैं। आओ, अब इस परिवार के उन सदस्यों की भी जानकारी प्राप्त करें, जोकि हमसे अधिक दूर तो हैं ही, साथ ही जिनमें से चार हमारी इस पृथ्वी से कई गुना बड़े भी हैं। इन ग्रहों के नाम तो तुम्हें मालूम हैं ही--ये हैं क्रमशः बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेपच्यून और प्लूटो!

ग्रहों का सरदार--बृहस्पति

जरा कल्पना करो एक ऐसे आकाशीय पिण्ड की, जोकि आकार में तो इतना बड़ा हो कि लगभग १,३५० पृथ्वी के बराबर गोले उसमें समा जाएँ, किन्तु वजन में इतना हल्का कि इस लंबे-चौड़े डीलडौल के बावजूद तराजू में उसका तौल साधने के लिए केवल ३१७ पृथ्वी के गोले ही पर्याप्त हों! यही है बृहस्पति--सौर परिवार का सबसे बड़ा ग्रह या 'ग्रहों का सरदार'! यूनानी और रोमन पुराणानुसार बृहस्पति 'देवराज' अर्थात् देवताओं का राजा माना गया है। हमारे यहाँ उसे 'देवगुरु' अर्थात् देवताओं के प्रधान पुरोहित की उपाधि प्राप्त है। इसीलिए भारतीय ज्योतिष में उसे 'गुरु' के नाम से भी पुकारा जाता है।

यह विशाल ग्रह सूर्य से अधिक से अधिक ८११,२२५,६०० किलोमीटर और कम से कम ७३६,५४४,००० कि० मी० की दूरी पर फैली हुई अपनी लगभग वृत्ताकार कक्षा में तेरह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

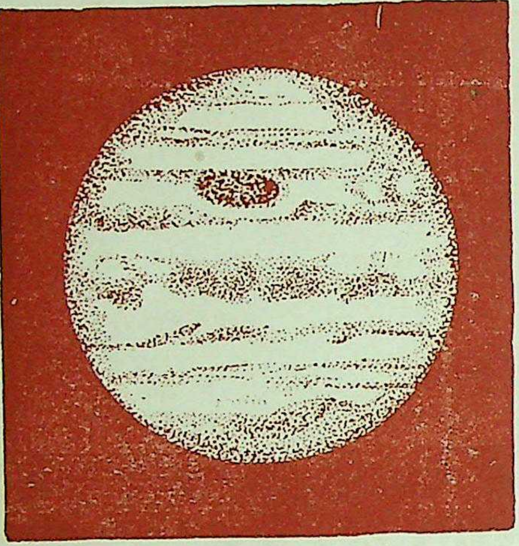

बृहस्पति दूरदर्शकों में ऐसा ही दिखाई देता है। उसकी धारियों और विशाल धब्बे पर ध्यान दीजिए।

कि० मी० प्रति सैकंड की गति से दौड़ रहा है! इस तरह पृथ्वी के समय के मान के अनुसार यह ग्रह करीब १२ वर्ष में अपने कुलपति की एक परिक्रमा लगा पाता है! अनुमान किया जाता है कि बृहस्पति का व्यास १४४,३०४ कि०मी० अर्थात् पृथ्वी के व्यास से करीब ग्यारह गुना बड़ा है। परन्तु पृथ्वी की तरह इसका भी पिण्ड ध्रुवों पर काफी चपटा है––इतना अधिक चपटा कि वहाँ उसका व्यास केवल १३४,७२० कि०मी० रह गया है! इस भीमकाय गोले की परिधि का नाप ४८०,००० कि०मी० के लगभग है, जिस पर यदि एक डोरी फैलाई जाय तो वह लंबाई में पृथ्वी से चन्द्रमा तक की दूरी को भी मात कर देगी! फिर भी, जैसा कि कहा जा चुका है, इतने विशाल डील-डौल के बावजूद इस ग्रहराज का तौल अपेक्षाकृत बहुत ही कम है––वह इतने ही बड़े पानी के गोले से एक तिहाई अधिक वजन के लगभग होगा, जबकि पृथ्वी अपने आकार के पानी के गोले से साढ़े पाँच गुनी भारी है! इसके इस असाधारण हल्केपन का कारण यह है कि यह ग्रह अभी बहुत-कुछ गैसीय दशा में है। वह अभी सिमटकर वैसा ठोस नहीं बन पाया है जैसी कि हमारी पृथ्वी है। दूरदर्शक में हम उसकी जो झाँकी पाते हैं, वह उसके आसपास लिपटे हुए घने गैसीय आवरण की ही झाँकी है––उसके धरातल का वास्तविक रूप हमारी दृष्टि से छिपा हुआ है।

रहस्यपूर्ण विशाल लाल धब्बा और समानान्तर पट्टियाँ

दूरदर्शक द्वारा लिये गए फोटोग्राफों में बृहस्पति के नारंगी जैसे चपटे बिम्ब पर प्रायः कुछ धब्बे और एक दूसरे से समानान्तर कुछ पट्टियों के निशान सदैव दिखाई देते हैं। इनका रूप बदलता भी रहता है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि ये धारियाँ या तो बादलों की ओट से यहाँ-वहाँ झलकनेवाले बृहस्पति के धरातल का हिस्सा होंगी, या शायद स्वयं बादलों का वह भाग होंगी, जहाँ पर वे अधिक घने होंगे। इस प्रकार के चिन्हों में सबसे उल्लेखनीय है परवल के आकार का एक बड़ा धब्बा, जो कि बृहस्पति के 'विशाल लाल धब्बे' के नाम से प्रसिद्ध है। यह धब्बा एक बार इस ग्रह के वक्षःस्थल पर लगातार चार वर्ष तक देखा गया था। इस धब्बे की लंबाई ४८,००० कि० मी० और चौड़ाई ११,२०० कि० मी० तक की आँकी गई है! अर्थात् यह इतना बड़ा है कि इसके गर्भ में शायद हमारी पृथ्वी जैसे कई गोले समाकर गायब हो सकते हैं। यह धब्बा चटकीली लाल ईंट के रंग का देख पड़ता है, जबकि बृहस्पति का रंग आम तौर पर कुछ-कुछ गुलाबी-मिश्रित पिलौंह-सा जान पड़ता है। उस पर मटमैले ताँबे के-से रंग की पट्टियाँ सुशोभित देख पड़ती हैं। यह धब्बा पहलेपहल १८५७ ई० में देखा गया था। तब से कई बार यह प्रकट हुआ और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
वर्षों तक दिखाई देता रहा। तब फीका होते-होते वह लगभग गायब हो गया ! यह धब्बा बृहस्पति का एक महान् रहस्य है। कोई कहते हैं कि यह वहाँ के वातावरण में उठनेवाला कोई भीषण बवंडर होगा। दूसरों का अनुमान है कि वह बादलों के लिहाफ का एक लंबा-चौड़ा झरोखा-सा होगा, जिसमें से इस ग्रह के धरातल का असली भाग हमें देख पड़ता है। परन्तु इन दोनों ही कल्पनाओं में त्रुटियाँ हैं।

बृहस्पति की रचना और अन्य बातें

रात्रि के समय आसमान में जगमगानेवाली ज्योतियों में बृहस्पति से अधिक चमकनेवाला ग्रह हमारे लिए केवल शुक्र ही है। उसकी इस चमक का एकमात्र कारण दरअसल उसका बड़ा आकार है। उसका बिम्ब इतनी अधिक दूरी से भी इतनी ज्यादा रोशनी फेंकता है कि सबसे अधिक चमकीले तारे लुब्धक (सीरियस) से भी पाँच या छः गुना अधिक चमकीला वह हमें जान पड़ता है। उसके इस असाधारण प्रकाश को देखकर ही बहुत दिनों तक यह माना जाता रहा कि शायद उसका अपना एक निजी प्रकाश हो एवं वह बहुत अधिक गरम भी हो--लगभग अर्द्ध-सूर्य जैसा ! सूर्य की भाँति बृहस्पति भी घनी गैसों से बना है और इसके भीतर अभी सिकुड़ने की क्रिया जारी है। इसी कारण यह माना जाता रहा कि इसका अंतराल शायद घोर तप्त होगा। परन्तु बाद में जो छानबीन हुई, उससे यह धारणा बिल्कुल गलत साबित हुई !

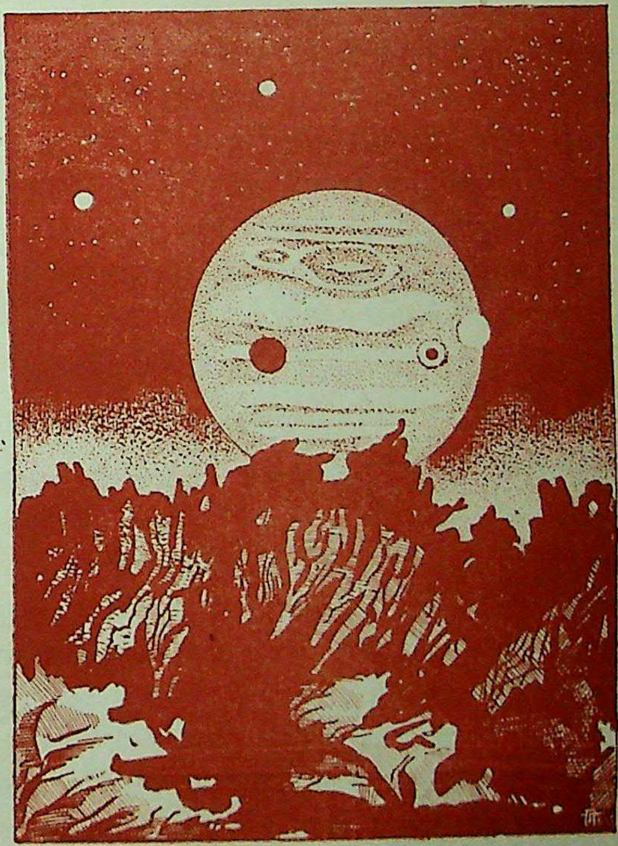

अपने ग्यारह उपग्रहों में से किसी एक पर से बृहस्पति शायद ऐसा ही दिखाई देता होगा ! उसके विशाल बिम्ब की आड़ में गेंद-से दिखाई देनेवाले अन्य उपग्रहों पर गौर कीजिए !

इसके विपरीत अब माना जाता है कि यह ग्रह बेहद ठंढा है तथा इसकी अपनी कोई निजी चमक नहीं है ! इसे जो भी रोशनी और गरमी सूर्य से मिलती है, वह वस्तुतः पृथ्वी को मिलनेवाली रोशनी के पच्चीसवें हिस्से से भी कम है ! जेम्स जीन्स के अनुसार इसकी सतह का ताप शून्य डिग्री सेंटीग्रेड से भी १३२ अंश नीचे होगा ! यह ताप इतना कम है कि उसमें न केवल सारा जल ही जमकर बर्फ बन जायगा, बल्कि हमारी जानकारी की अधिकांश गैसें भी तरल हो जायँगी ! अनुमान किया जाता है कि बृहस्पति पर जलवाष्प नहीं है। वहाँ जो बादल कल्पित किए जाते हैं, वे शायद कार्बन डाइ-आक्साइड जैसी किसी गैस के होंगे, जो कि बहुत ही कम ताप पर जम जाती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

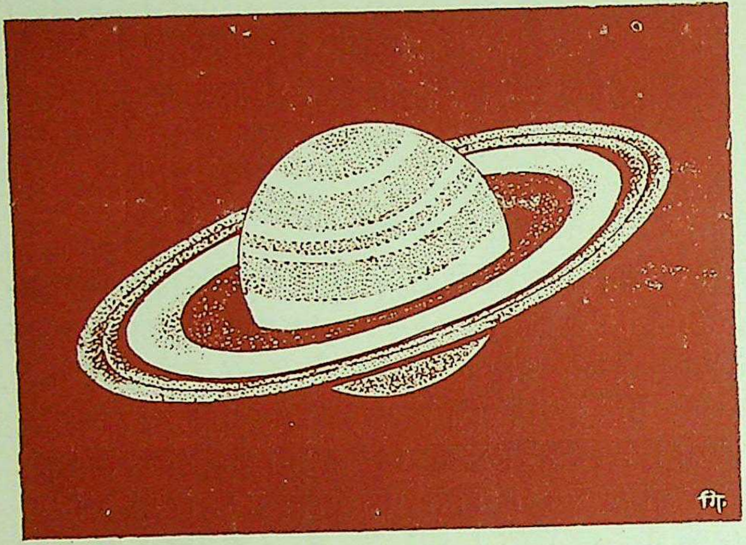

सौर परिवार का सबसे सुन्दर ग्रह शनि अपने अद्‍भुत वलय की करधनी पहने हुए दूरदर्शक में ऐसा ही मनोहर दिखाई पड़ता है !

बादलों के इस घटाटोप में छिपा हुआ बृहस्पति का धरातल कैसा है, यह जानने के कोई साधन हमारे पास नहीं हैं। फिर भी उसकी चमक, आकर्षण-शक्ति, ताप आदि के आँकड़ों से यह धारणा की जाती है कि उसके अंतराल का केन्द्रीय भाग शायद एक ठोस धातुपिण्ड है। उक्त पिण्ड का व्यास ७० हजार कि०मी० के लगभग होगा। उसके ऊपर २५ हजार कि०मी० मोटी एक बर्फीली तह और सबसे ऊपर ६॥ हजार कि०मी० गहरे घने बादलों का लिहाफ लिपटा होगा। हमें फोटोग्राफों में जो तरह-तरह के धब्बे, धारियाँ और पट्टियाँ आदि दिखाई पड़ती हैं, वे इसी मेघमाला के आवरण के रूपान्तर होंगे। इन धब्बों और धारियों पर पिण्ड के तेजी के साथ लट्टू की तरह घूमने का काफी प्रभाव पड़ता होगा। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि इतने विशाल आकार का यह पिण्ड अपनी धुरी पर लगभग दस घंटे में एक चक्कर लगा लेता है ! इसका अर्थ यह हुआ कि बृहस्पति का एक दिन-रात पृथ्वी के दिन-रात के एक-तिहाई से कुछ ही ज्यादा होगा, जबकि उसका एक वर्ष हमारे बारह वर्षों के बराबर होता होगा ! यह एक अचरज की बात है कि इसके ध्रुवप्रदेशों और विषुवत् प्रदेश के अक्षभ्रमणकाल में काफी अंतर है !

ग्रहों के सरदार के ग्यारह उपग्रह

तुम्हें यह जानकर विशेष कौतूहल होगा कि जहाँ पृथ्वी का केवल एक ही उपग्रह चन्द्रमा है और मंगल के दो, वहाँ बृहस्पति के ग्यारह उपग्रह देखे गए हैं ! यह तथ्य ग्रहों के सरदार की उसकी उपाधि के उपयुक्त ही है। इन उपग्रहों में से चार का पता पहलेपहल गैलीलियो ने अपने दूरदर्शक द्वारा लगाया था। तब से ज्योतिषीगण लगातार उसके अन्य उपग्रहों की खोज करते रहे हैं और फलतः अब तक इस ग्रह के ग्यारह चन्द्रमाओं का पता लगा है। ये सब चाँद ग्रहराज की परिक्रमा कर रहे हैं। इनमें प्रथम चार उपग्रह काफी बड़े हैं—दो तो लगभग हमारे चन्द्रमा के बराबर हैं और दो उससे अथवा बुध ग्रह से भी बड़े आकार के हैं ! बाकी काफी छोटे हैं। सबसे नजदीकी उपग्रह का व्यास केवल १६० कि०मी० है। वह बृहस्पति के केन्द्र से केवल १८०,००० कि०मी० की दूरी पर उसकी प्रदक्षिणा किया करता है। परन्तु वह उसका सबसे छोटा उपग्रह नहीं है। कहते हैं, आठवें और नवें उपग्रह के व्यास करीब २४ कि०मी० अथवा इससे कुछ ही अधिक होंगे ! इन उपग्रहों के प्रायः ग्रहण भी होते रहते हैं, जबकि वे बृहस्पति की छाया में पड़ जाते हैं। इसी प्रकार अपनी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
कक्षाओं में घूमते-घूमते वे कभी-कभी बृहस्पति के बिम्ब के एकदम सामने भी पड़ जाते हैं। तब उस विशाल बिम्ब पर वे गेंदों जैसे दिखाई देते हैं (दे० पृ० ७७ का चित्र)! यह एक रहस्यपूर्ण बात है कि चौथा उपग्रह अन्य उपग्रहों से बहुत अधिक काला दिखाई पड़ता है!

इन उपग्रहों की एक और मजेदार विशेषता यह है कि जहाँ अन्य सभी उपग्रह एक ही सीधी दिशा में अपनी कक्षाओं में घूमते हैं, वहाँ दूर के दो उपग्रह विपरीत या उल्टी दिशा में घूमते दिखाई पड़ते हैं! बृहस्पति के ये उपग्रह एक बात में बड़े उपयोगी साबित हुए हैं। इनके ग्रहण के समय की स्थिति की नापतौल की मदद से ही ज्योतिषियों को पहलेपहल प्रकाश की गति का ठीक-ठीक मान निकालने में सफलता मिली थी, जिस प्रकार कि एरॉस नामक एक अवान्तर ग्रह की चमक की घट-बढ़ के आधार पर सूर्य की दूरी का नाप निकालने में सहायता मिली है!

सबसे सुंदर ग्रह--शनि

दूरदर्शक से देखने पर, ग्रह-नक्षत्रों से खचित सारे गगनमंडल में जैसा अद्भुत अनुपम रूप शनि का दिखाई पड़ता है, वैसा किसी भी अन्य आकाशीय पिण्ड का नहीं! पृष्ठ ७८ का चित्र देखो! कैसी मनोहर है इस विचित्र ग्रह की अनोखी आकृति! कैसी सुंदर छटा है! बीच में नारंगी का-सा चपटा गोल पिण्ड! उस पर साधु-महात्माओं के ललाट पर की भस्म-रेखाओं जैसी कुछ समानान्तर धुँधली धारियाँ! तब एक अदभुत तिरछे ढंग से मानो इस बिम्ब को पहना दिया गया उसके आसपास का वह निराला चक्र या वलय, जो कि इन्द्र-धनुष के चाप की भाँति कई एक पट्टियों में विभक्त है! इस अनोखे रूप में शनि की झाँकी देखते ही बनती है! मालूम होता है, जैसे साक्षात् भगवान् विष्णु का सुदर्शन-चक्र

अपने किसी उपग्रह पर से शनि का दृश्य ऐसा ही भव्य दिखाई पड़ता होगा! इंद्रधनुष से भी अधिक सुंदर वलयों की पृष्ठभूमि में चन्द्रमा जैसी कला दरसानेवाले उसके अन्य उपग्रहों की अनोखी झाँकी पर भी गौर कीजिए!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आकाश में निखर आया हो! और तारीफ की बात तो यह है कि यह वलय शनि के मुख्य गोले को कहीं छूता तक नहीं! कहते हैं, ग्रह के मुख्य पिण्ड और उसके आसपास के इस करधनीनुमा अद्‌भुत चक्र के बीच का अंतर कम से कम सत्रह हजार किलोमीटर होगा! यह वलय ग्रह के पिण्ड के आसपास उसे छुए बिना अधर में उसी तरह फैला है, जिस तरह कि बाजीगर के लट्टूनुमा गोले के आसपास उसका जादू का छल्ला रहा करता है!

सूर्य से दूरी के लिहाज से सौर कुटुंब में शनि का स्थान छठा है। उधर आकार के लिहाज से वह सौर परिवार का दूसरा सबसे बड़ा ग्रह है। उसकी सूर्य से कम से कम दूरी १,३३,६४,७२,००० कि०मी० और अधिकतम दूरी १,४६८,२२०,८०० कि०मी० नापी गई है। इसी प्रकार पृथ्वी से उसकी अधिक से अधिक दूरी १,६४६,४५६,२०० कि०मी० और कम से कम दूरी १,१८८,२३३,६०० कि० मी० आँकी जाती है। इस विशाल ग्रह के मूल पिण्ड का व्यास १२२,४०० कि०मी० है और उसके वलय या आसपास के समूचे छल्ले का बाहरी व्यास २६७,०७२ कि०मी० तथा भीतरी १४६,८४८ कि०मी० अनुमान किया जाता है। यदि तुलना के लिए पृथ्वी का पैमाना १०० माना जाय, तो उसी के अनुपात में शनि के आयतन का आँक ७६,०००; तौल ६,४८० और घनत्व १३ होगा। यह दैत्याकार ग्रह ६.६२ कि०मी० प्रति सैकंड की गति से चलता हुआ १०,७५६ दिन ५ घंटे १६ मिनट अर्थात् लगभग २६।। वर्ष में जाकर सूर्य की एक परिक्रमा कर पाता है! वैसे अपनी धुरी पर उसके एक बार चक्कर लगाने का समय केवल १० घंटा १५ मिनट है।

बृहस्पति की तरह शनि की बनावट के बारे में भी हम कोई निश्चित बात नहीं जानते। कारण, उस पर भी घना वायुमंडल है। अनुमान किया जाता है कि बृहस्पति की भाँति इस ग्रह का भी केन्द्र शायद एक ठोस पिण्ड हो, जिस पर पहले बर्फ की एक मोटी तह छायी होगी और सबसे ऊपर घने बादलों का लिहाफ लिपटा होगा। यह सब कुछ होने पर भी कुल मिलाकर इसका तौल इतना हल्का है कि यदि इससे बड़े किसी विशाल समुद्र में वह डाला जा सकता, तो वह उसमें तैरता ही रहता, डूबता नहीं! कारण, वह पानी से भी हल्का है! इस ग्रह की बेहद दूरी को देखते हुए यदि यह कहा जाय कि वहाँ का ताप इतना कम है कि उसमें ऑक्सिजन जैसी गैस भी जमकर तरल हो जायगी, तो इसमें कोई अचरज की बात नहीं है। इसका यह ताप शून्य से लगभग १५० डिग्री सेंटीग्रेड कम कूता गया है!

शनि का अद्‌भुत छल्ला--क्या और क्यों?

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, शनि की सबसे अद्‌भुत और विचित्र विशेषता उसके आसपास दिखाई पड़नेवाला अनूठा वलय या छल्ला है। यह वलय दरअसल एक ही चक्र नहीं है, बल्कि एक दूसरे के समानान्तर बने हुए तीन मुख्य छल्लों का समूह है। इस वलय-समूह का भीतरी पहला छल्ला, जो कि शनि से १७,६१६ कि०मी० की दूरी पर है और एक फीकी पट्टी-सा दिखाई पड़ता है, १३,८५६ कि०मी० चौड़ा है। यह बहुत ही झीना-झीना सा है और लगभग पारदर्शक है। इसके बाद पड़नेवाले चमकीले छल्ले की पट्टी २८,१६८ कि०मी० चौड़ी है, जिसके बाद लगभग १५,४०० कि०मी० चौड़ी आखिरी और बाहरी पट्टी है। इस प्रकार कुल मिलाकर इन छल्लों की पट्टियाँ लगभग ६०,११२ कि०मी०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नवीन ग्रह 'यूरेनस' की खोज करनेवाला प्रख्यात अंग्रेज ज्योतिषी विलियम हरशेल ।

चौड़ी हैं। परन्तु चौड़ाई में इतना अधिक होकर भी यह वलय-समूह मोटाई में शायद १६ कि० मी० से ज्यादा न होगा ! यही कारण है कि जब शनि के लिहाज से हमारी स्थिति ऐसी होती है कि पृथ्वी ठीक वलय के धरातल में हो जाती है, तब अत्यन्त पतली होने के कारण उसकी कोर को हम केवल एक सूक्ष्म रेखा जैसी ही देख पाते हैं, और सो भी छोटे दूरदर्शकों द्वारा नहीं—उनकी निगाह से तब वलय-समूह एकदम गायब-सा हो जाता है !

बेचारे गैलीलियो को भी (उसका दूरदर्शक अत्यन्त छोटा होने के कारण) शनि का यह वलय उसके अलग-बगल स्थित दो गोल पिण्डों के रूप में दिखाई पड़ा था ! जब सूर्य की परिक्रमा के दौरान क्रमशः शनि ऐसी स्थिति में आया कि पृथ्वी उसके वलय के धरातल में हो गई, तो वलय के वे अंश, जो गैलीलियो को अगल-बगल दिखाई दे रहे थे, सहसा गायब हो गए ! इससे गैलीलियो घबड़ाकर चौंक पड़ा और उसके मुँह से ये प्रसिद्ध शब्द निकल पड़े—"क्या शनि अपने बच्चों को ही निगल गया !" इस घटना के रहस्य का उद्‌घाटन वर्षों बाद डच ज्योतिषी हायगेन्स ने किया, जिसने पहलेपहल बताया कि गैलीलियो को दिखाई पड़नेवाले शनि के अगल-बगल के वे पिण्ड दरअसल उसके आसपास करधनी की तरह फैले हुए काफी लंबे-चौड़े किन्तु मोटाई में अत्यन्त पतले छल्ले के अंश थे ! वे पृथ्वी की कक्षा के लिहाज से तिरछी स्थिति में होने पर तो दिखाई देते हैं और समान धरातल में आते ही गायब हो जाते हैं। बाद में फ्रेंच ज्योतिषी कैसिनी और अमेरिकन ज्योतिषी बाण्ड ने यह बात बताई कि यह वलय एक ही अटूट चक्र नहीं है, बल्कि तीन प्रधान छल्लों को मिलाकर बना है। इन छल्लों के बीच में स्पष्ट विभाजक रेखाएँ हैं, जो आज उनकी खोज करनेवालों के नाम पर "कैसिनी की चीर", "एनके की चीर" आदि कहलाती हैं।

ये वलय दरअसल क्या हैं ?

लगभग दो शताब्दियों तक ज्योतिषियों को यही भ्रम बना रहा कि शनि के आसपास का यह चक्र संभवतः ठोस है। पर बाद में मैक्सवेल और रोशे की गणनाओं और सिद्धान्तों द्वारा यह निश्चित रूप से प्रतिपादित हो गया कि ये छल्ले ठोस कदापि नहीं हो सकते। क्योंकि शनि की आकर्षण-शक्ति की एक विशिष्ट सीमा के भीतर कोई भी बड़ा ठोस पिण्ड बना नहीं रह सकता—वह टूटकर खंड-खंड हो जायगा। तो ये वलय दरअसल हैं क्या ? वैज्ञानिकों का खयाल है कि ये असंख्य छोटे-छोटे रोड़ों और धूलिकणों के समूह हैं। इन वलयों के पारदर्शी होने का कारण यह है कि इनके भीतर के रोड़े और धूलिकण काफी छितरे हुए हैं तथा वे एक-दूसरे से अलग हैं। इसीलिए सूर्य का प्रकाश उनमें से छनकर आरपार

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निकल जाता है। अनुमान किया जाता है कि इन वलयों में से जो अधिक चमकीले हैं, उनका केवल सोलहवाँ भाग ही इन ठोस कणों से भरा होगा, बाकी जगह एकदम खाली होगी। इन वलयों के रोड़ों की एक-दूसरे पर परछाईं भी पड़ती देखी गई है, जिसका कि पता उनके प्रकाश के घटाव-बढ़ाव द्वारा लगता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि आखिर शनि को अपने आसपास का यह अनोखा कौतुक क्योंकर मिला, जबकि दूसरे सब ग्रहों के आसपास ऐसा कोई चक्र नहीं है ? ज्योतिषियों की धारणा है कि असंख्य रोड़ों से खचित शनि के ये छल्ले सुदूर अतीत में उसके अत्यन्त समीप पहुँचकर टुक-टुक हो जानेवाले उसी के किसी उपग्रह के बिखरने से बन गए हैं। कहते हैं, वह उपग्रह शनि की ज्वार-भाटा लानेवाली प्रचण्ड आकर्षण-शक्ति की खींचतान से टुकड़े-टुकड़े हो गया होगा। तदनंतर उसी आकर्षण के पाश में बँधकर उसके वे असंख्य टुकड़े, निश्चित दूरी पर इन्द्रधनुष के-से एक चक्र के रूप में सजकर, शनि की परिक्रमा करने लगे होंगे ! यही उसके वलय-समूह के रूप में हमें आज दिखाई पड़ते हैं ! इस प्रकार शनि का यह अनोखा वलय-चक्र उसके आसपास चक्कर लगाते हुए कोटि-कोटि सूक्ष्म चन्द्र-माओं का एक झुंड-सा है। वैज्ञानिकों का कहना है कि किसी दिन हमारे अपने चन्द्रमा की भी यही दशा होने को है ! वह भी किसी दिन अपनी निजी शक्ति के क्षीण होने पर शायद पृथ्वी के इतने समीप आ पहुँचेगा कि उसके टुकड़े-टुकड़े हो जाएँगे ! तब ताज्जुब नहीं कि हमारी इस पृथ्वी के भी आसपास असंख्य रोड़ों से युक्त ऐसा ही एक अदभुत वलय-चक्र आकाश में सुशोभित हो जाय !

शनि के दस चन्द्रमा हैं !

ऊपर उल्लिखित वलयों में जो असंख्य रोड़े-रूपी चन्द्रमा शनि के आसपास घूम रहे हैं, उनके अलावा बृहस्पति, मंगल या पृथ्वी की तरह उसके कुछ बड़े चन्द्रमा भी हैं, जो उसकी परिक्रमा करते रहते हैं। ये संख्या में दस हैं। इनमें सबसे बड़ा हमारे चाँद से भी बड़ा है। वह लगभग सोलह दिन में शनि की एक परिक्रमा पूरी कर लेता है। शनि के सबसे दूर के एक बहुत ही छोटे उपग्रह की विशेषता यह है कि वह उल्टी दिशा में चलता है ! इसे शनि का एक चक्कर लगाने में लगभग डेढ़ वर्ष का समय लगता है। वैज्ञानिकों का अनु-मान है कि यह कोई वास्तविक उपग्रह न होकर शायद कोई छोटा-सा ग्रह रहा होगा, जोकि शनि की आकर्षणशक्ति के दायरे में पड़कर गिरफ्तार हो गया है और उसका चक्कर काटने लगा है ! इन उपग्रहों में जो सबसे निकट है, वह शायद साढ़े बाईस घंटे ही में शनि की एक परिक्रमा पूरी कर लेता है।

कोई दूज के चाँद की तरह नुकीला, तो कोई नतोदर; कोई उन्नतोदर, तो कोई पूर्ण बिम्ब जैसा––ऐसे दस उपग्रहों या चन्द्रमाओं तथा असंख्य चमकीले रोड़ों से खचित धनुषा-कार वलयों से घिरे हुए शनि का गगन-मंडल कैसी अद्‌भुत अनुपम झाँकी प्रस्तुत करता होगा, इसकी तो केवल कल्पना ही की जा सकती है ! उसकी उक्त झाँकी की कल्पना हमारे मानसपटल पर एकदम परीलोक का-सा दृश्य खींच देती है ! सचमुच ही शनि सौर परिवार का सबसे सुन्दर ग्रह कहा जा सकता है। परन्तु इसका सौन्दर्य इन्द्र-धनुष के सौन्दर्य जैसा केवल एक मायावी सौन्दर्य है ! दरअसल बृहस्पति की तरह इसके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी धरातल की कोई विशेष जानकारी हमें नहीं है। कहा जाता है कि बृहस्पति की तरह यह भी एक ठंढा गैसीय गोला मात्र होगा——एकदम बीहड़ और प्रशान्त !

यूरेनस और नेपच्यून

लगभग पौने दो सौ वर्ष पूर्व तक ज्योतिषी लोग शनि की कक्षा को ही सौर जगत् का सीमान्त मानते रहे, क्योंकि इसके आगे कोई ग्रह उन्होंने नहीं देखा था। तब १३ मार्च, १७८१ ई०, की रात को इंगलैंड के ज्योतिषी विलियम हरशेल ने अपने दूरदर्शक से पहले-पहल एक नया ग्रह देखा, जिसका नाम 'यूरेनस' रक्खा गया ! हिन्दी में इस ग्रह को 'वारुणी' नाम दिया गया है। इस ग्रह की सूर्य से अधिक से अधिक दूरी २,९८५,६९४,४०० कि० मी० तथा कम से कम दूरी २,७२१,१३१,२०० कि० मी० आँकी गई है। पृथ्वी से इसकी कक्षा अधिक से अधिक ३,१३६,९३२,८०० कि०मी० तथा कम से कम २,५६९, ८९२,८०० कि० मी० तक दूर पाई गई है। यह ग्रह इतना अधिक दूर है कि बड़े से बड़े दूरदर्शक में भी इसकी सतह की कोई स्पष्ट झाँकी मिलना असंभव है। केवल यही भर जानकारी हमें प्राप्त है कि इसका व्यास ५१,०४० कि०मी० है ; गति ६.८८ कि०मी० प्रति सैकंड है ; सूर्य के आसपास परिक्रमा लगाने का समय ३०,६८८ दिन, ७ घंटे, १२ मिनट (अर्थात् लगभग ८४ वर्ष) है ; अक्ष-भ्रमणकाल पौने ग्यारह घंटे है और पृथ्वी का पैमाना १०० मानने पर इसका आयतन ६,५००; तौल १,४६० तथा घनत्व २२ के लगभग है। इस ग्रह के चार उपग्रह हैं, जिनकी विशेषता यह है कि वे इसकी कक्षा के साथ समकोण बनाते हुए इसके आसपास चक्कर लगाते हैं। वर्णक्रमदर्शी यंत्र द्वारा ज्ञात हुआ है कि यूरेनस एकदम ठंढा और गैसीय स्थिति में है और उसमें ऐसे तत्त्व हैं, जो पृथ्वी पर नहीं हैं। यह कुछ-कुछ हरे रंग का दिखाई देता है।

किन्तु सौर जगत् का सीमान्त इसी ग्रह की कक्षा पर समाप्त नहीं हो जाता। इससे भी परे दो ग्रह और हैं——नेपच्यून और प्लूटो ! इनकी खोज गणित-ज्योतिष का एक चमत्कार कहा जा सकता है। बात यह थी कि यूरेनस अपनी कक्षा में जिस प्रकार बिचककर चलता पाया गया, उससे यह अनुमान किया गया कि आकर्षण-सिद्धान्त के अनुसार उससे परे भी किसी ग्रह का होना जरूरी है। इस अज्ञात ग्रह की खोज एक साथ ही कई ज्योतिषियों ने शुरू की। अंत में ऐडम्स और लेवेरियर नामक ज्योतिषियों की गणनाओं द्वारा सूचित स्थिति पर १८४६ ई० में वह नवीन ग्रह खोज लिया गया ! उसका

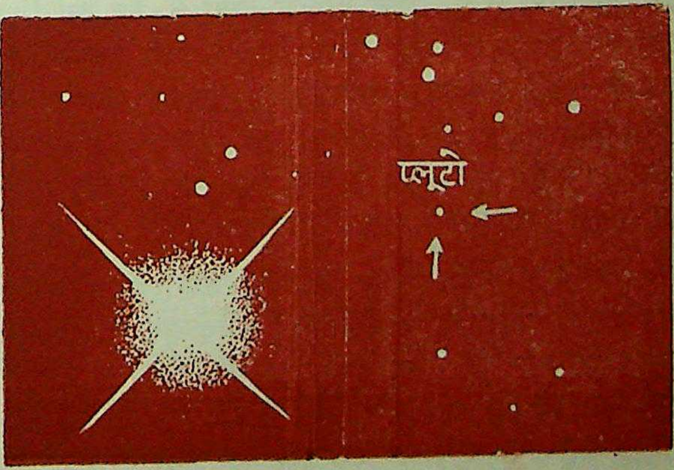

प्लूटो की खोज १९३० ई० में दो-तीन दिनों ही म तारों के लिहाज से फोटो-प्लेट पर उसकी स्थिति-परिवर्तन के आधार पर हुई थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नाम 'नेपच्यून' रक्खा गया। हिन्दी में इसे 'वरुण' के नाम से पुकारा जाता है। इस ग्रह की सूर्य से अधिक से अधिक दूरी ४,५१०,५६२,००० कि०मी० तथा कम से कम दूरी ४,४३०,१०६,६०० कि०मी० नापी गई है। पृथ्वी से इसकी अधिकतम दूरी ४,६६१, ८३०,४०० कि० मी० तथा न्यूनतम दूरी ४,२७८,६७१,२०० कि० मी० है। इसका व्यास ५५,६८० कि० मी० है। सूर्य के आसपास का परिभ्रमण-काल ६०,१८० दिन, २० घंटा ३८ मिनट (अर्थात् लगभग १६५ वर्ष) है। गति ४·६६ कि०मी० प्रति सैकंड है। यह पृथ्वी से लगभग १७ गुना भारी है और इसका ताप बहुत ही कम है। इसे कोरी आँखों से देखना असंभव है। अनुमान किया जाता है कि इसका अक्ष-भ्रमणकाल १६ घंटा है। इसकी रचना बहुत-कुछ यूरेनस जैसी ही है। इसमें भी ऐसे गैसीय तत्त्व मौजूद हैं, जो पृथ्वी पर नहीं मिलते! इस ग्रह का केवल एक ही उपग्रह है, जोकि उससे उल्टी दिशा में उसके आसपास चक्कर लगाता है। नेपच्यून का यह चन्द्रमा सौर परिवार का सबसे बड़ा उपग्रह है—कहते हैं, उसका व्यास ४,८०० कि०मी० से भी अधिक है!

सौर जगत् के सीमान्त का पहरेदार—प्लूटो

इसके बाद एक और नवीन ग्रह का पता लगाया गया है। उसे हम सौर जगत् के सीमान्त का आखिरी पहरेदार कह सकते हैं। वह 'प्लूटो' (यम) के नाम से पुकारा जाता है। इस ग्रह की खोज लॉवेल की गणना के आधार पर हुई है। यह इतना अधिक दूर है कि इसके बारे में नाप-तौल की कोई निश्चित बात कहना अभी संभव नहीं हो सका है। दूरदर्शक द्वारा फोटो की प्लेट पर उसकी आकृति केवल एक पिन के निशान जैसी उतर पाई है! मार्च १६३० ई० में इस मंद ज्योति को तीन दिन के भीतर ही तारों के लिहाज से अपनी जगह से खिसककर स्थान-परिवर्तन करते देखकर ही यह निश्चय हुआ कि यह कोई ग्रह है। इसे इस प्रकार खोज निकालने का श्रेय टाम्बाग नामक ज्योतिषी को है। यह माना जाता है कि यह ग्रह आकार में पृथ्वी से छोटा है और तौल में शुक्र जितना भारी है। इससे मालूम होता है कि वह सिमटकर काफी ठोस हो गया है और उस पर वायुमंडल का अभाव है। उसकी चमक नेपच्यून की चमक से भी हजार गुनी कम है! इसे सूर्य के आसपास एक चक्कर लगाने में २५० वर्ष के लगभग समय लगता होगा और सूर्य से इसकी औसत दूरी, संभवतः, ५ अरब ३६ करोड़ कि० मी० के लगभग होगी! इससे परे यदि सूर्य के विशाल परिवार का कोई और अज्ञात सदस्य हो भी, तो उसकी जानकारी पाना फिलहाल हमारे लिए संभव नहीं है!

अचंभे की बात है कि प्लूटो की कक्षा केतुओं की तरह अति दीर्घवृत्ताकार है। फलतः यह अपनी कक्षा में घूमते-घूमते (नेपच्यून से डयोढ़ी दूरी पर होने पर भी) कभी-कभी उससे भी कम दूरी तक अर्थात् उसकी कक्षा के भीतर तक आ जाता है! यद्यपि इससे इस बात की तो संभावना नहीं है कि ये दोनों ग्रह कभी आपस में टकराकर लड़ पड़ेंगे, परन्तु यह प्रश्न अवश्य उठता है कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि यह ग्रह सूर्य की संतान ही न हो, अर्थात् अन्य ग्रहों के साथ उपजनेवाले पिण्ड के बजाय वह कोई ऐसा स्वच्छन्द घुमक्कड़ हो, जिसे कि सूर्य ने अपने आकर्षण से बंदी बनाकर ग्रह बना लिया हो!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्रहों और उपग्रहों के अलावा सौर जगत् की सीमाओं के अंतर्गत प्रायः दो प्रकार के कौतुक और देखने को मिला करते हैं। ये अपनी भयावनी शक्ल, विचित्र चाल और जब-तक दिखाई पड़नेवाली क्षणिक झाँकी के कारण आदिकाल ही से मनुष्य के लिए भयमिश्रित आश्चर्य की वस्तु रहे हैं——यहाँ तक कि उनका दिखाई पड़ना सदैव किसी न किसी अनिष्ट, उत्पात एवं दुर्भाग्य का सूचक माना जाता है! इनमें से एक तो हैं वे अनोखे आकाशीय पिण्ड, जो कि अपनी झाड़ूनुमा रोशनी की विचित्र लंबी पूँछ के कारण 'पुच्छल तारे', 'केतु', 'धूमकेतु' आदि नामों से पुकारे जाते हैं। ये यदा-कदा ही आकाश में प्रकट हो, कुछ हफ्तों या महीनों तक अपनी झलक दिखाने के बाद, पुनः अंतरिक्ष के गर्त में विलीन होते देखे जाते हैं! दूसरे हैं प्रायः प्रत्येक रात को अग्निबाण या आतिशबाजी की तरह आसमान में सरसराते हुए दिखाई देनेवाले वे अनूठे कौतुक, जिन्हें हम 'उल्का' या 'टूटनेवाले तारे' कहकर पुकारा करते हैं। ये कभी-कभी टनों भारी बज्र के रूप में धरती पर गिरकर घोर विनाश का ताण्डव रचते पाए गए हैं! आओ, संक्षेप में सौर जगत् के इन दोनों ही विचित्र सदस्यों की कहानी तुम्हें सुना दें!

पुच्छल तारों की चालढाल और कक्षाएँ

जो लोग वैज्ञानिक साधनों से अजान हैं, उनके लिए पुच्छल तारों की पहचान केवल उनकी झाड़ूनुमा रोशनी की पूँछ ही है। वह कभी-कभी कोरी आँखों ही से आस-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नाम 'नेपच्यून' रक्खा गया। हिन्दी में इसे 'वरुण' के नाम से पुकारा जाता है। इस ग्रह की सूर्य से अधिक से अधिक दूरी ४,५१०,५९२,००० कि०मी० तथा कम से कम दूरी ४,४३०,१०६,६०० कि०मी० नापी गई है। पृथ्वी से इसकी अधिकतम दूरी ४,६६१,८३०,४०० कि० मी० तथा न्यूनतम दूरी ४,२७८,६७१,२०० कि० मी० है। इसका व्यास ५५,६८० कि० मी० है। सूर्य के आसपास का परिभ्रमण-काल ६०,१८० दिन, २० घंटा ३८ मिनट (अर्थात् लगभग १६५ वर्ष) है। गति ४·९६ कि०मी० प्रति सैकंड है। यह पृथ्वी से लगभग १७ गुना भारी है और इसका ताप बहुत ही कम है। इसे कोरी आँखों से देखना असंभव है। अनुमान किया जाता है कि इसका अक्ष-भ्रमणकाल १६ घंटा है। इसकी रचना बहुत-कुछ यूरेनस जैसी ही है। इसमें भी ऐसे गैसीय तत्त्व मौजूद हैं, जो पृथ्वी पर नहीं मिलते ! इस ग्रह का केवल एक ही उपग्रह है, जोकि उससे उल्टी दिशा में उसके आसपास चक्कर लगाता है। नेपच्यून का यह चन्द्रमा सौर परिवार का सबसे बड़ा उपग्रह है—कहते हैं, उसका व्यास ४,८०० कि०मी० से भी अधिक है !

सौर जगत् के सीमान्त का पहरेदार—प्लूटो

इसके बाद एक और नवीन ग्रह का पता लगाया गया है। उसे हम सौर जगत् के सीमान्त का आखिरी पहरेदार कह सकते हैं। वह 'प्लूटो' (यम) के नाम से पुकारा जाता है। इस ग्रह की खोज लॉवेल की गणना के आधार पर हुई है। यह इतना अधिक दूर है कि इसके बारे में नाप-तौल की कोई निश्चित बात कहना अभी संभव नहीं हो सका है। दूरदर्शक द्वारा फोटो की प्लेट पर उसकी आकृति केवल एक पिन के निशान जैसी उतर पाई है ! मार्च १९३० ई० में इस मंद ज्योति को तीन दिन के भीतर ही तारों के लिहाज से अपनी जगह से खिसककर स्थान-परिवर्तन करते देखकर ही यह निश्चय हुआ कि यह कोई ग्रह है। इसे इस प्रकार खोज निकालने का श्रेय टाम्बाग नामक ज्योतिषी को है। यह माना जाता है कि यह ग्रह आकार में पृथ्वी से छोटा है और तौल में शुक्र जितना भारी है। इससे मालूम होता है कि वह सिमटकर काफी ठोस हो गया है और उस पर वायुमंडल का अभाव है। उसकी चमक नेपच्यून की चमक से भी हजार गुनी कम है ! इसे सूर्य के आसपास एक चक्कर लगाने में २५० वर्ष के लगभग समय लगता होगा और सूर्य से इसकी औसत दूरी, संभवतः, ५ अरब ३९ करोड़ कि० मी० के लगभग होगी ! इससे परे यदि सूर्य के विशाल परिवार का कोई और अज्ञात सदस्य हो भी, तो उसकी जानकारी पाना फिलहाल हमारे लिए संभव नहीं है !

अचंभे की बात है कि प्लूटो की कक्षा केतुओं की तरह अति दीर्घवृत्ताकार है। फलतः यह अपनी कक्षा में घूमते-घूमते (नेपच्यून से डयोढ़ी दूरी पर होने पर भी) कभी-कभी उससे भी कम दूरी तक अर्थात् उसकी कक्षा के भीतर तक आ जाता है ! यद्यपि इससे इस बात की तो संभावना नहीं है कि ये दोनों ग्रह कभी आपस में टकराकर लड़ पड़ेंगे, परन्तु यह प्रश्न अवश्य उठता है कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि यह ग्रह सूर्य की संतान ही न हो, अर्थात् अन्य ग्रहों के साथ उपजनेवाले पिण्ड के बजाय वह कोई ऐसा स्वच्छन्द घुमक्कड़ हो, जिसे कि सूर्य ने अपने आकर्षण से बंदी बनाकर ग्रह बना लिया हो !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्रहों और उपग्रहों के अलावा सौर जगत् की सीमाओं के अंतर्गत प्रायः दो प्रकार के कौतुक और देखने को मिला करते हैं। ये अपनी भयावनी शक्ल, विचित्र चाल और जब-तक दिखाई पड़नेवाली क्षणिक झाँकी के कारण आदिकाल ही से मनुष्य के लिए भयमिश्रित आश्चर्य की वस्तु रहे हैं--यहाँ तक कि उनका दिखाई पड़ना सदैव किसी न किसी अनिष्ट, उत्पात एवं दुर्भाग्य का सूचक माना जाता है! इनमें से एक तो हैं वे अनोखे आकाशीय पिण्ड, जो कि अपनी झाड़ूनुमा रोशनी की विचित्र लंबी पूँछ के कारण 'पुच्छल तारे', 'केतु', 'धूमकेतु' आदि नामों से पुकारे जाते हैं। ये यदा-कदा ही आकाश में प्रकट हो, कुछ हफ्तों या महीनों तक अपनी झलक दिखाने के बाद, पुनः अंतरिक्ष के गर्त में विलीन होते देखे जाते हैं! दूसरे हैं प्रायः प्रत्येक रात को अग्निबाण या आतिशबाजी की तरह आसमान में सरसराते हुए दिखाई देनेवाले वे अनूठे कौतुक, जिन्हें हम 'उल्का' या 'टूटनेवाले तारे' कहकर पुकारा करते हैं। ये कभी-कभी टनों भारी बज्र के रूप में धरती पर गिरकर घोर विनाश का ताण्डव रचते पाए गए हैं! आओ, संक्षेप में सौर जगत् के इन दोनों ही विचित्र सदस्यों की कहानी तुम्हें सुना दें!

पुच्छल तारों की चालढाल और कक्षाएँ

जो लोग वैज्ञानिक साधनों से अजान हैं, उनके लिए पुच्छल तारों की पहचान केवल उनकी झाड़ूनुमा रोशनी की पूँछ ही है। वह कभी-कभी कोरी आँखों ही से आस-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
मान में काफी लंबाई तक फैली देखी जा सकती है। यह पूँछ अधिकतर एक ओर को कुछ-कुछ झुकी हुई-सी होती है, जैसी कि तेजी से दौड़ती हुई रेलगाड़ी की धुएँ की पताका! अपने भ्रमण के दौरान में वह काफी घटते-बढ़ते भी दिखाई पड़ती है—विशेषकर सूर्य के निकट पहुँचने पर, जब कि वह अधिक उभर आती है! कहते हैं, ज्यों-ज्यों केतु की सूर्य से दूरी बढ़ने लगती है, उसकी दुम छोटी होती चली जाती है, यहाँ तक कि अंत में वह बिल्कुल ही नहीं दिखाई पड़ती। परन्तु केतु के लिए पूँछ का होना नितान्त आवश्यक नहीं है। क्योंकि कई छोटे केतुओं में दुम होती ही नहीं, फिर भी वे पुच्छल तारों की श्रेणी में गिने जाते हैं। दरअसल, केतुओं की पहचान का पक्का लक्षण है उनकी विशेष प्रकार की चाल, जो कि ग्रहों से निराली है।

यहाँ तुम्हें यह बता दें कि सौर परिवार के सदस्य होने के नाते, ग्रहों-उपग्रहों की भाँति केतु भी सूर्य के आकर्षण-पाश में बँधकर उसकी प्रदक्षिणा किया करते हैं। परन्तु उनकी भ्रमण-कक्षा ग्रहों की भाँति लगभग गोल या वृत्ताकार अथवा दीर्घवृत्ताकार न होकर अत्यन्त लंबान में पसरे हुए दीर्घवृत्त अथवा परवलय की शक्ल की होती है! ऐसी कक्षा में चलनेवाला पिण्ड, संभवतः, कभी-कभी लौटकर वापस सूर्य के समीप आ ही नहीं पाता, क्योंकि सूर्य की ओर से मुँह फेरते ही वह मानो अनन्त की ओर चल पड़ता है! और यदि वह लौटकर आया भी, तो ऐसा करने में उसे बरसों का समय लग जाता है। उदाहरणार्थ, सुप्रसिद्ध हैली का पुच्छल तारा, जिसका चित्र पृष्ठ ६ पर दिया गया है, लगभग ७६ वर्ष में वापस सूर्य के समीप आते पाया गया है। यह केतु अति-दीर्घवृत्ताकार कक्षा में चलता है। अंतिम बार यह १९१० ई० में पृथ्वी के समीप आया था। ऐसा भी एक केतु देखा गया है, जो केवल सवा तीन वर्ष में सूर्य के आसपास एक चक्कर लगा लेता है। परन्तु अधिकतर केतु अति-दीर्घवृत्ताकार कक्षा ही में चलते हैं; अतः वे शायद कभी भी लौटकर नहीं आते, अथवा यदि लौटते भी होंगे, तो हजारों वर्षों में! कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि अनंत दूरी से आया हुआ कोई केतु बृहस्पति जैसे किसी ग्रह की आकर्षण-शक्ति के उल्टे प्रभाव से लगातार अपना वेग खोकर काफी छोटी कक्षा में सूर्य की परिक्रमा करने लगता है। ऐसे केतु के बारे में यह कहा जाता है कि वह सूर्य द्वारा 'बंदी' बना लिया गया!

पुच्छल तारों की रचना किस प्रकार की है?

केतुओं के प्रति फैले हुए इस अंधविश्वास के कारण कि वे उत्पात और अनिष्ट के सूचक हैं, पुराने जमाने ही से बड़े ध्यानपूर्वक उनका निरीक्षण होता रहा है। इससे एक लाभ यह हुआ है कि भिन्न-भिन्न समयों पर दिखाई देनेवाले केतुओं के बड़े प्रामाणिक आलेख हमें मिलते हैं। परन्तु इनकी रचना के संबंध में जो जानकारी आज हमें है, वह दूरदर्शक, वर्णक्रमदर्शी आदि यंत्रों के विकास के बाद की ही जानकारी है। इसके आधार पर अब निश्चित रूप से यह माना जाने लगा है कि केतु वास्तव में कोई एक ठोस पिण्ड नहीं होता, जैसे कि पृथ्वी आदि ग्रह हैं। वह बहुत-से छोटे-बड़े रोड़ों और धूलिकणों का एक झुंड मात्र होता है, जो कहीं तो घना होता है और कहीं एकदम झीना। रोड़ों का यह समूह दीर्घ विस्तार में आसमान में फैला रहता है। उसकी चमक अधिकतर सूर्य के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
प्रकाश के कारण होती है। परन्तु केतु में पाई जानेवाली गैसों के प्रज्वलन तथा विद्युत्-कणों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उसका अपना निजी प्रकाश भी होता है।

पुच्छल तारों में तीन अंग होते हैं—प्रथम, केन्द्रीय भाग, जो कि सबसे अधिक चमकीला होता है ; यह 'नाभि' के नाम से पुकारा जाता है। दूसरा, धुएँ के चमकीले बादल या नीहारिका जैसा शीर्ष भाग, जो नाभि को घेरे रहता है। यह केतु का 'शिर' कहलाता है। तीसरा, टार्च की रोशनी की तरह लंबान में फैला हुआ उसका वह झाड़ूनुमा दुम का हिस्सा, जिसे 'पूँछ' कहते हैं। कई केतुओं में नाभि नहीं होती और कोई-कोई एक से अधिक नाभियोंवाले भी होते हैं। बहुतेरे केतुओं में पूँछ भी नहीं होती। प्रायः सूर्य के नजदीक पहुँचने पर केतुओं में पूँछ के अतिरिक्त एक से अधिक नाभियाँ भी उभरते देखी गई हैं ! केतु की पूँछ सूर्य से हमेशा विपरीत दिशा ही में रहती है। यहाँ तक कि जब वह सूर्य की परिक्रमा करके वापस लौटने लगता है, तो उसकी दुम भी पलटकर सूर्य से उल्टी दिशा में हो जाती है ! कभी-कभी पूँछ केतु से टूटकर अलग होते तथा तुरंत ही उसमें एक या अनेक नई पूँछें निकलते भी देखी गई हैं ! पूँछ की लम्बाई कभी-कभी १६ करोड़ कि० मी० तक (अर्थात् पृथ्वी से सूर्य के फासले से भी अधिक) पाई गई है ! १८४३ ई० के विशाल केतु की दुम तो २४ करोड़ कि० मी० से भी ज्यादा लम्बी थी ! यद्यपि पूँछ के लिहाज से केतु का शिर छोटा होता है, परन्तु उसका भी व्यास ढाई लाख कि०मी० तक का होना एक मामूली बात है ! १८११ ई० के महान् केतु के शिर की चौड़ाई तो लगभग बीस लाख कि० मी० नापी गई थी ! केतु की नाभि का व्यास दो-तीन सौ कि० मी० से आठ-दस हजार कि० मी० तक का होता है। पूँछ की तरह केतुओं की नाभियाँ और शिर भी काफी घटते-बढ़ते रहते हैं। उदाहरणार्थ, प्रसिद्ध हैली-धूमकेतु का शिर १९१० ई० में दिखाई पड़ने पर पहले तो पृथ्वी के व्यास का दुगुना था, तब तीन महीने बाद ही वह तीस गुना, फिर पन्द्रह गुना और अंत में चालीस गुना तक बड़ा हो जाते पाया गया था ! उस समय वह इतना बड़ा था कि चौंसठ हजार पृथ्वी के गोले उसमें समा सकते थे ! बाद में वह सिकुड़कर फिर छोटा हो गया था !

इतने लम्बे-चौड़े जान पड़ने पर भी केतुओं का घनत्व इतना कम होता है कि वे एकदम पारदर्शक होते हैं, यहाँ तक कि उनके आरपार से तारे तक देखे गए हैं ! इसका कारण यह है कि ये केवल छितरे हुए रोड़ों और अति सूक्ष्म धूलिकणों के समूह होते हैं ! इनकी पूँछ का घनत्व तो इतना कम होता है कि जितना द्रव्य वायु के एक घन सेंटी-मीटर भाग में होता है, उतना केतु की पूँछ के शायद कई हजार घन किलोमीटर भाग में भी नहीं होता होगा ! एक-दो बार पृथ्वी बड़े केतुओं की पूँछ की फेंट में आते हुए भी देखी गई है, पर इससे कोई उपद्रव होते नहीं पाया गया।

कुछ मशहूर पुच्छल तारे

पुच्छल तारों की चमक असाधारणतया भड़कीली होती है। कई तो शुक्र से भी ज्यादा चमकीले जान पड़ते हैं। जब भी आसमान में लंबी पूँछवाले किसी बड़े केतु का उदय होता है, तो सचमुच एक अद्भुत दृश्य रच जाता है ! अंतरिक्ष के रहस्यमय परदे की ओट से एकाएक प्रकट होकर पुनः उसी के गर्त्त में विलीन हो जानेवाले ये प्रकाशपुंज ग्रहों

की कक्षाओं के अंतिम सीमान्त से भी परे के लोक से आते पाए गए हैं ! वैज्ञानिकों का अनुमान है कि वे उसी आदि ज्योतिर्मय बादल के बचे-बचाये अंश हैं, जिससे कि सूर्य और उसके ग्रह-परिवार की सृष्टि कभी हुई होगी ! इन अनूठे आकाशीय कौतुकों की संख्या लाख-सवा लाख के लगभग मानी जाती है। परन्तु अब तक कुल मिलाकर कोई दो हजार के लगभग केतुओं का ही पता ज्योतिषी लगा पाये हैं। इनमें से कतिपय उल्लेखनीय केतुओं के नाम ये हैं :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१. **हैली-केतु**—ऐतिहासिक दृष्टि से यह सबसे मशहूर पुच्छल तारा है, जो २४० ईस्वी पूर्व से लेकर १९१० ई० तक की विगत सवा दो हजार वर्षों की अवधि में उनतीस बार सूर्य के समीप आते पाया गया है। इसका परिक्रमण-काल लगभग ७६ वर्ष है। इसकी चाल का ठीक-ठीक पता पहलेपहल गणना करके एडमण्ड हैली ने लगाया था, जिसकी भविष्यवाणी के अनुसार यह पुनः ठीक समय और ठीक स्थान पर देखा गया। इसी से इसका नाम उस ज्योतिषी के नाम पर रख दिया गया। यह प्रसिद्ध धूमकेतु १९८६ ई० में पुनः पृथ्वी के नजदीक आएगा।

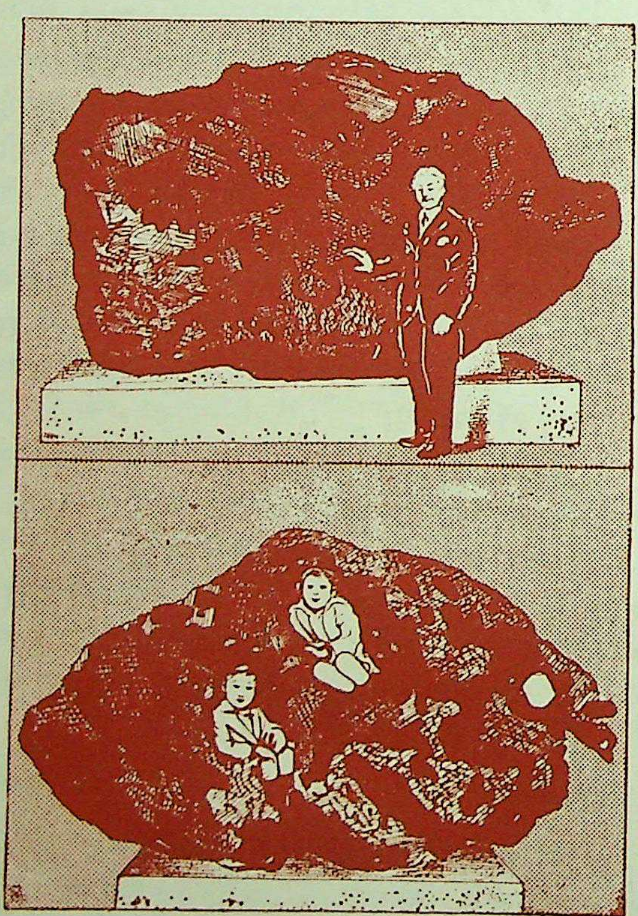

(ऊपर) ग्रीनलैण्ड से प्राप्त एक उल्का-प्रस्तर, जिसका तौल ३८ मीट्रिक टन है ! (नीचे) अन्य एक उल्कापिण्ड, जो १९ टन का है।

२. **१८४३ ई० का केतु**—इसकी पूँछ इतनी लंबी थी कि वह क्षितिज से लेकर ठीक सिर के ऊपर तक आसमान में पसरी हुई थी ! यह केतु सूर्य से केवल ५७ हजार कि० मी० की दूरी तक समीप होकर निकलते पाया गया था। फिर भी सूर्य उसे निगल न पाया ! इसका कारण यह था कि यह उस समय ५८५ कि० मी० प्रति सैकंड की प्रचंड गति से चल रहा था !

३. **डोनाटी-केतु**—यह दैत्याकार केतु १८५८ ई० में हमारे समीप आया था और लगभग नौ महीने तक दूरदर्शक द्वारा देखा जाता रहा था। इसका परिक्रमण-काल दो हजार वर्ष कूता गया है !

४. **बीला-केतु**—यह अद्भुत केतु क्रम से १८०५, १८२६, १८४५ और १८५२ ई० में देखा गया था। इसके बारे में एक सबसे आश्चर्यजनक बात यह थी कि देखते ही देखते इसके दो टुकड़े हो गए थे,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिनमें स्वतन्त्र पूँछें और नाभियाँ निकल आई थीं ! ये दोनों टुकड़े उसी कक्षा में साथ-साथ दौड़ने लगे थे ! कभी-कभी दोनों के बीच रोशनी का एक सेतु या पुल-सा बँध गया था ! अंत में एकाएक दोनों ही आकाश में विलीन हो गए !

५. एनके-केतु––यह केतु केवल सवा तीन वर्ष में ही सूर्य का चक्कर लगा लेता है।

६. मूरहाउज-केतु––इस केतु को पहलेपहल १९०८ ई० में मूरहाउज नामक ज्योतिषी ने देखा था, जिसके नाम से यह प्रसिद्ध है। इसकी विशेषता यह थी कि इसमें एक नहीं बल्कि छः पूँछें थीं !

उल्काएँ––क्या और क्यों ?

रात्रि के समय प्रायः बहुत ऊँचाई पर, आकाश में सहसा आतिशबाजी की तरह मानो एक अग्निबाण-सा इस ओर से उस ओर तक अचानक सरसराता हुआ निकल जाते हमें देखने को मिला करता है। तब हम कहते हैं कि आकाश में तारा टूट पड़ा ! परन्तु दरअसल इन अग्निबाणों का तारों से कोई सम्बन्ध नहीं है। वास्तव में ये टूटनेवाले तारे नहीं, बल्कि आकाश में यहाँ-वहाँ छितरे हुए कुछ छोटे-बड़े रोड़े अथवा उनके समूह मात्र हैं, जो कि शून्य आसमान में आवारों की तरह इधर-उधर मँडराते फिरते हैं ! वे मौके-बेमौके हमारी पृथ्वी के भ्रमण-मार्ग में पड़कर उसकी लपेट में आ जाते हैं। पृथ्वी के वायुमंडल में ऑक्सिजन जैसी जलानेवाली गैसें भी हैं। जब वेग से दौड़ते हुए ये रोड़े वायु के संपर्क में आते हैं, तो रगड़ से उनमें बहुत अधिक गरमी उत्पन्न हो जाती है और उनका द्रव्य प्रज्वलित हो उठता है। उनके इस प्रकार भभकने से हमें जान पड़ता है, जैसे कोई आतिशबाजी छूटी हो। इन विचित्र 'अग्निबाणों' को 'उल्का' कहकर पुकारा जाता है। हमें कभी-कभी इनके फटने की आवाज भी स्पष्ट सुनाई पड़ती है !

अमेरिका के अरिजोना प्रान्त का वह विशाल गड्ढा, जो कि सुदूर अतीत में किसी भीषण उल्कापात के फलस्वरूप बना बताया जाता है ! इस गड्ढे का व्यास डेढ़ किलोमीटर और आसपास का कगार लगभग २०० मीटर ऊँचा है ! कहते हैं, जिस विशाल उल्का-प्रस्तर के गिरने से यह बना है, वह इसके तले में अब भी गड़ा पड़ा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन अनोखे कौतुकों का दरअसल केतुओं के साथ गहरे भाईचारे का नाता है—बल्कि ये केतुओं की ही देन या उपज हैं। ये वस्तुतः केतुओं ही के अंग से छिटककर बिलग हो जानेवाले वे टुकड़े हैं, जोकि उनके गुजर चुकने पर मार्ग में बिखरे पड़े रह जाते हैं। आकर्षण-सिद्धान्त के अधीन ये स्वच्छन्द रोड़े और धूलिकण भी एक झुण्ड बनाकर केतुओं की ही कक्षा में चला करते हैं और जब कभी हमारी पृथ्वी उनकी उस कक्षा को छूते हुए अपने भ्रमण-पथ से गुजरती है, तो उसके प्रचण्ड आकर्षण से खिंचकर वे उसकी ओर लपकते हैं। इसी कारण कभी-कभी आसमान में इन उल्काओं की वैसी झड़ी-सी लग जाती है, जैसे कि लुहार के घन से गरम लोहे में से चिनगारियों की फुलझड़ी छूटती है! ऐसी एक इतिहासप्रसिद्ध उल्काझड़ी १२ नवम्बर, १७९९ ई० की रात को देखी गयी थी। तदुपरान्त चौंतीस वर्ष बाद पुनः उसी दिन उससे भी अधिक दर्शनीय एक उल्काझड़ी देखने में आई! कहते हैं, लगभग एक हजार वर्षों से नवम्बर के महीने में इसी तरह हर चौंतीसवें वर्ष दिखाई पड़नेवाला उल्काझड़ी का यह चक्र जारी है!

हजारों मीट्रिक टन वजन के उल्कापिण्ड

ये उल्काएँ कभी-कभी छोटी-छोटी कंकड़ियों से लेकर हजारों मीट्रिक टन वजन के तप्त लौह पाषाण के पिण्ड हमारी धरती पर बरसाकर घोर विनाश का दृश्य रचते पायी गयी हैं! इस तरह धरती पर टूट पड़नेवाले उल्कापिण्डों के हजारों नमूने बड़े-बड़े संग्रहालयों में बटोरकर रक्खे गए हैं। उनमें से एक का वजन लगभग ३८ मीट्रिक टन तथा दूसरे का लगभग १९ मीट्रिक टन है! इन उल्कापिण्डों में प्रायः विशुद्ध लोहा तथा अन्य धातुएँ पाई जाती हैं। आधुनिक युग का सबसे भीषण उल्कापिण्ड ३० जून, १९०८ ई० के दिन साइबेरिया के येनीशाई प्रान्त में गिरा था। इससे उस इलाके में भूकम्प का-सा दृश्य पैदा हो गया था!

उल्कापिण्डों के आघात से बने हुए विशाल गड्ढों में सबसे मशहूर उत्तरी अमेरिका के अरिजोना प्रदेश का वह असाधारण गर्त है, जिसका व्यास लगभग डेढ़ किलोमीटर एवं आसपास का कगार २०० मीटर ऊँचा है! अनुमान किया जाता है कि इस गड्ढे के नीचे ५०० मीटर की गहराई पर वह महान् उल्का-प्रस्तर अब भी गड़ा पड़ा है, जो संभवतः दो हजार वर्ष पहले इस स्थान पर गिरा होगा! इस गड्ढे की विशालता को देखते हुए सम्भावना है कि यह भीमकाय उल्कापिण्ड किसी केतु का शीर्षभाग होगा और उसका तौल १ करोड़ मीट्रिक टन के लगभग रहा होगा। जब वह वज्र पृथ्वी पर गिरा होगा, तब कैसा प्रलयंकर दृश्य धरती के उस भाग में रच गया होगा!

यह अनुमान लगाया गया है कि प्रति दिन कोई दो करोड़ उल्काएँ पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश करती हैं और उनके अवशेषों के धरती पर गिरने से इस ग्रह के तौल में लगभग एक हजार मीट्रिक टन की वृद्धि होती रहती है। इन ज्ञात उल्काओं के अलावा बाह्य अंतरिक्ष में विविध कक्षाओं में आवारों की तरह घूमते फिरते रहनेवाले अदृष्ट रोड़ों का परिमाण कितना होगा, यह कहना कठिन है! अप्रैल १९६४ में पूर्वी भारत के बरहामपुर नामक कस्बे के पास एक बहुत बड़ी उल्का के फटने से जो रोड़े धरती पर गिरते पाए गए थे, उनमें निकल धातु के दो विशाल पिण्ड भी थे!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पिछले कुछ प्रकरणों में हमने सूर्य और उसके परिवार का परिचय तुम्हें कराया ! किन्तु इसी में इस कहानी का अंत नहीं हो जाता। वस्तुतः विश्व-ब्रह्माण्ड के अनंत विस्तार को देखते हुए, सौर जगत् की जिन सीमाओं तक हमने अपनी नजर दौड़ाई है, वह एक बहुत छोटी-सी दुनिया है। जब कि प्लूटो की कक्षा तक के सौर जगत् का विस्तार केवल १० प्रकाश-घंटों के व्यास के क्षेत्र में पसरा हुआ है, वहाँ नजदीक से नजदीक जो तारा इससे परे हमें मिलता है, वह है सवा चार प्रकाश-वर्ष की दूरी पर ! इसके बाद तो ज्यों-ज्यों हम अंतरिक्ष की गहराई में आगे प्रवेश करते जाते हैं, त्यों-त्यों करोड़ों-अरबों तारे हमें लगातार मिलते चले जाते हैं। ये सभी नक्षत्र हमारे सूर्य जैसे अथवा उससे भी बड़े हैं और हम से कई हजार प्रकाश-वर्षों की दूरी तक फैले हुए हैं।

मंदाकिनी

इन अरबों-खरबों नक्षत्रों में से अधिकतर अपने पड़ोसियों से चार-पाँच प्रकाश-वर्षों की दूरी पर स्थित हैं ! इस प्रकार प्रत्येक का अपना-अपना स्वतन्त्र अधिकार-क्षेत्र है, जो चार-पाँच प्रकाश-वर्षों से कम दायरे में नहीं है ! तारों की यह दुनिया आकाशगंगा के रूप में अधिकाधिक घनीभूत होकर ऊपर आसमान में प्रत्येक स्वच्छ रात्रि को हमें दीपावली की तरह झिलमिल करते दिखाई पड़ती है। इसे ज्योतिर्षी 'मंदाकिनी' के नाम से पुकारते हैं और इसका विस्तार एक लाख प्रकाश-वर्ष व्यास की दीर्घवृत्ताकार बाटी में बद्ध बताया जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करोड़ों प्रकाश-वर्षों की दूरी तक फैले हुए कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड

परन्तु इसी में सारे विश्व-ब्रह्माण्ड का अंत नहीं हो जाता ! वस्तुत: यह तो हमारी अपनी इस दुनिया का दायरा हुआ, जिसमें कि आकाशगंगा के तारों सहित हमारे सौर जगत् का छोटा-सा इलाका समाया हुआ है। इसके बाद जब और आगे निगाह दौड़ाई जाती है, तो इसके भी आगे वह अनंत क्षेत्र पसरा हुआ मिलता है, जिसमें कि हमारी इस मंदाकिनी जैसी न जाने कितनी और भी अनेक स्वतंत्र और विशाल संस्थाएँ या इतर ब्रह्माण्ड फैले हुए हैं। ये सब कोटि-कोटि तारों के झुण्ड या ज्योतिर्लोकों के रूप में लाखों प्रकाश-वर्षों तक की दूरी तथा उतनी ही लम्बाई-चौड़ाई में विस्तृत हैं। कहीं-कहीं ये विस्तृत ज्योतिर्मय द्रव्य की मेघमालाओं या नीहारिकाओं का भी रूप लिए हुए हैं ! ये नीहारिकाएँ तथा नक्षत्र-संस्थाएँ संख्या में दस-बीस नहीं, बल्कि लाखों-करोड़ों हैं ! हमारे बड़े से बड़े दूरदर्शकों द्वारा वे अब तक लगभग एक अरब प्रकाश-वर्ष की दूरी तक पसरी हुई देखी गई हैं !

तारा-समूह

किसी भी स्वच्छ रात्रि को जब हम निगाह उठाकर अपने ऊपर छाये हुए गगन-मण्डल की असंख्य ज्योतियों को देखते हैं, तो वे हमें कुछ निश्चित समूहों में व्यवस्थित दिखाई पड़ती हैं। इससे उन्हें पहचानने में हमें काफी सुविधा हो जाती है। इन तारों को लोग हजारों वर्षों से इसी तरह विविध समूहों में सजा हुआ देखते चले आ रहे हैं। फलतः उनके उन समूहों की आकृतियों को प्रायः कल्पना के चौखटों में बाँधकर भाँति-भाँति के पशुओं, जीवधारियों, देवी-देवताओं एवं वस्तुओं के आकार-प्रकार का उनमें आरोप किया जाता है तथा इन्हीं के नाम पर उन्हें पुकारा जाता है। जैसा कि आगे चलकर तुम देखोगे, यह वस्तुतः हमारा दृष्टि-भ्रम और कल्पना का मनगढ़न्त खिलवाड़ मात्र है। क्योंकि पृथ्वी पर से एक समूह विशेष के आकार में खास ढंग से सजे हुए दिखाई पड़ने पर भी, इन नक्षत्रों का दरअसल एक दूसरे से कोई वास्ता नहीं है—वे एक दूसरे से अत्यधिक दूरी पर स्थित हैं और यदि आसमान के किसी और ग्रह-नक्षत्र से देखे जाएँ, तो संभवतः किसी और ही शक्ल-सूरत की आकृति में सजे हुए दिखाई देंगे ! जो भी हो, चूँकि इस पृथ्वी पर से इसी प्रकार विविध समूहों में सजे हुए वे दिखाई पड़ते हैं, अतः प्राचीन काल से ही इन आकृतियों के अनुरूप उनके नाम भी पड़ गए हैं तथा नक्षत्र-मंडल के मानचित्रों में इन्हीं नामों से उनका उल्लेख रहता है।

कुल ८८ तारा-समूह आज के दिन ज्योतिषियों द्वारा मान्य हैं। हिन्दी में इनके नाम ये हैं—देवयानी, पंप, खग, कुंभ, गरुड़, वेदी, मेष, रथी, भूतेश, टंक, जिराफ, कर्क, मृगयाशुन, श्वान, श्वानिका, मकर, नौतल, शर्मिष्ठा, किन्नर, वृषपर्वा, तिमि, गलगति, परकार, कपोत, केश, दक्षिण किरीट, उत्तर किरीट, काक, चषक, स्वस्तिक, हंस, उलूपी, असिमीन, कालिय, अश्वक, वैतरणी, भट्टी, मिथुन, बक, शौरी, होरामाप, वासुकि, जालिका, सिंधु, सरट, सिंह, सिंहिका, शशक, तुला, वृक, विडाल, वीणा, शैल, सूक्ष्मदर्शक, एकश्रृंग, मक्षिका, अंकिनी, अष्टांश, सर्पधर, मृग, मयूर, खगाश्व, ययाति, गृध्र, चित्रकार, मीन, दक्षिण मीन, नौपृष्ठ, दिक्सूचक, जाल, शर, धनु, वृश्चिक, शिल्पी, ढाल, सर्प,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

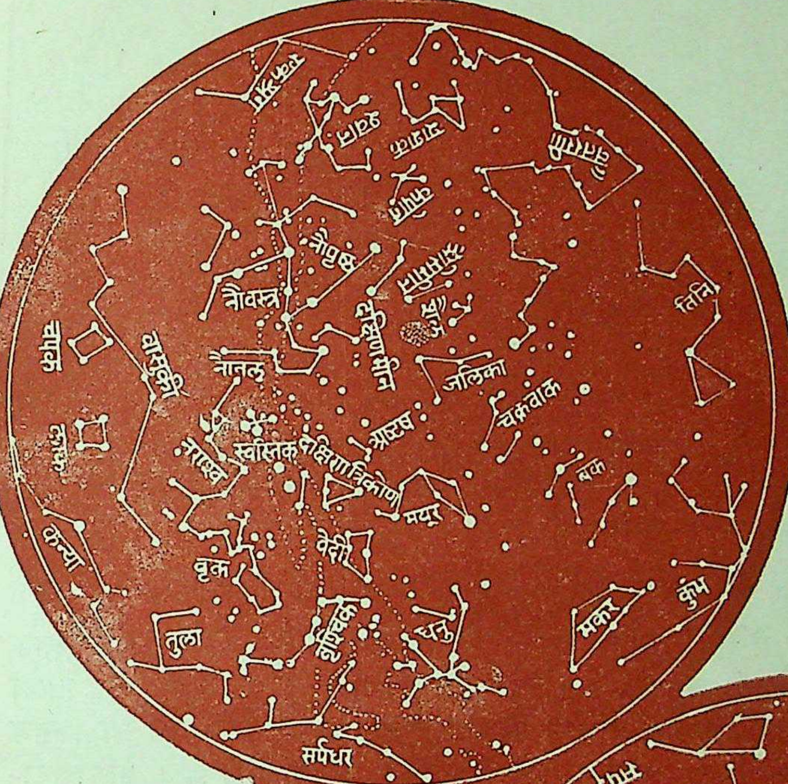

नक्षत्र-मंडल के इन नकशों में ऊपर उन प्रमुख तारा-समूहों को दरसाया गया है, जोकि पृथ्वी के उत्तरी गोलार्द्ध से दिखाई पड़ते हैं। इसी तरह नीचे वे तारा-समूह दिए गए हैं, जो दक्षिणी गोलार्द्ध के क्षेत्र से दिखाई पड़ते हैं। यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि इन छोटे-से नकशों में प्रत्येक तारा-समूह के केवल कुछ प्रमुख अधिक चमकीले तारे ही सूचित किए गए हैं—मंद तारों को तो दिखाना असंभव है। पहचान की सुविधा के लिए आजकल प्रत्येक समूह के तारों को कुछ सीधी रेखाओं से जोड़ दिया जाता है। यही इन मानचित्रों में भी पहचान के लिए किया गया है।

षड़ंश, वृष, दूरदर्शक, चक्रवाक, त्रिकोण, दक्षिण त्रिकोण, सप्तर्षि, ऋक्षिका, नौवस्त्र, कन्या, उड़ंकू और लोमश*।

डेढ़ सौ वर्ष पहले तारा-समूहों की कुल संख्या ११२ मानी जाती थी। उससे तीन सौ वर्ष पहले टाइको ब्राही नामक योरपीय ज्योतिषी के जमाने में इनकी संख्या केवल ५० थी! पुराने जमाने की सबसे प्रसिद्ध तारा-सूची टालमी नामक यवन ज्यो-

* ये नाम लेखक द्वारा संपादित 'हिन्दी विश्व भारती' में स्व० डॉ० गोरखप्रसाद द्वारा प्रणीत सूची से लिए गए हैं। आगे दिए गए तारों के नाम भी उन्हीं की सूची से लिए गए हैं। अतः हम उनके अत्यन्त आभारी हैं!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

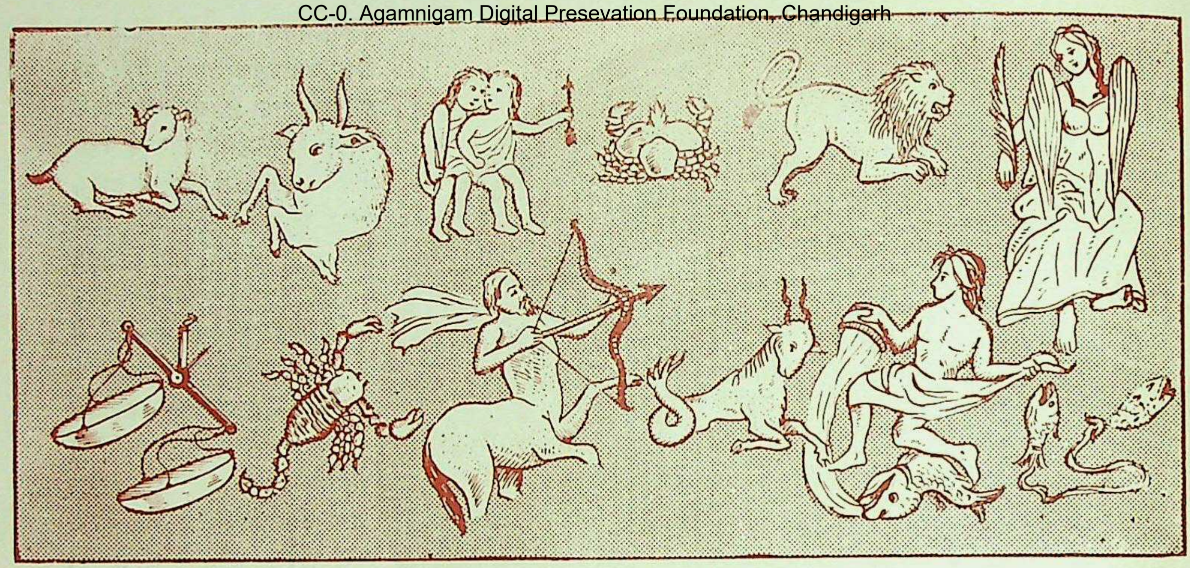

मेष, वृषभ, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन–इन राशियों के पाश्चात्य चिह्न ।

तिषाचार्य की थी, जो 'अल मैजेस्ट' नामक उसके ज्योतिष-ग्रन्थ में मिलती है। यह पुस्तक उसकी मूल ग्रीक कृति का अरबी अनुवाद है। उसने कुल ४८ तारा-समूहों का उल्लेख किया है। टालमी ने यह सूची हिपार्कस नामक प्राचीन ग्रीक ज्योतिषाचार्य से ग्रहण की थी। स्वयं यूनानियों ने ये नाम संभवतः मिस्र, बाबुल, सुमेर आदि से ग्रहण किये थे। इन तारा-समूहों के नामकरण को देखकर यह नहीं समझ लेना चाहिए कि उनकी शक्लें सर्वथा उनके नामों के अनुरूप ही हैं। बहुतेरे नाम बेमतलब रखे हुए भी मालूम होते हैं!

राशिचक्र

पाश्चात्य देशों में प्रचलित तारा-समूहों की इस तालिका से ध्यान हटाकर जब हम अपने देश की ज्योतिष-परम्परा पर निगाह डालते हैं, तो हमें एक ओर तो मेष, वृषभ, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ और मीन नामक बारह राशियों का वह चक्र मिलता है, जो कि आकाश में सूर्य, चन्द्रमा और ग्रहों के विचरण के मेखलाकार प्रदेश के विभाजन की पूर्व-पश्चिम दोनों में मान्य सुप्रसिद्ध योजना है। दूसरी ओर अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्व भाद्रपद, उत्तर भाद्रपद और रेवती नामक सत्ताईस 'नक्षत्रों' या तारा-समूहों के रूप में उसी मेखलाकार प्रदेश के विभाजन की उस परम्परा से भी हमारा साक्षात्कार होता है, जिसके आदि सूत्र वैदिक साहित्य के साथ जुड़े हुए हैं। इस विभाजन का आधार तारों के लिहाज से चन्द्रमा की दैनिक गति है। यह तो तुम्हें मालूम ही है कि चन्द्रमा लगभग २८ दिनों में पृथ्वी के आसपास एक चक्कर लगा लेता है। अतः चन्द्रमा की गति के मार्ग पर निर्धारित सत्ताईस नक्षत्रों के नाम का यह भारतीय राशिचक्र बहुत कुछ वैज्ञानिक है। कहते हैं, प्राचीन चीन और अरब में भी राशिचक्र को इसी तरह सत्ताईस या अट्ठाईस भागों में बाँटने का चलन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था। मेष, वृषभ आदि बारह राशियों की योजना मूलतः भारतीय नहीं है—वह, संभवतः, भारत में यूनान से आई है! भारतीय ज्योतिष में उसका पहलेपहल उल्लेख छठी सदी ईस्वी के आचार्य वराहमिहिर की 'पंचसिद्धान्तिका' नामक पुस्तक में ही मिलता है, जबकि ऊपर उल्लिखित सत्ताईस (या कहीं-कहीं अट्ठाईस) नक्षत्रों की चर्चा ढाई हजार ईस्वी पूर्व के भारतीय ग्रंथों में भी है!

इन राशियों और राशिचक्र का अर्थ क्या है? यह तो तुमने गौर किया ही होगा कि सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह आदि पृथ्वी के लिहाज से आकाश के गोल गुंबद के एक सँकरे मेखलाकार क्षेत्र के विशेष दायरे में होकर चलते दिखाई पड़ते हैं। भारतीय ज्योतिषियों ने इस मेखलाकार क्षेत्र को प्राचीन काल ही से 'राशिचक्र' या 'राशिमण्डल' का नाम दे रक्खा है। अंग्रेजी में इसे 'जोडिएक' कहते हैं! भारतीय ज्योतिष में यह चक्र बराबर-बराबर बारह हिस्सों में बाँट दिया गया है। उन्हीं में से प्रत्येक को मेष, वृषभ आदि एक-एक 'राशि' माना गया है। उदाहरणार्थ, जब यह कहा जाता है कि इस समय सूर्य मेष राशि में है, तो इसका अर्थ यह हुआ कि वह आकाश के मेखलाकार प्रदेश के उस प्रथम भाग में है, जो 'मेष' नामक राशिचिह्न द्वारा सूचित है। परन्तु पाश्चात्य प्रणाली में इसके प्रतिकूल राशिचक्र के इन बारहों खंडों की सीमाएँ मेष, वृषभ आदि तारा-समूहों की सीमाओं पर निर्भर हैं। इसीलिए वे अनियमित हैं। अतः जब पाश्चात्य पद्धति के अनुसार यह कहा जाता है कि अमुक ग्रह इस समय मिथुन राशि में है, तो उसका अर्थ यह होता है कि वह इस समय कहीं न कहीं उस तारा-समूह की सीमाओं में है, जोकि 'मिथुन' के नाम से पहचाना जाता है।

सभी तारे सूर्य हैं

विविध तारा-समूहों और उनके आधार पर बनाये गये राशिचक्र का यह ब्योरा हमने केवल इसीलिए दिया है कि तारों को इन समूहों के सदस्यों के रूप में पहचानने की एक परम्परा-सी पड़ चुकी है। वरना, सच तो यह है कि आकाश-मण्डल में चमकनेवाले

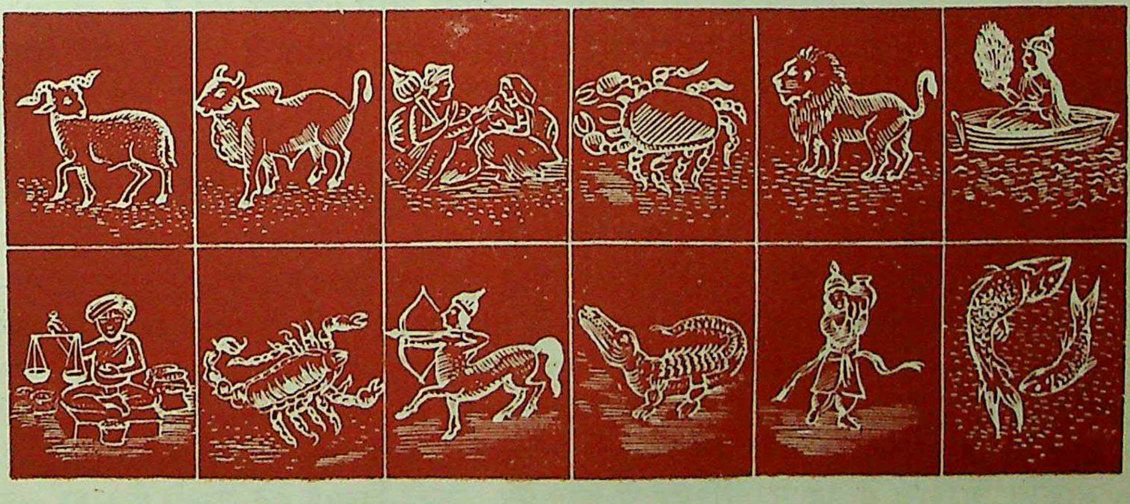

मेष, वृषभ, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन आदि बारह राशियों के भारतीय चिन्ह।

नक्षत्रों में सभी एक-दूसरे से स्वतन्त्र हैं ! वे सब के सब अपने-अपने क्षेत्र के सूर्य हैं——न केवल इसी अर्थ में कि वे रोशनी और आग के तमतमाते हुए प्रचण्ड गोले हैं, बल्कि इस अर्थ में भी कि हमारे अपने सूर्य की भाँति वे भी अपने-अपने क्षेत्र के चक्रवर्ती सम्राट् हैं ! उनकी चमक अपनी निजी चमक है ! उनका ताप अपना ही निजी ताप है ! उनकी सत्ता अपनी स्वतन्त्र सत्ता है ! यह सच है कि कुछ दोहरे तारे एक-दूसरे की परिक्रमा भी करते हैं, परन्तु वे ग्रहों जैसे नहीं हैं। यदि वे चलते भी हैं, तो लट्टू की तरह अपने अक्ष पर भ्रमण करते हुए सारे नक्षत्र-मण्डल के साथ-साथ शून्य में आगे बढ़ रहे हैं। उनकी यह गति इतनी पेचीदा और रहस्यपूर्ण है एवं पृथ्वी से उनकी दूरी इतनी अधिक है कि हमारे लिहाज से वे मानो अटल और ध्रुव हैं ! इसीलिए वे हमें सदैव अपने-अपने समूहों में बिना हिले-डुले ज्यों-के-त्यों एक ही स्थान पर डटे हुए दिखाई पड़ते हैं ! यदि प्रत्येक रात्रि को उनके समूहों की स्थिति हमें गगनमण्डल में बदलती हुई-सी जान पड़ती है, तो उसका कारण केवल पृथ्वी का अक्ष-भ्रमण अथवा परिक्रमण ही है, जिसके कि फलस्वरूप भ्रमवश सूर्य भी पूर्व से पश्चिम की ओर गगनमण्डल की सैर करते हमें दिखाई देता है ! दरअसल ज्योतिषी जब आसमान की असंख्य जगमगाती हुई ज्योतियों में से किसी ग्रह को ढूँढ निकालता है, तो इसके लिए उसका मुख्य पैमाना यही होता है कि जहाँ तारे हमें अपने स्थान से रंच मात्र भी हिलते नहीं दिखाई देते, वहाँ ग्रहों की स्थिति उनके लिहाज से निरन्तर बदलती रहती है !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'ध्रुवतारा' और 'सप्तर्षि' तारा-समूह

गगनमण्डल के कई तारे और उनके समूह न जाने कब से मनुष्य के जाने-पहचाने हुए हैं। इनमें सबसे मशहूर है उत्तर दिशा को सूचित करनेवाला हमारा चिरपरिचित 'ध्रुवतारा' ! यह तारा पृथ्वी के जिस स्थान का जितना अक्षांश होगा, वहाँ से क्षितिज से उतने ही अंश की ऊँचाई पर उत्तर की ओर आकाश में एक ही जगह निश्चल दिखाई पड़ता है। इसीलिए यह 'ध्रुव' कहलाता है। इससे कुछ ही दूरी पर सात चमकीले तारों का एक समूह प्रायः आकाश में रहा करता है, जिसकी खास पहचान यह है कि ध्रुवतारा सदैव ही उसके घुमाव के अन्तिम दो तारों की सीध में रहा करता है ! यह तारा-समूह 'सप्तर्षि' के नाम से मशहूर है और किसी भी बड़े-बूढ़े व्यक्ति से पूछकर वह सहज ही पहचाना जा सकता है।

सूर्य और चन्द्रमा की तरह तारे भी पूर्व में उदय होकर पश्चिम में अस्त होते जान पड़ते हैं। केवल 'ध्रुवतारा' ही अकेला एक ऐसा नक्षत्र है, जो हमें सदैव एक ही स्थान में अटल दिखाई पड़ता है। इसका कारण यह है कि वह हमारी पृथ्वी की धुरी की सीध में मानो उसके एकदम सिर पर है। अब यदि तुम ध्रुवतारे को लगातार ध्यान में रखते हुए उसके लिहाज से आसमान के दूसरे सभी तारों और तारा-समूहों को कई घंटों तक बारीकी से देखो, तो शीघ्र ही तुम्हें यह बात मालूम हो जायगी कि ये सब के सब इसी ध्रुवतारे की परिक्रमा करते हुए जैसे जान पड़ते हैं ! इसी कारण इन तारा-समूहों की आकृति आकाश में पूर्व से पश्चिम में आने पर उल्टी दिखाई देने लगती है। यह सब-कुछ पृथ्वी के अक्ष-भ्रमण का ही चमत्कार है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ध्रुवतारा केवल उत्तरी गोलार्द्ध के क्षेत्र ही में दिखाई पड़ता है, दक्षिणी गोलार्द्ध के आसमान में वह नहीं दिखाई पड़ता। वह उत्तरी ध्रुव पर एकदम ठीक सिर पर दिखाई पड़ता है और विषुवत् रेखा पर पहुँचते-पहुँचते एकदम क्षितिज की कोर पर जा लगता है! यही बात बहुतेरे तारा-समूहों के बारे में भी लागू है। यह सारा खेल और चमत्कार पृथ्वी के गोले की विशेष आकृति और गति के कारण ही है!

अन्य प्रसिद्ध तारा-समूहों एवं नक्षत्रों की पहचान

ध्रुवतारा और सप्तर्षि की भाँति और भी कई प्रसिद्ध नक्षत्र और तारा-समूह पुराने जमाने से हमारे जाने-पहचाने हुए हैं। इनमें सप्तर्षि से उल्टी दिशा में ध्रुव से उतनी ही दूरी पर दिखाई पड़नेवाला 'शर्मिष्ठा' तारा-समूह तथा चार चमकीले तारों के चतुष्कोण के बीच एक ही सीध में तिरछे ढंग से दिखाई पड़नेवाला (तीन तारों द्वारा पहचाना जानेवाला) 'मृग' तारा-समूह सबसे उल्लेखनीय हैं। इसी तरह आसमान के सबसे चमकीले तारे 'लुब्धक' (सीरियस) को अपनी टोली में बसाये हुए प्रसिद्ध 'श्वान' तारा-समूह की भी पहचान कठिन नहीं है। इनके अतिरिक्त बाकी तारों को अथवा नक्षत्र-समूहों को भी तारा-मण्डल के नकशों की मदद से रात्रि के समय निरीक्षण करके सहज ही जाना-पहचाना जा सकता है! इन नकशों में किसी एक क्षण विशेष पर आकाश में तारों की स्थिति सूचित रहती है। चूँकि पृथ्वी के अक्ष-भ्रमण के कारण उनकी स्थिति निरन्तर बदलती रहती है, अतः ऐसी समय-तालिकाएँ बनी हुई हैं, जिनमें यह सूचित रहता है कि कौन-सा तारा किस समय आसमान में 'यामोत्तर-वृत्त' पर रहता है। यामोत्तर-वृत्त वह कल्पित रेखा है, जो क्षितिज के उत्तरी बिन्दु से दक्षिणी बिन्दु तक आसमान में फैली है। इस कार्य में जो यन्त्र उपयोग में आता है, उसका चित्र पृ० ३२ पर पहले दिया जा चुका है।

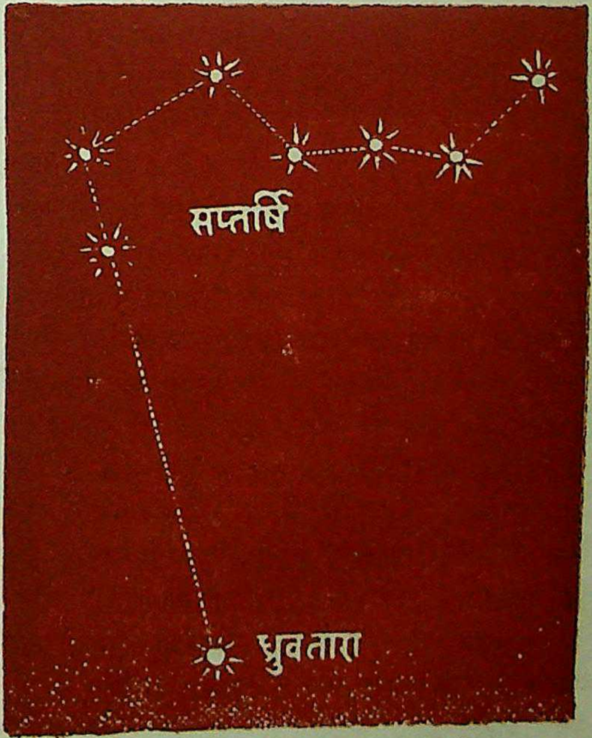

ध्रुवतारा और 'सप्तर्षि' तारा-समूह।

चमक के अनुसार तारों का वर्गीकरण

प्रत्येक तारा-समूह के विविध नक्षत्रों को अपनी-अपनी चमक के अनुसार प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि श्रेणियों में बाँट दिया गया है। इसी प्रणाली के अनुसार क्रमशः चमक के अनुसार क, ख, ग, घ आदि अक्षर जोड़कर अपने-अपने समूह के नाम के साथ उनका नामोल्लेख किया जाता है। उदाहरणार्थ, लुब्धक नामक सबसे चमकीला तारा 'क श्वान' है, अर्थात् श्वान तारा-समूह का वह प्रथम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रेणी का तारा है। कम चमकीले तारों के नाम के साथ उनकी क्रम-संख्या जुड़ी रहती है, यथा '५३ सिंह' (अर्थात् सिंह तारा-समूह का ५३वाँ तारा) अथवा कभी-कभी किसी तारा-सूची की क्रम-संख्या भी जुड़ी रहती है, यथा 'ग्रूमब्रिज ७२४'।

चमक के आधार पर तारों के इस श्रेणी-विभाजन और वर्गीकरण के अनुसार प्रथम श्रेणी के तारे सबसे अधिक चमकीले हैं। उधर छठी श्रेणी के इतने मंद हैं कि उनसे अधिक मंद तारे फिर कोरी आँख से नहीं देखे जा सकते। अधिक बारीकी के लिए दशमलव की संख्याओं तथा ऋण (–) और धन (+) के चिह्नों द्वारा भी तारों की श्रेणी बताई जाती है, उदाहरणार्थ लुब्धक–१.५८ श्रेणी का तारा है और ध्रुवतारे की श्रेणी +२.१ है। माउण्ट विल्सन के दूरदर्शक द्वारा इक्कीसवीं श्रेणी तक के और माउण्ट पालोमर के दूरदर्शक द्वारा तेईसवीं श्रेणी तक के तारे देखे जा सकते हैं।

आसमान के सबसे अधिक चमकीले बीस तारों के नाम ये हैं––लुब्धक (क श्वान), अगस्त्य (क नौतल), किन्नरपद (क किन्नर), अभिजित (क वीणा), ब्रह्महृदय (क रथी), स्वाती (क भूतेश), मृगपद (ख मृग), प्रभास (क श्वानिका), वैतरणी अंत (क वैतरणी), अजिन्य (ख किन्नर), श्रवण (क गरुड़), आर्द्रा (क मृग), त्रिशंकु (क स्वस्तिक), रोहिणी (क वृष), चित्रा (क कन्या), पुनर्वसु (ख मिथुन), ज्येष्ठा (क वृश्चिक), मत्स्यमुख (क दक्षिण मीन), हंसपुच्छ (क हंस) और मघा (क सिंह)।

तारों की संख्या दूरी, गरमी, और वर्ण

देखने में अनगिनत मालूम पड़ने पर भी किसी भी स्वच्छ रात्रि को पृथ्वी के दोनों गोलार्द्धों से कोरी आँखों से दिखाई पड़नेवाले तारों की कुल संख्या छः-सात हजार से अधिक नहीं है! ये तारे कई बार गिने जा चुके हैं। किन्तु वैसे ज्ञात तारों की संख्या अरबों-खरबों तक पहुँचती है! इस असीम संख्या का हमें ज्ञान कराने का श्रेय चमत्कारपूर्ण यंत्र दूरदर्शक को है। आज हम निश्चित रूप से यह जानते हैं कि हमारी मंदाकिनी संस्था में कम से कम एक खरब (१००,०००,०००,०००) तारे हैं। दूरदर्शकों पर फोटो की प्लेट लगाकर उन्हें लंबे समय तक प्रकाश दरसाने पर अत्यंत मन्द तारों का भी चित्र उतर आता है, जोकि अन्यथा एकदम अदृश्य रहते हैं। हमारे लिए सूर्य के बाद नजदीक से नजदीक तारा 'किन्नर' तारा-समूह का एक अति मंद तारा है। इस तारे से पृथ्वी तक प्रकाश को आने में सवा चार वर्ष का समय चाहिए! आकाश के कुछ सबसे अधिक चमकीले बड़े तारों की क्रमानुसार दूरी यह है––लुब्धक (८.६ प्रकाश-वर्ष), अभिजित (२६ प्रकाश-वर्ष), ब्रह्महृदय (५२ प्रकाश-वर्ष), स्वाती (४१ प्रकाश-वर्ष), मृगपद (५०० प्रकाश-वर्ष), अजिन्य (३०० प्रकाश-वर्ष), आर्द्रा (२०० प्रकाश-वर्ष), चित्रा (२३० प्रकाश-वर्ष), ज्येष्ठा (३८० प्रकाश-वर्ष) और हंसपुच्छ (संभवतः ६०० प्रकाश-वर्ष)! अनेक मंद तारे ऐसे भी हैं, जिनकी रोशनी को पृथ्वी तक पहुँचने में एक लाख से लगभग चालीस हजार वर्ष तक का समय चाहिए!

जिस प्रकार दूरदर्शक ने अनंत दूरी के असंख्य मंदातिमंद तारों को हमारी निगाह में ला दिया है, उसी प्रकार 'वर्णक्रमदर्शी' (स्पेक्ट्रोस्कोप) ने अपनी जादूभरी शक्ति से इन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूर के ज्योतिष्पुंजों की रचना, गति, गरमी, घनत्व, तौल आदि का ज्ञान प्राप्त करने में अमूल्य योग दिया है। इस प्रकार जो ज्ञान प्राप्त हुआ है, उसके अनुसार विभिन्न तारों को उनकी विकासावस्था के अनुरूप तीन-चार मुख्य वर्गों में बाँट दिया गया है। कुछ तारे लाल, कुछ पीले, कुछ श्वेत और कई नीले-से जान पड़ते हैं ! ज्योतिषियों का कहना है कि तारों के इस रंग-भेद से उनके ताप का बहुत-कुछ अनुमान हो सकता है। यह माना जाता है कि लाल दिखाई पड़नेवाले तारे सबसे कम गरम और कम घने हैं। वे संभवतः विकास की सीढ़ी की काफी निचली अवस्था में अभी हैं। उनका सतह का ताप लगभग १,४०० अंश सेंटीग्रेड होगा, जबकि पीले तारे २,८०० अंश सेंटीग्रेड एवं श्वेत तथा नीले तारे संभवतः लगभग ३८,००० अंश सेंटीग्रेड तक की गरमी में तप रहे होंगे ! हमारा सूर्य पीले रंग के तारों की श्रेणी का नक्षत्र है। इन तीन-चार रंगों के अलावा कभी-कभी नारंगी, बैंजनी, ललछौंह, निलछौंह और चमकीले हरे रंग के तारे भी दिखाई पड़ते हैं ! यही नहीं, उनका रंग बदलता भी रहता है, जिससे कि उनके विकास की प्रणाली की झाँकी हमें मिलती है। उदाहरणार्थ, दो हजार वर्ष पूर्व लुब्धक तारा ललछौंह रंग का था, परन्तु अब वह स्पष्टतः श्वेत रंग का है। कहते हैं, सभी तारे आरंभिक स्थिति में लाल रंग के होते हैं। उस समय उनका ताप, चाप और घनत्व बहुत कम होता है। जब उनका घनत्व बढ़ता है, तो उनके चाप और ताप की वृद्धि होती है। तब लाल से पीले और पीले से श्वेत या नीले रंग के वे हो जाते हैं।

तारों की बनावट

ये सभी तारे एक प्रकार के अरबों-खरबों सूर्य ही हैं ! अन्तर केवल इतना ही है कि इनमें से कई हमारे सूर्य से भी हजारों-लाखों गुना बड़े हैं, तो कई उससे छोटे भी हैं। दूरी के कारण ही दूरदर्शकों में वे इतने मंद दिखाई पड़ते हैं, परन्तु उनके मंद प्रकाश से यह नहीं समझना चाहिए कि वे चमक में कम होंगे। दरअसल तारों की 'प्रत्यक्ष चमक' और 'वास्तविक चमक' दोनों में काफी अन्तर होता है। उदाहरणार्थ, अगत्स्य तारा सूर्य से अस्सी हजार गुना अधिक चमकीला है और मृगपद तारा अठारह हजार गुना अधिक प्रकाशमान !

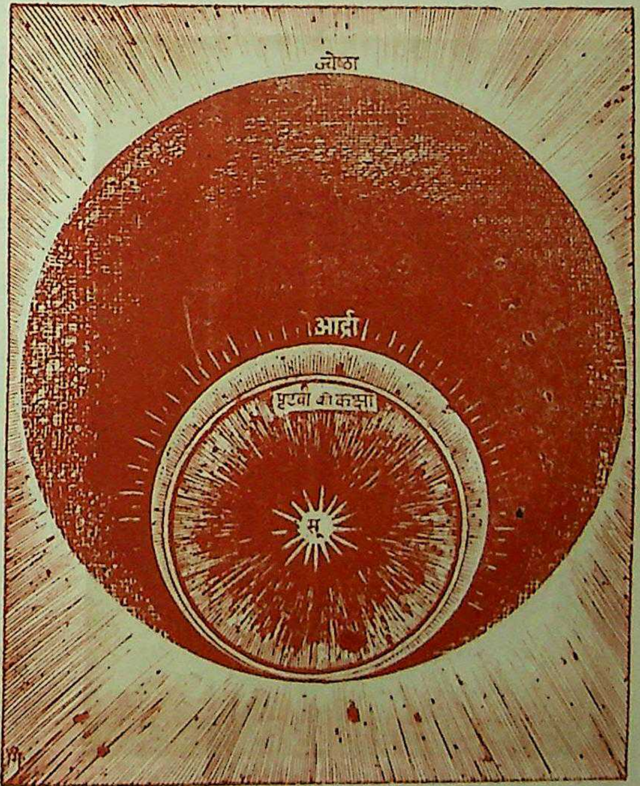

आर्द्रा नामक तारा इतना बड़ा है कि उसकी परिधि में पृथ्वी की कक्षा सहित सारा सूर्य समा सकता है ! उधर ज्येष्ठा तारा उससे भी बड़ा है — उसमें आर्द्रा जैसे कितने ही तारे खप जायेंगे !

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तारों की भी बनावट हमारे सूर्य की-सी ही होगी। उनमें भी पहले एक पारदर्शक बाहरी वातावरण होगा और तदुपरान्त होगा भीतरी 'प्रकाशमण्डल', जो अपारदर्शी होगा। उनके भी भीतर वह केन्द्रीय भाग होगा, जहाँ का ताप और दबाव दोनों काफी बढ़े-चढ़े होंगे! सूर्य की भाँति ये नक्षत्र भी अपनी महान् शक्ति और गरमी को भयंकर दबाव द्वारा परमाणुओं के निरन्तर टूट-टूटकर सीधे शक्ति में परिणत होते रहने की विधि से ही प्राप्त करते होंगे। वर्णक्रमदर्शी यंत्र से ज्ञात हुआ है कि तारों में भी लगभग वे सबके सब रासायनिक तत्त्व मौजूद हैं, जोकि हमारे सूर्य में मिलते हैं!

तारों का डीलडौल--दैत्य और बौने

इन अरबों-खरबों नक्षत्रों में से कई तो इतने बड़े हैं कि हमारे सूर्य जैसे लाखों पिण्ड उनमें समा सकते हैं और अन्य कई आकार में यद्यपि छोटे हैं, तथापि घनत्व के नाते वे इतने भारी हैं कि उनका तौल सूर्य के तौल के लिहाज से भी हजारों गुना अधिक होगा! उदाहरणार्थ, ज्येष्ठा और आर्द्रा नामक तारों को ही लो! इन दैत्यों में से आर्द्रा तो इतना बड़ा है कि हमारी पृथ्वी की कक्षा के बीच के आकाश सहित समूचा सूर्य उसमें समा सकता है और फिर भी जगह बाकी बची रह सकती है! उधर ज्येष्ठा इससे भी अधिक भीमकाय है। उसमें तो आर्द्रा जैसे कई तारे समा सकते हैं! यह माना जाता है कि लाल रंग के तारे अधिकतर दैत्याकार हैं, जबकि श्वेत और नीले रंग के तारे चमक तथा घनत्व में सबको मात करते हैं! कहते हैं, इन दैत्यों में ज्येष्ठा का व्यास सूर्य से ४५० गुना, 'क शौरी' का ४०० गुना, आर्द्रा का ३०० गुना और 'द तिमि' का ३०० गुना है। इनके विपरीत कुछ श्वेत तारे, जिन्हें उनके घनत्व और कम आकार के कारण 'वामन तारे' या बौने कहा जा सकता है, इतने अधिक ठोस हैं कि उनमें से कुछ का घनत्व पानी से पचास हजार गुना अधिक तक है!

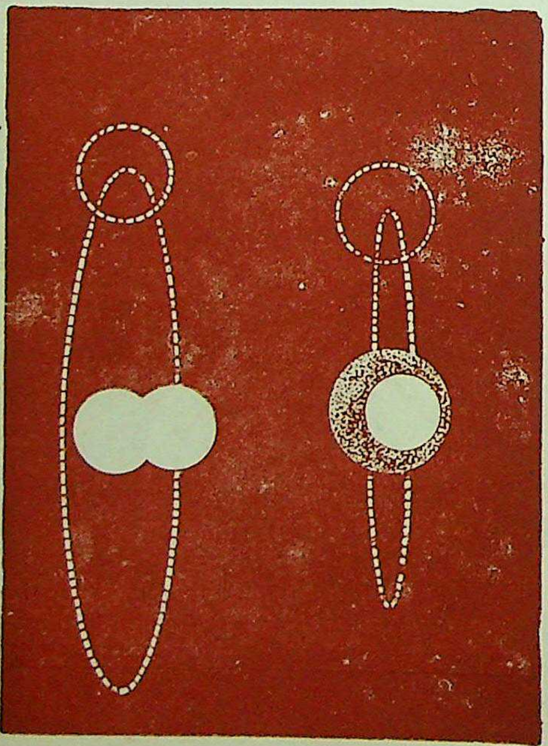

दोहरे तारों में से कई चक्कर लगाते समय एक-दूसरे की आड़ में आ जाते हैं, जिसका पता उनकी चमक की घट-बढ़ से लगता है। बाईं ओर इसी तरह की एक जोड़ी 'ख रथी' और दाहिनी ओर 'प वृषपर्वा' दिग्दर्शित हैं।

दोहरे और बहुरूपिए तारे

तुम्हें यह जानकर आश्चर्य होगा कि बहुतेरे तारे, जोकि कोरी आँखों से हमें एक ही नक्षत्र के रूप में दिखाई पड़ते हैं, दर-असल दो या उससे भी अधिक तारों की जोड़ी हैं! ये दोहरे तारे 'यमज' या 'युग्म तारे' कहलाते हैं और दूरदर्शक द्वारा स्पष्टतः अलग-अलग दिखाई देते हैं। इन तारों की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विचित्रता यह है कि इनमें से एक तारा दूसरे की परिक्रमा करता है। परिक्रमा के क्रम में एक तारा प्रायः दूसरे की आड़ में आकर उसे छेंक भी लेता है, जिससे उस तारे की चमक घटते-बढ़ते जान पड़ती है। इस तरह के बहुतेरे यमज आकाश में पाये जाते हैं और उनके कई भेद ज्योतिषियों ने किए हैं, यथा 'ग्रहणकारी यमज', 'चाक्षुष युग्म', 'भौतिक युग्म', 'वर्णपटीय युग्म' आदि-आदि।

दूसरे कुछ तारे ऐसे भी पाये गये हैं, जो यमज तो नहीं हैं, फिर भी जिनकी चमक अपने आप घटा-बढ़ा करती है! इन्हें परिवर्त्ती या 'सीफिआइड' के नाम से पुकारा जाता है। इन बहुरूपियों की चमक की घट-बढ़, संभवतः, उनके अपने भीतर के फेरबदल के कारण होती होगी। इनकी चमक की इस घट-बढ़ के नाप-तौल से स्वयं इनकी एवं इनके द्वारा कई एक तारापुंजों की दूरी नापने में बड़ी सहायता मिलती है।

नूतन तारे, जो एकाएक भभक उठते हैं !

'सीफिआइड' वर्ग के तारों में सबसे रोचक हैं वे, जोकि देखते-देखते अपनी मंदावस्था से एकाएक भभककर अत्यधिक चमकीले हो उठते हैं और इस प्रकार जहाँ कोई भी तारा नहीं दिखाई पड़ता था, वहाँ मानो एक नये तारे की सृष्टि कर देते हैं! इसीलिए ये 'नूतन तारे' कहलाते हैं! इस तरह भभककर नया जन्म पानेवाले तारों में १९१८ ई० में 'गरुड़' तारा-समूह में तथा १९२५ ई० में 'चित्रकार' तारा-समूह में भभकनेवाले 'नूतन तारे' अति प्रसिद्ध हैं। कहते हैं, पहले तारे की चमक आधे घंटे ही में आधी श्रेणी बढ़ गई थी और चौबीस घंटे के उपरान्त तो वह सौ गुना ज्यादा चमकीला हो उठा था! इसी तरह दूसरा तारा लगभग सवा करोड़ मील प्रति दिन की गति से फूलता हुआ सहसा प्रचण्ड रूप से भभककर अन्त में दो अलग-अलग टुकड़ों में विभक्त होते देखा गया था! ये तारे एकाएक क्यों भभक उठते हैं और भभककर क्यों मन्द पड़ जाते हैं, यह ज्योतिष-विज्ञान की एक पेचीदा गुत्थी है। संभव है कि उनके भीतर के परमाणु अपने भीषण ताप और दबाव के कारण परमाणु-बम की तरह एकाएक विस्फोट करके उन्हें भभका देते हों, अथवा एकाएक कोई दूसरा छोटा पिण्ड आकर उन तारों पर गिर पड़ता हो और इस प्रकार उनमें उथल-पुथल मचा देता हो!

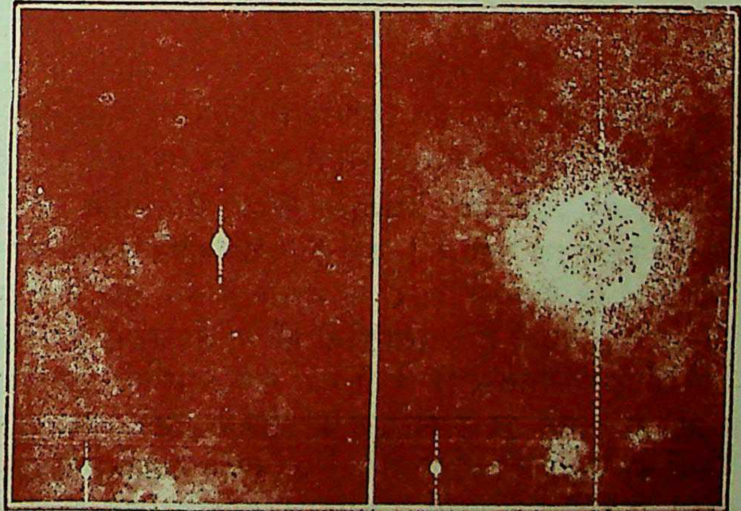

'गरुड़' तारा-समूह के १९१८ ई० के प्रख्यात 'नूतन तारे' के दो दृश्य--(बाईं ओर) ७ जून, १९१८ के दिन; (दाहिनी ओर) उसके चौबीस घंटे बाद।

चूँकि तारे हमें एक ही जगह स्थिर दिखाई देते हैं, इससे यह नहीं समझना चाहिए कि उनकी कोई गति नहीं है। वस्तुतः कई तो भीषण वेग से चल रहे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

'आकाशगंगा' के एक सघन क्षेत्र की झांकी ! चित्र में दिखाई दे रही ज्योतिर्माला दरअसल लाखों नक्षत्रों का समूह है, जो अत्यधिक दूरी के कारण बादल-सा जान पड़ता है !

हैं। कहते हैं कि स्वयं सूर्य भी (जोकि एक तारा ही है) अपने परिवार-सहित २०० मील प्रति सैकंड की गति से अंतरिक्ष में अभिजित तारे की ओर वेगपूर्वक भागा चला जा रहा है !

आकाशगंगा

आसमान में तारे सब कहीं एक जैसे नहीं बिखरे हुए हैं—वे एक मेखलाकार क्षेत्र में अधिक सघन रूप से भरे पड़े हैं और ज्यों-ज्यों उस प्रदेश से हम दूर चलते चले जाते हैं, त्यों-त्यों उनकी संख्या कम होती चली जाती है। यह मेखलाकार मार्ग 'आकाशगंगा' के नाम से पुकारा जाता है। इससे अधिक कवित्वपूर्ण नाम शायद ही किसी ज्योतिष्पुंज का हो! अंग्रेजी में भी इसे बड़ा ही सुन्दर नाम प्राप्त है—'मिल्की वे', अर्थात् दूधिया मार्ग ! ये मनमोहक नाम इसे इसीलिए दिये गए हैं कि किसी भी स्वच्छ अँधेरी रात्रि में चमचमाते हुए नक्षत्रों के बीच, यह ज्योतिर्मयी मेघमाला क्षितिज के इस छोर से उस छोर तक इस प्रकार फैली नजर आती है, मानो दूध की नदी बह रही हो !

परन्तु ज्योतिर्मय मेघमाला की-सी जान पड़ने पर भी यह धवल प्रकाश-राशि कोई धुएँ का बादल नहीं है ! वह है कोटि-कोटि नक्षत्रों का एक सघन झुण्ड, जोकि एक ही सीमित क्षेत्र में अरबों तारों के खचाखच भरे होने के कारण कोरी आँखों से ऐसा मिला-जुला जान पड़ता है ! प्रकृतिदेवी की काली चुनरी पर छिड़की हुई चाँदी की महीन बुकनी की-सी इस रजत-राशि के ये कण पास-पास सटे हुए दिखाई पड़ने पर भी वस्तुतः एक-दूसरे से इतने दूर हैं कि एक की रोशनी दूसरे तक पहुँचने में भी, संभवतः, कभी-कभी वर्षों का समय लग जाता होगा ! यह सघन नक्षत्र-राशि आकाश में सर्वत्र एक जैसी सघन नहीं है। बीच-बीच में उसमें कई एक काले-काले धब्बे या लम्बी गलियाँ-सी भी दिखाई पड़ती हैं। इन्हें ज्योतिषी लोग अति सूक्ष्म अपारदर्शी धूलिकणों की लम्बी-चौड़ी नीहारिकाएँ बतलाते हैं। इन काली नीहारिकाओं ने अपनी ओट में कई एक तारों को छिपाये रक्खा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
है। इनमें का एक बड़ा काला धब्बा लम्बाई में १० प्रकाश-वर्ष के लगभग है ! आकाशगंगा का 'हंस' से 'किन्नर' तारा-समूह तक का भाग सबसे अधिक सघन है। इस प्रकाशमान क्षेत्र का सबसे सुन्दर अंश 'धनु' तारा-समूह में है। आकाशगंगा के इन घने भागों को 'तारामेघ' कहते हैं। कई तारामेघ आकाशगंगा से बाहर और दूर हटे हुए भी हैं। इनमें सबसे मशहूर दक्षिणी गोलार्द्ध से देखा जानेवाला 'मैगेलेनिक तारामेघ' नामक ज्योतिष्पुंज है। यह नक्षत्रों का मानो एक स्वतन्त्र महाद्वीप है, जिसमें कोटि-कोटि तारे भरे पड़े हैं !

तारापुंज

पहले यह अनुमान किया जाता था कि हमारा सूर्य आकाशगंगा के तारों के सघन झुण्ड का ही एक सदस्य है और वह शायद उसके ठीक केन्द्र में या उसके काफी समीप स्थित है। परन्तु अब यह माना जाता है कि सूर्य दरअसल एक कंदुकाकार स्वतन्त्र तारापुंज का सदस्य है। इस तारापुंज की आकाशगंगा के केन्द्र से दूरी संभवतः ५० हजार प्रकाश-वर्ष होगी ! ऐसे सौ के लगभग तारापुंज अब तक मालूम हुए हैं। इनमें सबसे निकट का तारापुंज १८,४०० प्रकाश-वर्ष और सबसे दूर का १८५,००० प्रकाश-वर्ष की दूरी पर है। ये स्वतन्त्र कंदुकाकार तारापुंज नभोमण्डल के बड़े अनोखे कौतुक हैं ! वे हैं तो लाखों तारों के विशाल झुण्ड, किन्तु कोरी आँखों से उनमें से कोई एक ही दिखाई देते हैं और सो भी इतने सिमटे हुए कि हजारों प्रकाश-वर्ष लम्बा-चौड़ा उनका झुंड अति मंद प्रकाश का एक बिन्दु-सा ही जान पड़ता है ! हाँ, दूरदर्शक में काफी प्रकाश-दर्शन देने पर उनके ऐसे फोटो उतरते हैं, जैसे कि छत्ते के आसपास उड़ रहीं हजारों मधुमक्खियों का कोई झुंड हो ! इन तारापुंजों में 'सीफिआइड' जाति के कई तारे विद्यमान हैं। उनके प्रकाश की घट-बढ़ से इन तारापुंजों की दूरी का नाप निकालने में बड़ी सहायता मिली है। ऐसा एक अति प्रसिद्ध तारापुंज 'शौरी तारापुंज' है। इसके तारों की संख्या एक लाख से अधिक है ! इन कंदुकाकार तारापुंजों के अतिरिक्त आकाश के कतिपय ऐसे नक्षत्र-समूह भी हैं, जिनमें अधिक से अधिक एक हजार तक ही तारे होंगे और वे भी काफी छितरे हुए। ये 'खुले तारापुंज' कहलाते हैं। इनमें सबसे मशहूर 'कृत्तिका तारापुंज' है। यह कोरी आँखों से एक झुमके जैसा देखा जा सकता है।

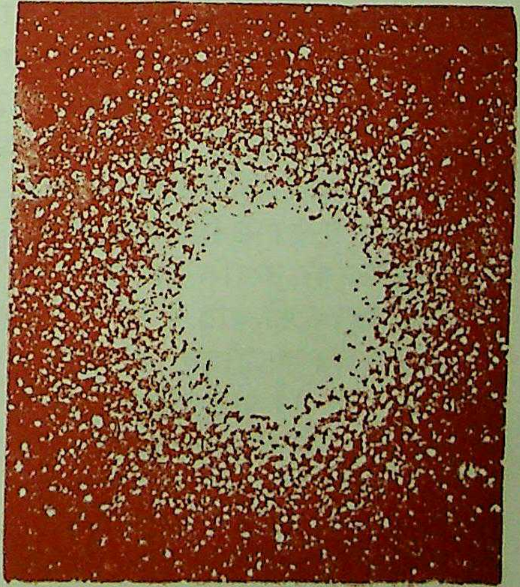
दूरदर्शक द्वारा 'शौरी तारापुंज' की झाँकी !

इन सब तारापुंजों, तारामेघों और आकाशगंगा को मिलाकर जो बाटी की शक्ल की ज्योतिर्मय नक्षत्र-संस्था बनी हुई है, वही हमारी अपनी दुनिया है, जिसे 'मंदाकिनी-संस्था' (अंग्रेजी में 'गेलेक्सी') कहते हैं। इसकी लम्बाई संभवतः ३ लाख प्रकाश-वर्ष, चौड़ाई १ लाख प्रकाश-वर्ष और नक्षत्र-संख्या शायद एक खरब से भी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh
अधिक है ! यह नक्षत्रमाला ब्रह्माण्ड के दूर के भागों से वैसी ही दिखाई पड़ती होगी, जैसी कि पृ० ६ पर दिग्दर्शित चित्र में 'देवयानी' क्षेत्र की महान् नीहारिका दिखाई देती है ।

दस खरब प्रकाश-वर्ष तक की दूरी के रहस्यमय महानक्षत्र--'क्वासार'

पिछले सात-आठ वर्षों में, गगनमंडल की गहराई में पैठकर, वैज्ञानिकों ने लगभग दस खरब प्रकाश-वर्ष की दूरी तक के ऐसे कुछ अद्भुत अनोखे ज्योतिष्पुंजों का पता लगाया है, जिनकी असाधारण विशेषताओं ने ज्योतिर्विज्ञान के क्षेत्र में भारी तहलका मचा दिया है ! इन अनोखे ज्योतिष्पुंजों को 'क्वासार' का नाम दिया गया है । वे तारे जैसे जान पड़ते हैं, परन्तु आकार में वे इतने बड़े हैं कि उन्हें 'महानक्षत्र' ही कहा जा सकता है । इन ज्योतिष्पुंजों की सभी बातें चकरानेवाली हैं ! दूरी के लिहाज से वे हैं मानो इस विश्व-ब्रह्माण्ड के सीमान्त की अंतिम चौकियाँ ! ये दो-तीन खरब प्रकाश-वर्ष से लेकर ठेठ नौ-दस खरब प्रकाश-वर्ष की दूरी पर विद्यमान हैं ! इससे अधिक दूरी तक अभी ज्योतिषी-गण अपनी गगनभेदी दृष्टि को पैठाने में समर्थ नहीं हुए हैं । परन्तु सबसे अधिक चकरानेवाली बात तो है इन महानक्षत्रों की असाधारण चमक ! उसकी प्रखरता एक खरब सूर्यों की चमक से भी दस हजार गुनी अधिक आँकी गई है ! अपनी इस अद्भुत असाधारण चमक के कारण ही खरबों प्रकाश-वर्ष की दूरी से ये ज्योतियाँ १५ सेंटीमीटर व्यास के शीशेवाले साधारण दूरदर्शक तक की पकड़ में आ जाती हैं ! इन महाकाय ज्योतिष्पिंडों से प्रकाश के अलावा अति शक्तिशाली रेडियो-तरंगों का भी विकिरण होता है । इसका पता रेडियो-दूरदर्शकों से लगा है ।

'क्वासार' क्या हैं, यह अभी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता । संभव है, वे नक्षत्रों की सृष्टि की विकास-श्रेणी की आरंभिक मंजिल के प्रतिनिधि हों । उनका द्रव्यमान तो किसी भी नक्षत्र-संस्था (गैलेक्सी) के कुल द्रव्यमान का संभवतः शतांश या अधिक से अधिक तृतीयांश मात्र होगा, परन्तु उनसे जो ऊर्जा प्रकाश के रूप में विकिरित होती है, उसका परिमाण एक संपूर्ण नक्षत्रमाला द्वारा विकिरित ऊर्जा से सौ गुना अधिक तक पाया गया है ! भला, इन महानक्षत्रों के अंतराल में कौन-सी ऐसी असाधारण प्रलयंकर भट्ठी धधक रही होगी, जो इतनी अतुलनीय ऊर्जा का उत्पादन करने में समर्थ है ! वैज्ञानिकों का अनुमान है कि प्रत्येक क्वासार का द्रव्य प्रचंड दबाव में असाधारण रूप से सिमटा हुआ होगा । उसमें कोटि-कोटि नवनक्षत्रों के जन्म के लिए मूल द्रव्य होगा, जो अपनी आदिम अवस्था में बीज-रूप में विद्यमान होगा ! जो भी हो, इन विचित्र ज्योतिष्पिण्डों के अंतराल में सृष्टि की उत्पत्ति-विषयक गाथा के अनेक अज्ञात पृष्ठ छिपे हुए हैं ! क्या यह कोई कम महत्त्व की बात है कि जब हम दस खरब प्रकाश-वर्ष की दूरी से आनेवाली ऐसे किसी महानक्षत्र की रोशनी को अपने चर्मचक्षुओं से ग्रहण करते हैं, तो काल के प्रवाह में मानो उतने ही वर्ष पीछे लौटकर सृष्टि के उन दिनों के चित्रपट की एक झलक पा लेते हैं, जब कि यह पृथ्वी तो क्या संभवतः सूर्य भी नहीं उपजा होगा !

इन महानक्षत्रों की गति भी असाधारण है। इनमें जो सब से दूर है, वह २४०,००० किलोमीटर प्रति सैकंड के भीषण वेग से हमसे निरन्तर दूर भागा चला जा रहा है ! इनकी इस विचित्र गतिविधि से वैज्ञानिकों की इस प्रस्थापना को और भी अधिक बल मिला है कि यह विश्व-ब्रह्माण्ड निरन्तर फैलता जा रहा है !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

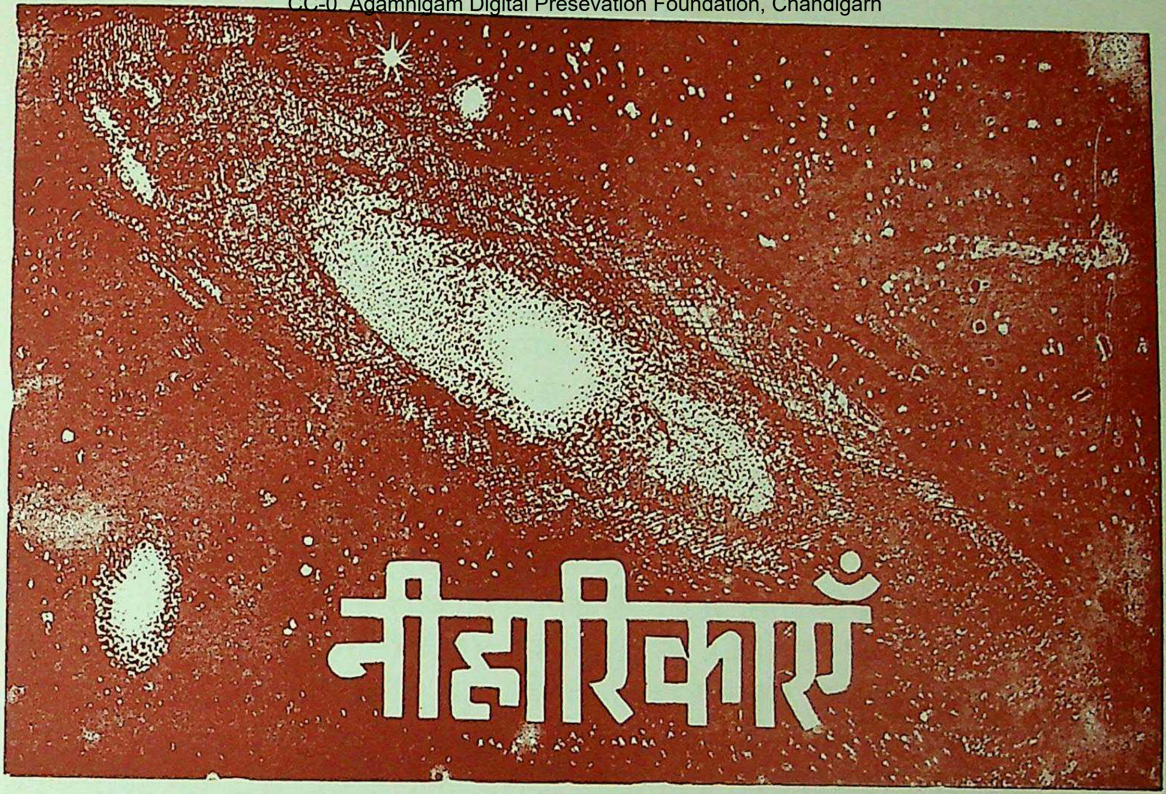

नीहारिकाएँ

तारों, तारापुंजों और तारामेघों के अलावा, गगनमंडल के पसार में लाखों-करोड़ों प्रकाश-वर्षों की दूरी तक, और भी कई अनोखे कौतुक दूरदर्शकों की बदौलत हमें देखने को मिलते हैं। ये रचनाएँ अधिकतर घनीभूत पिण्ड न होकर झीने गैसीय पदार्थ के बादल जैसी हैं। परन्तु कुछ अपनी मेघमालाओं के अंचल में असंख्य तारों को भी बसाए हुए हैं। 'नीहारिका' के नाम से पुकारी जानेवाली इन ज्योतिर्मालाओं को वैज्ञानिक गण सृष्टि-विकास की निसेनी के विविध सोपानों की संज्ञा प्रदान करते हैं। इन्हीं के गैसीय पदार्थ के घनीभूत होने से नक्षत्रों का जन्म होता है, ऐसी उनकी मान्यता है। इन रचनाओं के अजीब-अजीब रूप देखने को मिलते हैं। कुछ तो बादलों की-सी बिल्कुल अनियमित आकार की हैं। अन्य सर्पिलाकार, बाटी की शक्ल की, कंदुक (गेंद) जैसी तथा परवल की आकृति की-सी नियमित शक्ल-सूरत की भी दिखाई देती हैं। अधिकतर नीहारिकाएँ 'मंदाकिनी' नामक हमारी इस दुनिया की बाटी की परिधि से बाहर हैं, परन्तु कई इसके भीतर भी पाई जाती हैं। मंदाकिनी से परे की उन नीहारिकाओं को, जो अरबों-खरबों नक्षत्रों से खचित हैं, हम एक प्रकार के 'विश्व-द्वीप' या 'इतर ब्रह्माण्ड' की संज्ञा प्रदान कर सकते हैं! हमारी मंदाकिनी स्वयं इसी प्रकार का एक विश्व-द्वीप है, जो दूर से इन्हीं जैसी नक्षत्र-मालिका के रूप में दिखाई देता होगा!

अनियमित आकार की नीहारिकाएँ

अनियमिन आकार की नीहारिकाएँ अधिकतर मंदाकिनी की परिधि के भीतर ही पाई गई हैं। उनमें से कुछ तो, मंद प्रकाश-बिन्दुओं के रूप में, कोरी आँखों से भी देखी जा सकती

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हैं। उनकी धुआँनुमा आकृतियाँ केवल दूरदर्शकों द्वारा वेध करने पर ही प्रकट हो पाती हैं। कई तो मकड़ी के जाले की तरह इतनी महीन और छितरी हुई-सी हैं कि दूरदर्शक-कैमरा की फोटो-प्लेट पर देर तक प्रकाश-दर्शन के उपरान्त ही उनका पता लग पाता है। मंदाकिनी की परिधि के भीतर की इन अनियमित नीहारिकाओं के उदाहरण के तौर पर 'कृत्तिका तारापुंज' के क्षेत्र की उन कोहरेनुमा रचनाओं को हम ले सकते हैं, जो की उक्त तारापुंज के नक्षत्रों से प्रकाशित होने के कारण काफी चमकीली हो उठी हैं। अन्य एक उत्तम नमूना 'मृग तारा-समूह' के क्षेत्र की 'महान् नीहारिका' है, जिसकी झाँकी दूरदर्शकों में देखते ही बनती है! जान पड़ता है, मानो धूप में चमकता हुआ अनियमित आकार का कोई बहुत बड़ा कुंज मेघ आसमान में उमड़ आया है! इस नीहारिका का विस्तार इतना अधिक है कि प्रकाश-किरणों को उसके एक से दूसरे छोर तक पहुँचने में कितने ही वर्षों का समय लग जाता होगा! इसी पृष्ठ पर इस नीहारिका का चित्र दिग्दर्शित है। इससे उसकी भव्य झाँकी का कुछ अनुमान हो सकता है।

मंदाकिनी के भीतर पाई जानेवाली अनियमित नीहारिकाओं में सबसे दिलचस्प तो हैं 'काली नीहारिका' के नाम से पुकारी जानेवाली वे रहस्यपूर्ण अंधकारग्रस्त रचनाएँ, जिनका पता हमें यों लगता है कि उनमें से कई की कोर अपनी आड़ में की ज्योतियों की रोशनी से बादलों की तरह चमक उठती है! पृ० १०७ पर 'मृग तारा-समूह' के क्षेत्र की इस प्रकार की एक प्रसिद्ध नीहारिका की छबि दिग्दर्शित है। इस नीहारिका की घोड़े के सिर जैसी अनोखी आकृति पर ध्यान दो! इस शक्ल के कारण ही इसका नाम 'घोड़े के सिरवाली काली नीहारिका' पड़ गया है। ये नीहारिकाएँ 'काली' क्यों हैं, इसका रहस्य कोई नहीं जानता!

'मृग' तारा-समूह के क्षेत्र की 'महान् नीहारिका', जो मंदाकिनी की सीमाओं के भीतर पाई जानेवाली अनियमित आकार की बादलनुमा नीहारिकाओं का एक उत्कृष्ट नमूना है। यह इतनी विशाल है कि इसके एक से दूसरे छोर तक प्रकाश-किरणों को पहुँचने में कई वर्षों का समय लग जाता होगा!

नियमित आकृतिवाली नीहारिकाएँ

जो नीहारिकाएँ विविध नियमित आ-कृतियों में गँठी हुई देख पड़ती हैं, वे अधिकतर मंदाकिनी की सीमाओं से परे के क्षेत्र में ही पसरी हुई हैं। परन्तु गेंद की-सी शक्ल की इस प्रकार की कतिपय रच-नाएँ मंदाकिनी की बाटी के भीतर भी देखने को मिलती हैं। इन कंदुका-कार मेघमालाओं के केन्द्र में सदैव एक मंद तारा विद्यमान मिलता है। इससे अनुमान होता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है कि ये नीहारिकाएँ शायद सौर परिवार जैसे ग्रह-समूहों के निर्माण की उस पूर्वावस्था की तस्वीर प्रस्तुत करती हैं, जिसका कि सृष्टि-क्रम मंदाकिनी के प्रांगण में अन्यत्र भी चल रहा होगा। ऐसी लगभग सौ कंदुकाकार नीहारिकाएँ अभी तक देखी गई हैं।

मंदाकिनी की सीमाओं को लाँघकर जब हम परे के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं, तो नियमित आकृतिवाली भाँति-भाँति की नीहारिकाओं की एक बृहत् चित्र-प्रदर्शनी-सी हमें वहाँ लगी मिलती है! इनमें से कई, अरबों-खरबों नक्षत्रों से खचित होने के कारण, हमारी मंदाकिनी से होड़ बदनेवाले स्वतंत्र विश्व-द्वीपों जैसी हैं। इन नीहारिकाओं की लम्बाई-चौड़ाई, दूरी तथा संख्या के आँकड़े हमें आश्चर्यचकित कर देते हैं! माउण्ट पालोमर के महान् दूरदर्शक की गगनभेदी दृष्टि द्वारा करोड़ों अरबों प्रकाश-वर्षों से भी अधिक दूरी तक की नीहारिकाओं का पता पाया गया है! ये रचनाएँ अपनी असीम दूरी के कारण दूरदर्शक में यद्यपि अति मंद प्रकाश-बिन्दुओं-सी नजर आती हैं, पर उनका आकार हजारों या लाखों प्रकाश-वर्षों के विस्तार में फैला होगा, इसमें संदेह नहीं। इनकी संख्या भी लाखों-करोड़ों नहीं, बल्कि अरबों-खरबों तक गिनाई जाती है! एक विशेष बात यह है कि जहाँ मंदाकिनी के भीतर की अनियमित नीहारिकाओं का प्रकाश हरा-सा होता है, वहाँ परे की इन नीहारिकाओं की रोशनी नक्षत्रों की-सी एकदम श्वेत होती है।

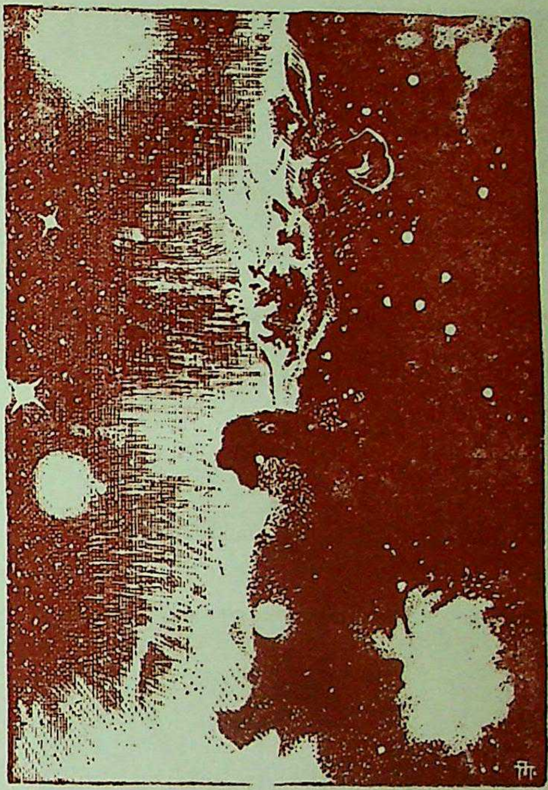

'मृग' तारा-समूह के क्षेत्र की एक 'काली नीहारिका', जो घोड़े के सिर जैसी आकृति के कारण 'घोड़े के सिरवाली काली नीहारिका' कही जाती है।

'एम–३३'—हमारी सबसे निकटवर्ती पड़ोसी नक्षत्र-संस्था

वर्णक्रमदर्शी द्वारा उनके प्रकाश की छानबीन से ज्ञात हुआ है कि नीहारिकाओं में भी वे सभी रासायनिक मूलतत्त्व विद्यमान हैं, जो सूर्य या अन्य नक्षत्रों पर मिलते हैं। ये विशाल संस्थाएँ या तो उस गैसीय पदार्थ की आदिम अवस्था में हैं, जिससे कि आगे चल-कर नक्षत्रों का निर्माण होने को है, या फिर वे विकास की पगडंडी पर आगे बढ़कर कोटि-कोटि नक्षत्रों को जन्म दे चुकी हैं और हमारी मंदाकिनी की भाँति पूर्ण परिपक्व विश्व-द्वीपों या नक्षत्रमालाओं का रूप ग्रहण कर चुकी हैं। 'केलिफोर्निया इंस्टयीट्यूट ऑफ टेकनालाजी' के प्रो० ग्रीनस्टाइन के मतानुसार ऐसी लगभग एक खरब संस्थाएँ विश्व में हैं, जिनमें से प्रत्येक के नक्षत्रों की संख्या एक खरब के आसपास होगी! ये सब मंदाकिनी से अत्यधिक दूर हैं। तुम्हें जानकर हैरानी होगी कि मंदाकिनी से परे की जो नक्षत्रमाला

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हमारे लिए सबसे नजदीक है, वह भी हमसे लगभग ७५०,००० प्रकाश-वर्ष की दूरी पर है! इसका अर्थ यह है कि प्रकाश को इस नीहारिका से पृथ्वी तक पहुँचने में (लगभग तीन लाख किलोमीटर प्रति सैकंड की गति से चलने पर भी) साढ़े सात लाख वर्षों का समय लग जाता है! सर्पिल आकार की यह नीहारिका 'त्रिकोण' नामक तारा-समूह के क्षेत्र में दिखाई पड़ती है। ज्योतिषी इसे 'एम—३३' के नाम से पुकारते हैं। गैसीय द्रव्य के अतिरिक्त इसमें अनेक तारे भी देखने को मिलते हैं। कुंडलाकार घूमती-सी जान पड़नेवाली इस नीहारिका को देखकर, सृष्टि के महान् कुंभकार ब्रह्मा के उस विराट् चाक की धारणा मूर्त बन जाती है, जिसे घुमाकर वह अगणित नक्षत्र-मंडल रूपी अपने कुंभ-पात्र बनाए चले जा रहे हैं! वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इस नीहारिका के तारों में से कई के अपने-अपने ग्रह-परिवार भी होंगे। कोई ताज्जुब नहीं कि यदि उनमें से किसी पर बुद्धिमान प्राणी होंगे, तो वे अपने दूरदर्शक साधकर हमारी इस मंदाकिनी की ओर अपनी दृष्टि केन्द्रित किए रहते होंगे और इसके एक कोने में एक नगण्य मंद तारे के रूप में हमारा सूर्य भी उन्हें टिमटिमाता देख पड़ता होगा!

'देवयानी' क्षेत्र का महान् विश्व-द्वीप

'एम-३३' के बाद, दूरी के लिहाज से, हमारी दूसरी पड़ोसी नक्षत्र-संस्था कोरी आँखों से भी एक मंद प्रकाश-बिन्दु के रूप में देख पड़नेवाली 'देवयानी' तारा-समूह के क्षेत्र की 'महान् नीहारिका' है। दूरदर्शकों में जैसी भव्य झाँकी इस नीहारिका की देख पड़ती है, वैसी सौन्दर्य और प्रभाव के लिहाज से समूचे गगनमंडल में दूसरी देखने को नहीं मिलती! 'एम-३१' के नाम से पहचानी जानेवाली इस नीहारिका की छबि इस पुस्तक के मुखचित्र के रूप में पृ० ६ पर दिग्दर्शित है। कोटि-कोटि नक्षत्रों से खचित यह

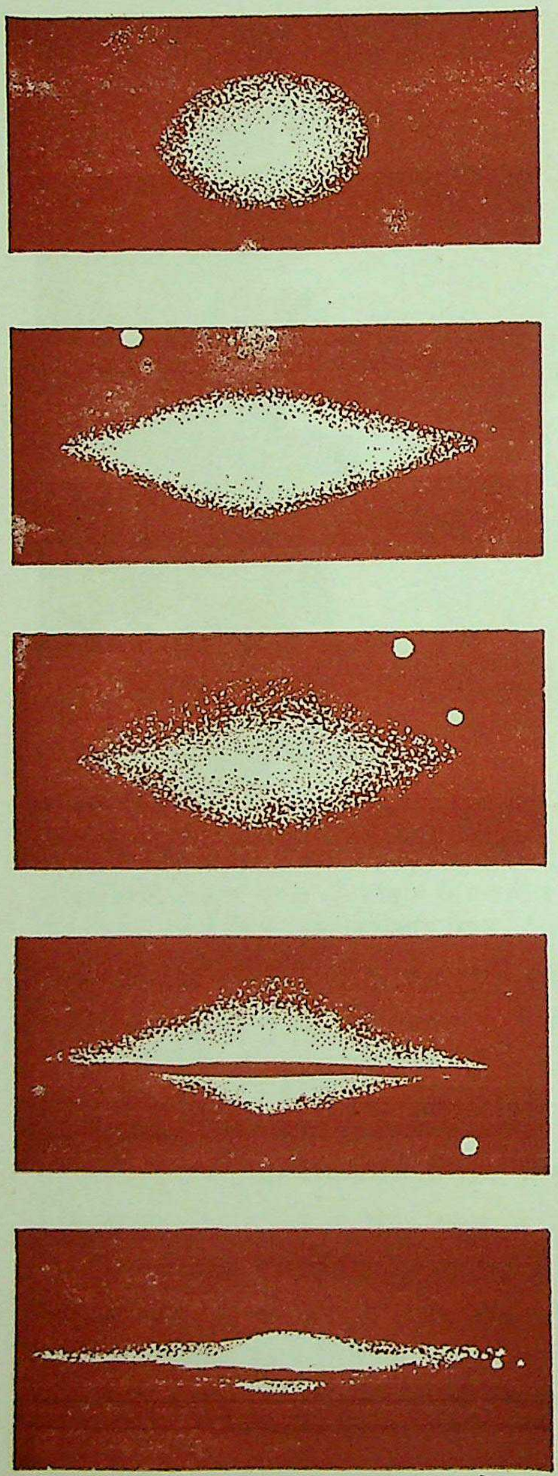

नीहारिकाओं को इस प्रकार क्रमानुसार सजाकर अध्ययन करने पर, हम उनके विकास के सिलसिले का कुछ आभास पा सकते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ज्योतिर्मय संस्था वस्तुतः हमारी मंदाकिनी जैसी एक स्वतंत्र दुनिया है। इसकी दूरी पहले आठ-दस लाख प्रकाश-वर्ष कूती जाती थी, परन्तु नवीन अनुसन्धानों के अनुसार अब अनुमान किया जाता है कि इसकी रोशनी को पृथ्वी तक पहुँचने में लगभग उन्नीस-बीस लाख वर्ष से कम समय नहीं लगता होगा ! इसका निजी विस्तार भी कम से कम एक लाख प्रकाश-वर्ष के दायरे में होगा, ऐसा वैज्ञानिकों का कहना है !

एक सर्पिल नीहारिका :: इसकी कुण्डलाकार भुजाओं में से एक ओर को जो द्रव्य छिटक गया है, उसके सिमटने से अंततः किसी नक्षत्र-मंडल का निर्माण होगा।

नीहारिकाएँ—क्या और क्यों ?

ये अद्भुत ज्योतिर्मालाएँ आखिर हैं क्या ? भला, अपनी चित्र-विचित्र आकृतियों और आश्चर्यजनक गति-विधियों की ओट में सृष्टि की किस रहस्यगाथा को वे छिपाए हुए हैं ? इस संबंध में वैज्ञानिकों ने गहरी छानबीन की है। उन्होंने इन ज्योति-र्मालाओं को उनके सर्पिल, कुंडलाकार, बाटीनुमा, धुएँनुमा आदि-आदि नियमित-अनि-यमित रूप-आकार के अनुसार एक विशिष्ट विकास-श्रेणी में वर्गीकृत करके, बारीकी के साथ इनकी गतियों का वेग नापा है। इनके ताप, द्रव्यमान, ऊर्जा-विकिरण आदि का भी अनुमान किया है। साथ ही उनमें विद्यमान भौतिक-रासायनिक तत्त्वों का भी पता लगाया है। इस कार्य में सबसे अधिक मदद उन्हें वर्णक्रमदर्शी नामक उस अद्भुत यंत्र से मिली है, जो लाखों-करोड़ों प्रकाश-वर्षों की दूरी तक की ज्योतियों से आनेवाली रोशनी का सूक्ष्म विश्लेषण करके उनके बारे में अनेक बातों का पता लगाने में समर्थ है।

इस छानबीन के फलस्वरूप ज्योतिषीगण इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि विविध रूप-आकृति की ये रचनाएँ विश्व की विराट् सृष्टि-गाथा की क्रमिक मंजिलों की तस्वीरें-सी हैं। जिस प्रकार जंगल में किसी वनस्पति की नवांकुरित प्रारंभिक अवस्था से लेकर विशालतम वृक्ष के रूप में उसकी अंतिम परिणति तक की विकास-श्रेणी की विविध मंजिलों के नमूने एक साथ ही देखने को मिल सकते हैं, उसी तरह विभिन्न आकार-प्रकार की ये नीहारिकाएँ हमें अरबों-खरबों वर्षों के अंचल में पसरी हुई सृष्टि की कहानी को एक चित्रपट की भाँति एक साथ ही देखने का सुयोग प्रदान करती हैं। पृ० १०८ का चित्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देखो ! यह क्रमबद्ध चित्रमाला प्रथम दृष्टि ही में हमें जता देती है कि नीहारिकाओं के विकास का एक सुनिश्चित सिलसिला है । इनमें से कुछ, जिनका द्रव्य अभी धुएँनुमा गैसीय अवस्था में है, सृष्टि-प्रक्रिया की एकदम आरंभिक स्थिति की झाँकी दरसाती हैं । दूसरी अपनी सर्पिल भुजाओं की लपेट में यत्र-तत्र नवनिर्मित तारों की उपस्थिति का परिचय देकर उक्त विकास-क्रम के अगले कदम का आभास हमें देती हैं । अंत में कोटि-कोटि नक्षत्रों से खचित 'देवयानी' क्षेत्र की महान् संस्था जैसी रचनाएँ ऐसी स्वतंत्र दुनिया का चित्र हमारे आगे प्रस्तुत करती हैं, जोकि हमारी मंदाकिनी की भाँति इस विकासक्रम की परिपक्वावस्था की मंजिल पर पहुँच चुकी हैं ।

सभी नीहारिकाएँ भीषण वेग से दूर भागती चली जा रही हैं !

नीहारिकाओं से आनेवाले प्रकाश के अध्ययन से एक अद्भुत बात यह मालूम हुई है कि वे सब भीषण वेग से निरन्तर दूर भागती चली जा रही हैं ! सबसे विचित्र बात तो यह है कि जो नीहारिका हमसे जितनी अधिक दूर है, उसकी दूर भागने की गति उतनी ही अधिक है ! उदाहरण के लिए, 'कन्या' तारा-समूह के क्षेत्र की एक नीहारिका की दूरी साठ लाख प्रकाश-वर्ष है और उसकी हमसे दूर भागने का वेग है १,१२० किलोमीटर प्रति सैकंड ! इसी तरह 'खगाश्व' तारा-समूह के क्षेत्र की एक नीहारिका दो करोड़ तीस लाख प्रकाश-वर्ष दूर है और उसकी भागने की गति है लगभग पाँच हजार कि०मी० प्रति सैकंड ! इसी क्रम से 'केश', 'सप्तर्षि', 'सिंह', 'मिथुन', 'भूतेश' एवं 'वासुकि' तारा-समूहों के क्षेत्रों की कतिपय नीहारिकाएँ—जोकि क्रमशः साढ़े चार करोड़, साढ़े आठ करोड़, दस करोड़, साढ़े तेरह करोड़, साढ़े बाईस करोड़ तथा छत्तीस करोड़ प्रकाश-वर्षों की दूरी पर हैं—क्रमानुसार सात हजार, सोलह हजार, बीस हजार, चालीस हजार, एवं साठ हजार किलोमीटर प्रति सैकंड के उत्तरोत्तर बढ़ते जा रहे वेग से दूर भागती हुई पाई गई हैं ! और तो और, स्वयं हमारी 'मंदाकिनी' भी ३२० कि०मी० प्रति सैकंड की गति से अंतरिक्ष में भागती चली जा रही है ! नवीनतम जानकारी के अनुसार सबसे दूर की नीहारिका १०५,००० किलोमीटर प्रति सैकंड की गति से भाग रही है और उसकी दूरी लगभग चार खरब प्रकाश-वर्ष है ! नीहारिकाओं के इस असाधारण वेग से भागते देखकर ही एडिंग्टन ने यह सिद्धान्त प्रस्तुत किया था कि विश्व-ब्रह्माण्ड गुब्बारे की तरह निरंतर फूलता चला जा रहा है !

जब से 'रेडियो-दूरदर्शक' का विकास हुआ है, अरबों प्रकाश-वर्षों की दूरी के ऐसे आकाशीय कौतुकों के अस्तित्व का भी पता वैज्ञानिकों को मिलने लगा है, जो कि लेंस अथवा दर्पणवाले बड़े से बड़े दूरदर्शकों की भी पकड़ में नहीं आ पाते । इनमें कई अदृष्ट नीहारिकाएँ भी हैं, जिनकी रोशनी तो हमें उपलब्ध नहीं होती, फिर भी उनसे विकिरित होनेवाली रेडियो-तरंगों को ग्रहण करके हम उनके बारे में बहुतेरी बातें जानने लगे हैं ! इस प्रकार की अदृष्ट नीहारिकाओं एवं नक्षत्र-संस्थाओं से रेडियो-तरंगों द्वारा जिस प्रचंड मात्रा में ऊर्जा विकिरित होती है, उससे तो यही प्रतीत होता है कि इनके उद्गम-स्रोत एक प्रकार की विराट् 'परमाणु-भट्ठियों' का रूप लिए होंगे ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विश्व-ब्रह्माण्ड

असीम दूरी तक फैले हुए, अगणित ज्योतिर्मय लोकों से खचित 'विराट् विश्व-ब्रह्माण्ड' की कल्पना हम भारतवासियों के लिए कोई नई और अनजान बात नहीं है। यद्यपि हमारे पुरखों के पास आज के वैज्ञानिकों की भाँति अरबों-खरबों प्रकाश-वर्षों की दूरी तक के आसमान की खाक छानने के गगनभेदी यंत्र-उपकरण नहीं थे, फिर भी अपनी दिव्य प्रतिभा द्वारा हजारों वर्ष पहले ही उन्होंने यह जानकारी पा ली थी कि यह दुनिया कोटि-कोटि नक्षत्र-मंडलों और एक-दूसरे से पृथक् स्वतंत्र ज्योतिर्मय लोकों का समवाय है। सबसे अधिक आश्चर्यजनक तो सृष्टि की उत्पत्ति, विकास और प्रलय संबंधी उनकी धारणाएँ थीं, जिनके अनुसार एक विराट् आदि 'स्वर्णाभ अंड' से उपजकर यह विश्व महाप्रलय के समय सिमटकर वापस महाकाश में विलीन हो जाया करता है! यह प्रस्थापना आज की वैज्ञानिक मान्यताओं से इतनी मिलती-जुलती है कि देखकर दंग रह जाना पड़ता है!

विश्व कितनी दूरी तक पसरा हुआ है--वह 'अनन्त' है या 'सान्त'?

अपने आसपास फैले हुए इस सृष्टि-प्रपंच पर विचार करते समय, यह सवाल निरंतर हमारे मन में उठता रहता है कि आखिर इस दुनिया का पसार कहाँ तक है? वह कितनी लंबी-चौड़ी है और उसकी कोई सीमा भी है या नहीं? दूसरे शब्दों में, यह विश्व-ब्रह्माण्ड 'अनंत' है या 'सान्त'? इस प्रश्न का जो उत्तर आज का विज्ञान दे रहा है, उसे सुनकर हम चकित हुए बिना नहीं रह सकते! कारण, जहाँ प्राचीन तत्त्वचिन्तक इस दुनिया को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राय: 'असीम' और 'अनंत' कहकर छुट्टी पा लिया करते थे, वहाँ आधुनिक वैज्ञानिक ताल ठोंककर यही सिद्ध करने पर तुले हुए हैं कि विश्व अपरिमित-अनन्त नहीं है, वह सान्त है ! यहाँ तक कि उसके सुनिश्चित परिमाण की नापजोख के गणित के आँकड़े तक प्रस्तुत किए जा रहे हैं ! इस संबंध में कोई तीस-पैंतीस वर्ष पहले, 'माउण्ट विल्सन वेधशाला' के प्रकाण्ड ज्योतिषी हूबल ने सर्वप्रथम हिसाब लगाकर ब्रह्माण्ड के आयतन का एक आँक निर्धारित किया था ! वह आँक था—६१४,०००,०००,००० × १० खरब × १० खरब × १० खरब × १० खरब घन किलोमीटर ! यह उन दिनों की बात है, जब कि तत्कालीन सबसे बड़े दूरदर्शक (माउण्ट विल्सन के २५४ सेंटीमीटर व्यास के महान् दर्पण-युक्त यंत्र) की दृष्टि-क्षमता के आधार पर समूचे विश्व-गोलक का व्यास लगभग डेढ़ अरब प्रकाश-वर्ष कूता जाता था। तब से माउण्ट पालोमर के महान् ५०८ सेंटीमीटर व्यास के यंत्रराज तथा रेडियो-दूरदर्शकों जैसे अधिक सशक्त गगनभेदी यंत्रों के विकास के फलस्वरूप १० खरब प्रकाश-वर्षों की दूरी तक के आसमान की खाक छानने में ज्योतिषी गण सफल हुए हैं। अत: उपर्युक्त आँकड़ों की राशि में पहले से कई गुना अधिक वृद्धि हो गई है ! यही नहीं, इसी बीच वैज्ञानिकों का एक पक्ष जोरों के साथ यह मत भी प्रतिपादित करने लगा है कि विश्व-ब्रह्माण्ड गुब्बारे की तरह निरन्तर फूलता चला जा रहा है, जिसका अर्थ यह है कि उसका आयतन अनवरत बढ़ता ही चला जा रहा है ! फिर भी विज्ञान के पंडित विश्व को 'अनन्त' नहीं मानते—कम से कम पुराने अर्थ में उसकी अपरिमितता को स्वीकार करने को तो उनमें से आज कोई भी तैयार नहीं !

निश्चय ही दुनिया को 'सान्त' और 'सीमित' मानने की यह बात आसानी से हमारे गले नहीं उतर पाती ! कारण, ऐसा मान लेने पर सहज ही यह प्रश्न उठने लगता है कि जहाँ इस सीमित दुनिया की हद समाप्त होती होगी, भला उससे परे क्या होगा ?

आइन्स्टाइन के सापेक्षता-सिद्धान्त द्वारा प्रस्तुत समाधान

उपर्युक्त प्रश्न का समाधान युग के सबसे बड़े विज्ञानाचार्य आइन्स्टाइन ने अपने युगान्तरकारी सिद्धान्त 'सापेक्षतावाद' (रिलेटिविटी) द्वारा किया है। इस सिद्धान्त ने युक्लिड और न्यूटन जैसे प्राचीन गणिताचार्यों की मान्यताओं का रूढ़िगत तख्ता उलटकर, 'दिक्' (स्पेस) और 'काल' के संबंध में ऐसी नवीन प्रस्थापनाएँ प्रस्तुत कर दी हैं, जिनसे कि विज्ञान की दिशा ही पलट गई है और विचार के क्षेत्र में भारी क्रान्ति आ गई है ! यह सिद्धान्त इतना पेचीदा और जटिल है कि बड़े-बड़े दिमाग भी उसे बड़ी कठिनाई से समझ पाते हैं। साथ ही यहाँ इतना स्थान भी नहीं कि उसकी व्याख्या की जा सके। थोड़े में, यह जान लेना ही पर्याप्त होगा कि इस सिद्धान्त की अकाट्य युक्तियों के आगे पूर्ववर्ती गणितज्ञों की 'लम्बाई-चौड़ाई-गहराई' की 'तीन आयाम' वाली टकसाली माप-प्रणाली एकबारगी ही ढह पड़ी है। उसके स्थान में अब विज्ञान को 'दिक्' तथा 'काल' को अन्योन्याश्रित भाव से एक-दूसरे के साथ गुँथा हुआ मानकर एक नया पैमाना स्वीकार करना पड़ा है, जिसमें 'लम्बाई-चौड़ाई-गहराई' के साथ-साथ 'काल' नामक 'चतुर्थ आयाम' की भी सत्ता अनिवार्य रूप से अंगीकार करना आवश्यक माना गया है !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आइन्स्टाइन के इस युगान्तरकारी सिद्धान्त द्वारा अकाट्य रूप से यह प्रमाणित कर दिए जाने पर कि 'दिक्' (स्पेस) और 'काल' की भाँति 'द्रव्यमान', 'गति', 'वेग', आदि की भी कोई निरपेक्ष स्वतंत्र सत्ता नहीं—ये सब सापेक्ष अर्थात् अन्य पर निर्भर हैं—–विश्व की रचना एवं गतिविधि संबंधी पूर्ववर्ती प्रस्थापनाएँ जड़ से हिल गई हैं। इससे पहले युक्लिड की 'ज्यामिति' तथा न्यूटन द्वारा प्रतिपादित 'यांत्रिकी' के नियमों के अधीन यह निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जाता रहा कि प्रकाश की किरण यदि किसी एक दिशा में चल देती है, तो वह अनंत दूरी तक उसी दिशा में सीधे चलती चली जायगी! सापेक्षता सिद्धान्त ने प्रमाणित कर दिया कि ऐसा नहीं होता! इसी प्रकार पहले आम तौर पर यही माना जाता रहा कि किसी भी वस्तु की लंबाई-चौड़ाई अथवा द्रव्यमान का जो माप एक विशेष स्थल पर होगा, वह विश्व के अन्य किसी भाग में भी उसमें हूबहू वैसा ही पाया जायगा। पर सापेक्षतावाद ने इस मान्यता की भी धज्जियाँ उड़ा दीं और सिद्ध कर दिया कि ऐसा होना आवश्यक नहीं है! न केवल 'दिक्' (स्पेस) के संबंध, में अपितु 'काल' के बारे में भी हमारे मन में अब तक छाई हुई अनेकानेक भ्रान्तियों का पर्दाफाश इस सिद्धान्त ने कर दिया है। उदाहरणार्थ, वह यह नहीं मानता कि पृथ्वी पर यदि दो घटनाएँ एक ही क्षण पर होती हैं, तो विश्व के हर प्रेक्षक के लिए वे दोनों घटनाएँ समक्षणिक ही रहेंगी!

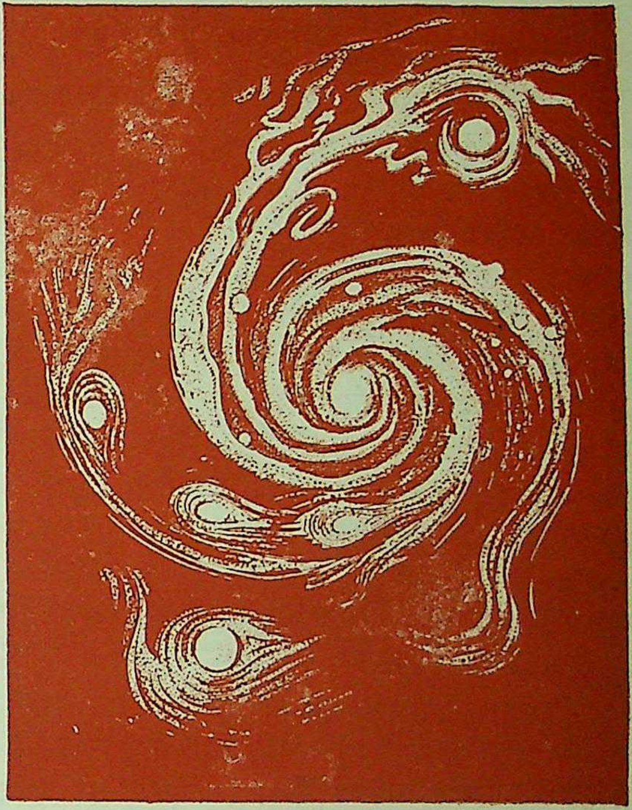

नक्षत्रों की उत्पत्ति के विषय में लाप्लास का 'नीहारिका-सिद्धान्त' ऐसा ही कुछ था। कहते हैं, इसी प्रकार कुण्डलाकार घूमती हुई आदि सर्पिल नीहारिकाओं के द्रव्य के घनीभूत होने से तारों की सृष्टि हुई होगी और ग्रह भी ऐसे ही जनमे होंगे।

सीमारहित होकर भी अपरिमित नहीं

इन नूतन प्रस्थापनाओं के फलस्वरूप 'विश्व-ब्रह्माण्ड' को 'सान्त' मानना वैज्ञानिकों को अधिक सुसंगत जान पड़ा है। जब आइन्स्टाइन का 'चार आयाम' वाला ब्रह्माण्ड सामने आया, तो उसका रूप निरन्तर 'वक्रता' धारण करते हुए एक ऐसे 'गोलक' में परिणत हो गया, जो सीमारहित होकर भी अपरिमित नहीं था! इस प्रकार 'सान्त' और 'अनन्त' दोनों ही पक्षों का समाधान हो गया! परन्तु यह केवल वैज्ञानिकों की ऊहापोह है। सामान्य जनों के लिए तो खरबों प्रकाश-वर्षों के दायरे में फैले हुए उसके विस्तार के नाते तथा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस लिहाज से भी कि वह निरन्तर फूलता चला जा रहा है, व्यावहारिक दृष्टि से यह विश्व-ब्रह्माण्ड अनन्त अपरिमेय ही है !

सृष्टि-विज्ञान—ग्रह-नक्षत्र कैसे जनमे ?

विश्व-ब्रह्माण्ड संबंधी इस ऊहापोह के सिलसिले में स्वाभाविक रूप से जो दूसरा प्रश्न हमारे मन में उठता है, वह यह है कि इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति कैसे हुई और क्योंकर ये तारे या ग्रह-नक्षत्र आदि जनमे ? इस संबंध में वैज्ञानिकों ने पिछले दो-ढ़ाई सौ वर्षों में तरह-तरह की अटकलें लगाई हैं । इनमें की प्रारंभिक प्रस्थापनाओं में सबसे प्रख्यात फ्रेंच गणितज्ञ लाप्लास का सिद्धान्त है, जिसे बाद के लोगों ने 'नीहारिका-सिद्धान्त' के नाम से पुकारना शुरू किया । यह सिद्धान्त इस महान् गणितज्ञ ने वस्तुतः सूर्य और सौर ग्रह-परिवार की उत्पत्ति की पहेली सुलझाने के प्रयत्न में प्रतिपादित किया था । उसने ग्रहों को सूर्य के आसपास एक ही दिशा में भ्रमण करते देखकर यह अनुमान लगाया था कि सूर्य सहित वे सब एक ऐसी आदिकालीन गैस से उपजे हैं, जो कभी आसमान में फैलकर कुंडलाकार घूम रही थी । समय बीतते उसका वेग तीव्र हो गया और उसके कई अंश घनीभूत होकर अलग-अलग टुकड़ियों में छिटक गए । ये सब टुकड़े ठोस होकर 'ग्रह' बन गए और सूर्य रूपी केन्द्रीय महापिण्ड का चक्कर काटने लगे । लाप्लास का यह सिद्धान्त ग्रह-नक्षत्रों की उपज की आधुनिक प्रस्थापना से बुनियादी तौर पर बहुत-कुछ मिलता है।

लाप्लास के बाद ग्रह-नक्षत्रों की उत्पत्ति की समस्या पर जिन वैज्ञानिकों ने विशेष रूप से अपने-अपने सिद्धान्त प्रस्तुत किए, उनमें जेम्स जीन्स, जेफरीज, चेम्बरलेन, मूलटन, वाइजेकर, रसेल, लेमैत्रे, श्मिद्, कुइपर, यूरे, हॉयल, बोन्दी, गोल्ड आदि के नाम सबसे अधिक उल्लेखनीय हैं । ग्रहों की उपज के सबंध में जीन्स ने एक नवीन प्रस्थापना प्रस्तुत की थी । वह यह थी कि वे सूर्य के समीप होकर किसी अन्य तारे के गुजरने से, गुरुत्वाकर्षण द्वारा सूर्यपृष्ठ से खिंचकर छिटक जानेवाले द्रव्य से निर्मित हुए हैं ! परन्तु कई दिनों तक मान्य रहने पर भी, यह प्रस्थापना अब असंगत करार दी जा चुकी है ।

सृष्टि की उत्पत्ति विषयक प्रमुख आधुनिक प्रस्थापनाएँ

सृष्टि की उत्पत्ति के मूल प्रश्न को लेकर, विज्ञान-जगत् में इस समय दो मुख्य प्रस्थापनाएँ एक-दूसरे को चुनौती देते हुए आमने-सामने अड़ी हुई हैं । इनसे से एक को 'बिग-बैंग' (या महाविस्फोट) सिद्धान्त कहकर पुकारा जाता है । इस प्रस्थापना के अनुसार विश्व का समस्त मूल द्रव्य किसी समय एक ही असाधारणतया घनीभूत आदिपिंड के रूप में सिमटा हुआ था । तब एक महाप्रलयंकर विस्फोट हुआ, जिसमें इस आदि द्रव्य-पिंड के टुकड़े-टुकड़े होकर आसमान में प्रचंड वेग से दूर-दूर तक छिटक गए ! ये विलग हुए अंश अभी भी असामान्य वेग से चारों ओर लगातार दूर भागते चले जा रहे हैं !

दूसरी प्रस्थापना 'स्टेडी स्टेट' (अर्थात् स्थिर अवस्था) सिद्धान्त के नाम से अभिहित की जाती है । इसके अनुसार ब्रह्माण्ड के अवकाश में 'ऊर्जा' (एनर्जी) का जो प्रसार है, उससे लगातार नया द्रव्य निर्मित होता रहता है ! उधर द्रव्य के विघटन से प्राप्त ऊर्जा उक्त भंडार की पुनः पूर्ति करती रहती है । इस प्रकार निर्माण और क्षय की इस क्रिया-प्रक्रिया द्वारा अनादि काल से सृष्टि का संतुलन स्थिर बना हुआ है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृथ्वी से परे
अन्य लोकों की यात्रा

पृथ्वी से परे, अंतरिक्ष के उस पार भी कोई दुनिया है, यह आस्था मनुष्य के मन में न जाने कब से घर किए हुए है। इसी आस्था को लेकर उसने धर्म के क्षेत्र में 'स्वर्ग', 'वैकुण्ठ', 'ध्रुवलोक', 'बिहिश्त', 'पैरडाइज' आदि के सपने बुने। इसी की बलवती उत्कंठा ने उसे सदियों से आसमान की ओर अपने यंत्र-उपकरण साधे रहने को प्रेरित किया और अंत में एक दिन सशरीर उसे अंतरिक्ष में पहुँचा दिया!

पहला कदम––'कृत्रिम भूउपग्रह'

इसमें संदेह नहीं कि ४ अक्टोबर, १९५७ ई०, का दिन पृथ्वी से परे के लोकों की ओर मनुष्य के अभियान के इतिहास में सदैव एक गौरवपूर्ण दिवस के रूप में याद किया जाता रहेगा। कारण, इसी दिन सोवियत रूस द्वारा सफलतापूर्वक पहला 'भूउपग्रह' ('स्पुतनिक प्रथम') अंतरिक्ष में पहुँचाया गया था। तब से क्या रूस और क्या अमेरिका, दोनों ने एक के बाद एक इतने कृत्रिम उपग्रह और रॉकेट-यान उड़ाए हैं कि आज यदि रात के समय एकाएक हमें आसमान में बहुत ऊँचाई पर तारे जैसा चमचमाता हुआ कोई भूउपग्रह तेजी से जाते हुए दिखाई दे जाता है, तो इसमें किसी को भी अचंभा नहीं होता! 'स्पुतनिक प्रथम' का तौल कुल ८३.६ किलोग्राम था और पूरे तीन महीने तक वह पृथ्वी का चक्कर काटता रहा। उसके बाद जो दूसरा भूउपग्रह रूस द्वारा छोड़ा गया था, उसका वजन (रॉकेट-सहित) लगभग ३॥ टन था! सबसे मार्के की बात तो यह थी कि इस द्वितीय स्पुतनिक में अनेक यंत्रों के साथ 'लाइका' नामक एक कुतिया भी ऊपर भेजी गई थी! इस कुतिया ने उक्त भूउपग्रह में जीवित दशा में कितने ही दिन अंतरिक्ष में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh
पृथ्वी का चक्कर लगाते हुए व्यतीत किए और उसके शरीर की हलचलों तथा बर्ताव आदि का वैज्ञानिक विवरण यंत्रों द्वारा पृथ्वी पर बराबर प्राप्त होता रहा । इस प्रयोग से इस संबंध में अति मूल्यवान् जानकारी वैज्ञानिकों को मिल सकी कि पृथ्वी से सैकड़ों किलोमीटर की ऊँचाई पर तीव्र वेग के साथ अंतरिक्ष में यात्रा कर रहे प्राणी की क्या हालत होगी ! लाइका आखिर उक्त भूउपग्रह ही में मर गई––कारण उसे पृथ्वी पर वापस जीवित ले आना उन दिनों संभव नहीं था––परन्तु अपने बलिदान द्वारा निकट भविष्य में मनुष्य के अंतरिक्ष में सशरीर पहुँचने का मार्ग वह खोल गई ! 'द्वितीय स्पुतनिक' लगभग ५।। महीने तक पृथ्वी के चक्कर काटता रहा था, तब वह जलकर नष्ट हुआ था ।

सोवियत रूस के साथ-साथ उधर संयुक्त राज्य, अमेरिका, भी इन्हीं दिनों जी-जान से अंतरिक्ष में पैर जमाने की कोशिशों में जुटा हुआ था । यद्यपि आरंभ में वह इस दौड़ में रूस से पिछड़ा रहा, परन्तु शीघ्र ही उसके भी प्रयत्नों में तेजी आ गई । १९५८-५९ ई० में कई एक भूउपग्रह अमेरिकनों ने अंतरिक्ष में छोड़े। ये 'एक्सप्लोरर', 'डिस्कवरर' आदि नामों से पुकारे गए थे । इनमें 'एक्सप्लोरर तृतीय' ने ठेठ २,७७६ किलोमीटर की ऊँचाई तक पृथ्वी से ऊपर उठकर नवीन कीर्त्तिमान स्थापित किया ! यद्यपि आरंभिक अमेरिकन भूउपग्रह आकार में रूसी स्पुतनिकों से छोटे और कम वजनी थे, परन्तु उनमें जो यंत्र लगे थे, वे अधिक सूक्ष्म थे ।

अंतरिक्ष में मनुष्य के पैर जमे

रूस और अमेरिका द्वारा अंतरिक्ष में भेजे गए इन भूउपग्रहों ने पृथ्वी के वायुमंडल को चीरकर, ऊपरी शून्य क्षेत्र की परिस्थिति के बारे में अत्यन्त मूल्यवान् एवं आवश्यक जानकारी विज्ञान को दी, जिसके बिना परे के लोकों की यात्रा करने की कोई भी योजना कारगर नहीं हो सकती थी । यद्यपि अंतरिक्ष के पार के लोकों के भावी महाअभियान के पथ पर मनुष्य का यह आरंभिक कदम था, फिर भी इसका महत्व इस क्षेत्र की आगे आनेवाली सिद्धियों के लिए कम कदापि नहीं था। इसके पीछे वैज्ञानिकों की गणित, भौतिक विज्ञान, रसायन, ज्योतिष आदि सभी विद्याओं की उपलब्धियों का गहरा और चमत्कारपूर्ण हाथ था । यह थी मनुष्य की बुद्धि, लगन, सर्जनशक्ति और साहसिकता की अनुपम अद्भुत सफलता ! इस पहले कदम ने ही निश्चित

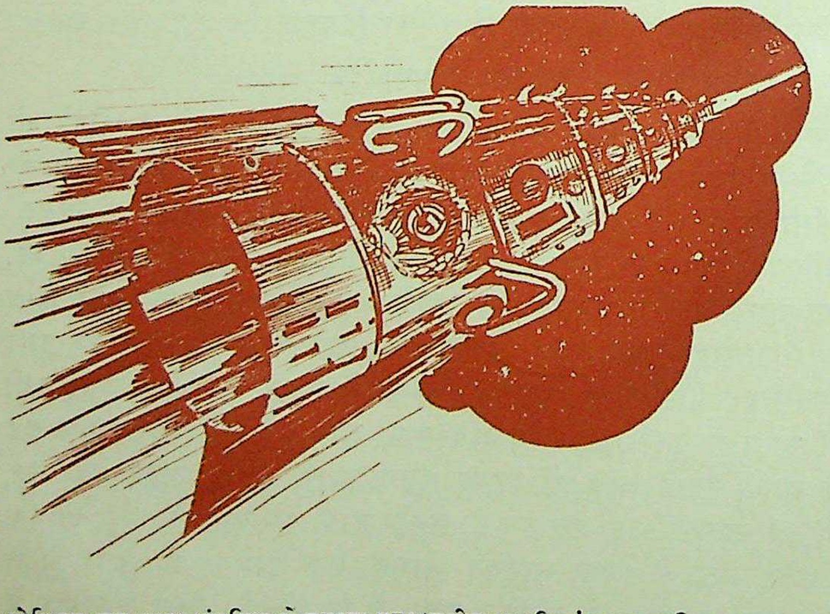

सोवियत रूस द्वारा अंतरिक्ष में उड़ाया गया 'तृतीय स्पुतनिक' नामक कृत्रिम भूउपग्रह।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रूप से अंतरिक्ष में मनुष्य के पैर दृढ़तापूर्वक जमा दिए, जिससे एक नया दौर शुरू हुआ !

अंतरिक्ष में पहुँचकर पृथ्वी-परिक्रमा करनेवाला प्रथम मानव—मेजर गॅगेरिन

चन्द्रमा पर रॉकेट उतरा

अपने १॥ टन वजनी 'तृतीय स्पुतनिक' में रूसियों ने अनेक सूक्ष्म यंत्रों से सुसज्जित मानो एक समूची प्रयोगशाला ही अंतरिक्ष में भेज दी, जो रेडियो-तरंगों द्वारा भाँति-भाँति की वैज्ञानिक जानकारी की सूचनाएँ पृथ्वी पर भेजने लगी। इसके कुछ ही समय बाद सोवियत वैज्ञानिकों ने एक नया प्रयोग किया——उन्होंने एक रॉकेट को पेचिदा यंत्रों से सुसज्जित कर चन्द्रमा की ओर उड़ाया। लगभग १॥ टन वजनी यह अंतरिक्ष-यान चन्द्रमा के लगभग साढ़े पाँच हजार किलोमीटर समीप तक जा पहुँचा ! तब और आगे निकलकर वह पृथ्वी एवं मंगल की कक्षाओं के बीच की पट्टी में एक 'कृत्रिम ग्रह' के रूप में सूर्य की प्रदक्षिणा करने लगा ! इस रॉकेट की गति लगभग एक लाख किलोमीटर प्रति घंटा थी। इस रॉकेट-यान का नाम 'ल्युनिक प्रथम' था। यह जनवरी, १९५९ ई०, में उड़ाया गया था। आठ महीने बाद रूसियों ने 'ल्यूनिक द्वितीय' नामक अन्य एक रॉकेट-यान चन्द्रमा की ओर भेजा ! इस यान में अनेक सूक्ष्मग्राही यंत्र थे। इस बार निशाना अचूक बैठा ! १३ सितंबर, १९५९ ई०, के दिन यह रॉकेट-यान ठीक चाँद पर जा उतरा ! इस प्रकार चन्द्रपृष्ठ आखिरकार छू लिया गया ! यह बात ध्यान में रखने की है कि चन्द्रमा पृथ्वी से लगभग चार लाख किलोमीटर दूर है। फिर चाँद और पृथ्वी दोनों ही आसमान में भ्रमण कर रहे हैं। इन सब बातों का लिहाज करते हुए पृथ्वी से प्रेषित किसी भी वस्तु का चाँद पर ठीक निशाने पर जा उतरना सचमुच कमाल की सिद्धि थी !

इसके बाद तो न केवल सोवियत रूस ने ही बल्कि अमेरिका ने भी चन्द्रमा को लक्ष्य करके कितने ही अंतरिक्ष-यान भेजे। इनमें से सात यान तो निर्धारित निशाने पर सफलतापूर्वक अब तक (अर्थात् जून १९६८ ई० तक) चन्द्रपृष्ठ पर उतर चुके हैं और दस यान चन्द्रमा के आसपास कृत्रिम उपग्रह की भाँति कक्षा में स्थापित किए जा चुके हैं। सोवियत यान 'ल्युनिक' एवं 'ल्यूना' श्रेणी के थे और अमेरिकन यान 'सर्वेयर' श्रृंखला के। इन यानों ने टेलिविजन के यंत्रों द्वारा चन्द्रपृष्ठ के हजारों-लाखों फोटोचित्र पृथ्वी तक भेजे। कुछ ने चन्द्रमा की परिक्रमा लगाकर उसकी पीठ के छिपे हुए भाग के भी फोटो उतारकर दरसाए। इससे यह रहस्योद्घाटन हुआ कि सारा चन्द्रपृष्ठ लगभग एक जैसा ही है। इस प्रकार प्राप्त की गई मूल्यवान् जानकारी से यह आशा दृढ़ हुई कि किसी दिन मनुष्य चन्द्रमा पर सही-सलामत उतर सकेगा।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१९६१ ई० के अप्रैल माह की बारह तारीख। सुबह होते ही संसार भर में रेडियो और समाचारपत्रों की इस सनसनीखेज खबर से न केवल आश्चर्य बल्कि आनन्द की भी एक अपूर्व लहर दौड़ गई कि सैकड़ों किलोमीटर की ऊँचाई पर अंतरिक्ष में एक आदमी अभी-अभी पृथ्वी का एक चक्कर लगा चुका है! इस अद्भुत साहसपूर्ण करतब का सेहरा जिस सौभाग्यशाली उड़ाके के सिर पर बँधा, उसका नाम था मेजर गैगेरिन! इतिहास को एक नया मोड़ देनेवाली इस चमत्कारपूर्ण सिद्धि का गौरव भी, अंतरिक्ष में प्रथम उपगृह भेजने के करतब की भाँति, सोवियत रूस ने ही पाया! जिस यान में बैठकर गैगेरिन ने डेढ़ सौ से तीन सौ किलोमीटर की ऊँचाई पर अपनी यह ऐतिहासिक पृथ्वी-परिक्रमा की थी, उसका नाम था—'वोस्तोक प्रथम'! उसने अपना एक चक्कर लगभग डेढ़ घंटे में पूरा किया था! इतनी ऊँचाई से माता वसुन्धरा की अद्भुत झाँकी पानेवाला वह प्रथम सौभाग्यशाली मानव था। अंतरिक्ष में पहुँचकर कुछ समय तक उसे बिना वजन की-सी स्थिति में भी रहना पड़ा था! फिर भी वह पूर्ण स्वस्थ अवस्था में वापस पृथ्वी पर उतरा।-रॉकेट दागकर उसे सही-सलामत अंतरिक्ष की सुनिश्चित कक्षा में भेजने, उससे निरन्तर संपर्क स्थापित किए रहने और पुनः पृथ्वी पर उसे सुरक्षित उतार लेने की इस अपूर्व सिद्धि ने न केवल सोवियत वैज्ञानिकों की कीर्त्तिकथा में चार चाँद ही लगा दिए, बल्कि अंतरिक्ष में सशरीर प्रवेश करने के लिए सदा के लिए मानव का मार्ग प्रशस्त कर दिया!

इसके चार महीने बाद ही अन्य एक सोवियत उड़ाका मेजर तितोव, पुनः अंतरिक्ष में पहुँचकर, चौबीस घंटे तक पृथ्वी के सत्तह चक्कर लगाने में सफल रहा! तब वर्ष भर बाद निकोलायेव और पापोविच नामक अन्य दो रूसी उड़ाकों ने अलग-अलग यानों में एक साथ तीन-चार दिन अंतरिक्ष में पृथ्वी-परिक्रमा करते हुए बिताए। इसके साल भर बाद तीन दिनों की ऐसी उड़ान के रूप में पुनः एक रूसी चमत्कार सामने आया, जिसमें एक यान में पुरुष और दूसरे में महिला उड़ाका थी! महिला का नाम था वालेन्तिना तेरेश्कोवा! परन्तु सबसे मार्के का सोवियत करतब तो १२ अक्टोबर, १९६४ ई०, के दिन दुनिया को मिला, जबकि कोमारोव, फियाक्यिस्तोव और येगोरोव नामक तीन उड़ाके एक साथ एक ही यान में अंतरिक्ष में पहुँचे! इन सब उड़ाकों की परिक्रमाओं के दौरान जो कीमती अनुभव प्राप्त हुए, उससे आगे आनेवाली अंतरिक्ष-यात्राओं के लिए महत्वपूर्ण पथप्रदर्शन प्राप्त हुआ!

अमेरिकन उपलब्धियाँ

इस बीच अमेरिका भी हाथ पर हाथ धरे नहीं बैठा रहा। सोवियत द्वारा अंतरिक्ष में आदमी भेजने के थोड़े अरसे बाद शक्तिशाली रॉकेटों का विकास करके, उसने भी एक के बाद एक उसी तरह से अपने उड़ाकों को अंतरिक्ष की कक्षाओं में प्रेषित कर नए-नए कीर्त्तिमान स्थापित करना शुरू किया। आरंभ में शेपर्ड, ग्लैन और कार्पेन्टर जैसे अकेले उड़ाकों को ऊपर भेजने में सफलता प्राप्त करने के उपरान्त, अमेरिकन वैज्ञानिकों ने मार्च १९६५ ई० से 'जेमिनी' नामक अंतरिक्ष-यानों में बारी-बारी से दो-दो उड़ाकों की जोड़ी को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक साथ एक ही यान में ऊपर भेजना शुरू किया। इस प्रकार ग्रिसम, यंग, मेक्डिविट, व्हाइट, कूपर, कोनरैड, बोरमेन, लावेल, शिरा, स्टेफर्ड, आर्मस्ट्रांग, स्कॉट, सर्नान, कॉलिन्स, गॉर्डन, एल्ड्रिन आदि अनेक उड़ाके अंतरिक्ष की सैर कर आए। इन उड़ानों में अमेरिका ने अनेक अद्भुत करतब दिखाए। अगस्त १९६५ ई० में ऐसी एक उड़ान आठ दिनों तक जारी रही! अन्य एक उड़ान के दर्मियान १,३६८ किलोमीटर की उँचाई तक ऊपर उठने में सफलता प्राप्त की गई। परन्तु इस शृंखला की उड़ानों की सबसे महान् सिद्धि तो थी दो में से एक उड़ाके का रॉकेट-यान से बाहर निकलकर काफी समय तक अंतरिक्ष के शून्य आसमान में पैरना! निश्चय ही विशेष रूप की यंत्रसज्जित पोशाक पहने उक्त उड़ाका यान के साथ एक लंबी रज्जु से बँधा था, तथापि पृथ्वी से सैकड़ों किलोमीटर की ऊँचाई पर इस प्रकार का करतब असाधारण साहस का प्रतीक था। इसी सिलसिले में आगे चलकर एक और महान् सिद्धि प्राप्त की गई। यह अनोखा काम था अंतरिक्ष में एक के बाद एक दो पृथक् रॉकेट उड़ाकर उन्हें इच्छानुसार क्रमशः एक-दूसरे के समीप ले जाना और अंत में ऊपर आसमान में ही उन्हें एक-दूसरे से जोड़ देना! ये सारे दुष्कर कार्य इसलिए किए गए कि रॉकेटों द्वारा चन्द्रमा, मंगल आदि की भावी यात्राओं की सफलता के लिए

वह दिन दूर नहीं, जब कि रॉकेटों द्वारा अंतरिक्ष को लाँघकर पृथ्वी से पड़ोसी ग्रहों की उसी प्रकार से नितप्रति यात्राएँ की जाने लगेंगी, जैसी कि आज हम वायुयानों द्वारा एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप की किया करते हैं। इन यात्राओं के लिए रॉकेटों के उड़ान-स्टेशनों की झाँकी संभवतः ऐसी ही होगी, जैसी इस चित्र में दरसाई गई है! ऊपर दाहिनी ओर के कोने में यात्रियों को लेकर उड़ता हुआ रॉकेट दिखाया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
इनकी अनिवार्य रूप से आवश्यकता थी। न केवल अमेरिकावालों ने बल्कि रूसी लोगों ने भी इस तरह के कामों में यथेष्ट सिद्धियाँ प्राप्त कर ली हैं और अब दोनों ही जोर-शोर के साथ चन्द्रमा पर आदमी को उतारने के प्रयत्नों में जुटे हुए हैं !

पहले चन्द्रमा, फिर शुक्र और मंगल भी

मनुष्य द्वारा अंतरिक्ष की विजय की इन आरंभिक सफलताओं से अब इस बात में तनिक भी संदेह नहीं रह गया है कि कुछ ही वर्षों में आदमी न केवल चाँद पर जा उतरेगा, बल्कि शायद इस शताब्दी के अंत तक वह मंगल और शुक्र जैसे पड़ोसी ग्रहों पर भी सशरीर जा पहुँचेगा। चन्द्रमा पर आदमी को उतारनेवाले रॉकेट-यानों का तो निर्माण भी हो चुका है, उनकी परीक्षा की जा रही है और इस महान् प्रयोग में भाग लेने वाले अंतरिक्ष-यात्रियों को विधिवत् प्रशिक्षण भी दिया जाने लगा है। उधर सोवियत रूस और अमेरिका दोनों ने शुक्र और मंगल को भी अपने-अपने यंत्रसज्जित रॉकेट भेजना शुरू कर दिए हैं ! अक्टोबर १९६७ ई० में 'मेरिनर-५' नामक एक अमेरिकन रॉकेट शुक्र से लगभग चार हजार किलोमीटर की दूरी पर से होकर गुजरा ! उसी महीने में एक सोवियत यंत्रसज्जित यान तो शुक्र के सघन वायुमण्डल को भेदकर सही-सलामत उस ग्रह की अदृष्ट भूमि पर जा उतरने में भी सफल हो गया ! उधर मंगल को भी निशाना बनाकर रॉकेट भेजे जा चुके हैं। इन रॉकेटों ने इस रहस्यपूर्ण ग्रह के काफी समीप से गुजरकर न केवल उसकी सतह के उत्तम फोटो ही पृथ्वी तक भेजे हैं, अपितु वहाँ की भौतिक परिस्थितियों उके बारे में भी मूल्यवान् जानकारी वैज्ञानिकों को दी है, जो आगे चलकर वहाँ तक मनुष्य को भेजने में बड़ी सहायक होगी।

चन्द्रमा, शुक्र या मंगल की भावी यात्राएँ कैसी होंगी, इसकी तो केवल कल्पना ही इस समय की जा सकती है। इन यात्राओं में चन्द्रमा तक पहुँचने में शायद ६० घंटे और शुक्र या मंगल तक पहुँचने में क्रमशः ५५ और ७२ दिनों का समय लगेगा—जबकि रॉकेटयान ४० हजार किलोमीटर प्रति घंटे की गति से उड़ेगा ! जब रॉकेट पृथ्वी से छूटेगा, तो तीन या चार रॉकेट एवं एक यात्री-यान इस अंतरिक्ष-पोत में जुड़े हुए होंगे। इनमें से एक शक्तिशाली रॉकेट, समूचे यान को पृथ्वी का वायुमंडल भेदकर अंतरिक्ष में पहुँचाने के बाद, जुदा हो जायगा। तब शेष भाग बचे हुए रॉकेट-इंजिनों एवं आकाशीय पिंडों के गुरुत्वाकर्षण की सहायता से लक्ष्य के समीप तक पहुँचेगा। वहाँ मुख्य पोत तो कक्षा में मँडराता रहेगा और यात्री-कक्ष जुदा होकर उलटे चलनेवाले रॉकेट-इंजिनों की मदद से वेग का नियंत्रण करते हुए नीचे धरातल पर उतरेगा।

लौटते समय यात्री-कक्ष के साथ जुड़े हुए रॉकेट-इंजिन पुनः वेग प्राप्त करके उसे ऊपर आसमान में उठाएँगे और वहाँ वह कक्षा में पहुँचकर प्रतीक्षा कर रहे मुख्य अंतरिक्ष-यान के साथ पुनः जुड़ जायगा। अंत में अंतरिक्ष-पोत रॉकेट-शक्ति से वापस पृथ्वी तक आकर कक्षा में प्रविष्ट हो जायगा और उससे जुदा होकर यात्री-कक्ष सही-सलामत पैराशूट एवं रॉकेटों द्वारा धरातल पर उतार लिया जायगा ! इस प्रकार एक नवीन युग का उद्घाटन होगा ! तब लोग नियमित रूप से पड़ोसी लोकों में इस तरह जाने लगेंगे, जैसे कि छुट्टियाँ मनाने हम पहाड़ों पर जाते हैं !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्तरिक्ष-विजय का नया कीर्तिमान ::
मनुष्य चन्द्रमा पर पहुँचा !

[पृथ्वी के निकटतम आकाशीय पड़ौसी—'चन्द्रमा'—तक पहुँचने की ललक मनुष्य को सदियों से उत्कंठित करती रही है। सौभाग्य की बात है कि वह साध अब निरी कल्पना की वस्तु न रहकर ठोस वास्तविकता का बाना पहन चुकी है। कारण, विज्ञान के जादूगर पिछले दिनों मानव को चन्द्रपृष्ठ पर जा खड़ा करने का चमत्कार, एक बार नहीं बल्कि छः बार, उत्तरोत्तर प्रदर्शित कर चुके हैं ! कैसे यह महान् उपलब्धि संपन्न हुई, आइए, देखें !—सं०]

विज्ञान के इतिहास में २१ जुलाई, १९६९ ई०, का दिन सदैव एक महान् सिद्धि-दिवस के रूप में याद किया जाता रहेगा। क्योंकि इसी दिन (ग्रीनविच-समय के अनुसार) बड़े तड़के ३ बजकर ५६ मिनट २० सैकंड पर, मनुष्य ने पृथ्वी से परे के एक आकाशीय पिण्ड पर पहले-पहल अपना कदम रखकर, अन्तरिक्ष पर प्रभुत्व स्थापित करने की दिशा में, इस युग की सबसे मार्के की सिद्धि प्राप्त की थी !

यह महान् उपलब्धि संयुक्त राज्य (अमेरिका) द्वारा नियोजित 'अपोलो–११' चन्द्र-अभियान के दौरान संपन्न हुई, जबकि (अमरीकी समय-मान के अनुसार) १६ जुलाई, १९६९ ई०, की प्रभातवेला में 'कैप कैनेडी' अन्तरिक्ष-उड़ानकेन्द्र से शक्तिशाली 'सैटर्न–५' रॉकेट की सहायता से एक मानवयुक्त यान पृथ्वी के ऊपर भ्रमण-कक्षा में प्रेषित किया गया। इस यान में तीन यात्री थे—नील आर्मस्ट्रांग, एडविन एल्ड्रिन एवं माइकेल कोलिन्स। यान को कक्षा में पहुँचाने तथा भू-गुरुत्वाकर्षण के पाश से मुक्त कर वहाँ से पुनः उसे चन्द्रमा की ओर धकेलने का अपना निर्धारित कार्य पूरा करके 'सैटर्न–५' तो जुदा होकर पृथ्वी के वायुमंडल में छिन्न-भिन्न हो गया। पर इससे पहले चन्द्रयान को इतना संवेग वह प्रदान कर चुका था कि कई हजार मील प्रति घंटा की गति से बढ़ते हुए लगभग चार दिनों में उक्त यान चन्द्रमा के समीप पहुँच गया और एक कृत्रिम उपग्रह की भाँति कक्षा में स्थापित हो, लगभग साठ मील की ऊँचाई पर, चाँद के गोले की परिक्रमा करने लगा !

तब कार्यक्रम का दूसरा चरण आरंभ हुआ, जिसके अधीन आर्मस्ट्रांग और एल्ड्रिन (जिन्हें चन्द्रपृष्ठ पर उतरने के लिए चुना गया था) मुख्य यान के साथ संलग्न एक उपयान में स्थानान्तरित हो गए और वह उपयान निर्धारित समय पर प्रमुख यान से पृथक् होकर एक स्वतंत्र भ्रमण-कक्षा में चन्द्र-गगनमंडल में मंडराने लगा। 'ईगल' के नाम से अभिहित, एक उड़न-खटोले जैसा यह उपयान चन्द्र-धरातल पर उतरने तथा वहाँ से वापस मुख्य यान तक आने के लिए आवश्यक सभी उपकरणों से लैस था।

अवतरण की गूढ़ प्रक्रिया की संपूर्ति करके अंततः मानव चन्द्रमा पर जा खड़ा हुआ !

और, लो तब वह ऐतिहासिक क्षण भी सन्मुख आ उपस्थित हुआ, जबकि 'ईगल' ने अपने वेग-नियंत्रक रेट्रो-इंजिनों को चालू करके, एक बड़े-से टिड्डे की भाँति आसमान में पैरते हुए, चन्द्रपृष्ठ की ओर उतरना शुरू किया तथा उत्तरोत्तर गति को धीमी करते-करते अंततः 'सी ऑफ ट्रांक्विलिटी' (अर्थात् 'शान्त सागर') नामक तथाकथित चन्द्रक्षेत्र की समतल भूमि पर उसने अपने पैर जमा दिए ! यद्यपि कहने को यह समूची अवतरण-क्रिया मानो चुटकी बजाते पूरी हो गई, परन्तु वास्तव में वह इतनी आसान करतूत नहीं थी। क्योंकि एक तो चन्द्रमा का अपना कोई वायुमंडल नहीं है, जिसमें पक्षी की तरह कोई विमान आदि उड़ सके। साथ ही, वैज्ञानिकों को तब तक इस बात का भी पक्का भरोसा नहीं था कि चन्द्रपृष्ठ पर मानव के उतरते समय वहाँ किस प्रकार की सतह मिलेगी ! उन्हें भय था कि कहीं वहाँ धूलि या बालू की ऐसी तह न जमी हो, जिस पर जा लगते ही यान उसमें अपने वजन के मारे संपूर्णतया धँस जाय ! फिर, चन्द्रमा के निज गुरुत्वाकर्षण की भिन्नता एवं स्थानीय तापमान, चुंबकीय गतिविधि, सौर रश्मियों के विकिरण आदि, आदि संबंधी विविध समस्याओं का भी बखेड़ा सामने था ! इनका अब तक दूर से ही अध्ययन किया जाता रहा था और प्रत्यक्ष साक्षात्कार के क्षण में कोई नई अड़चन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

या बाधा उनके कारण उठ खड़ी होना सर्वथा संभव था ! साथ ही, उपयान की स्वयंचालक यंत्र-प्रणाली, चन्द्रमा के उस अनजान वायुरहित शून्य क्षेत्र में पहुँचकर, वास्तव में, किस प्रकार से निबटेगी, इसकी शत-प्रतिशत हूबहू जाँच पृथ्वी पर प्रयोग द्वारा कर पाना संभव न होने के कारण, यह खतरा भी निरंतर सामने बना हुआ था कि कहीं ऐन मौके पर कोई उपकरण बोल न जाय और समूचा पूर्व-निर्धारित कार्यक्रम गड़बड़ा जाय !

और, कुछ क्षणों के लिए सचमुच ही ऐसा हुआ भी, जब की सतह से लगभग तीस-बत्तीस हजार फीट की दूरी शेष रहते-रहते एकाएक तेजी से नीचे उतरते हुए 'ईगल' के यंत्रपटल पर खतरे की लाल बत्ती दमक उठी, जिससे न केवल दोनों चन्द्रयात्री ही, अपितु पृथ्वी पर स्थित नियंत्रण-केन्द्र के निदेशक भी (जोकि रेडियो-संचार-व्यवस्था द्वारा यान से अनवरत संपर्क बनाए हुए थे) चिन्तित होकर चौकन्ने हो उठे ! बात यह हुई थी कि उपयान के 'कम्प्यूटर' वेगपूर्वक बदलती जा रही परिस्थिति के अनुरूप त्वरित निर्णय लेने के अपने कर्त्तव्य में किसी कारणवश पिछड़ जा रहे थे और फलतः 'ईगल' के लिए यह खतरा प्रस्तुत हो गया था कि वह 'सी ऑफ ट्रांक्विलिटी' के निर्धारित अवतरण-क्षेत्र से बिचककर अन्य किसी ऊबड़-खाबड़ क्षेत्र में जा उतरे, जो कि निरापद न हो और जहाँ की चट्टानों से टकराकर वह संभवतः तहसनहस ही हो जाय।

परन्तु वाह रे मनुष्य का अदम्य साहस तथा संकट के क्षण में त्वरित निर्णय लेकर नवीन स्थिति से तड़ाक-पड़ाक निबटने पर उतारू हो जाने की उसकी क्षमता कि 'ईगल' के युगल चन्द्रयात्रियों ने तत्काल ही इस खतरे का सामना करने का विकल्प ढूंढ लिया और स्वयंचालक यंत्रों के पथनिर्दर्शन से किनारा कसकर स्वयं अपने हाथों से ही उपयान की गति नियंत्रित करते हुए अवतरण-क्रिया के सञ्चालन का संपूर्ण दायित्व ग्रहण कर लिया। इस प्रकार, पूर्वनिर्धारित अवतरण-स्थल के लगभग एकदम पास तथा समय की दृष्टि से भी कुछ ही सैकंड के अंतर से वे अपने उस उड़न-खटोले को चन्द्रपृष्ठ पर उतारने में शतशः सफलीभूत हुए।

यह सारी गूढ़ क्रिया, अपनी पेचीदगी के बावजूद, सौभाग्य से ऐसी सफाई के साथ 'ईगल' के बिना धचके के मृदुलता से चन्द्रपृष्ठ पर जा लगने के साथ संपन्न हुई कि युगों तक मानवीय बुद्धि-कौशल की एक अपूर्व उपलब्धि के तौर पर उसका कीर्तिगान किया जाता रहेगा।

'एक व्यक्ति का तो छोटा-सा कदम है यह, पर समस्त मानव-जाति की है यह लंबी छलांग !'

विज्ञान के इतिहास में, निश्चय ही, एक अपूर्व गौरव की घड़ी थी वह, जबकि एक ओर तो चन्द्रपृष्ठ पर अपनी लंबी टाँगे गड़ाए सीधे टटार खड़े बड़े-से टिड्डे जैसे उस विचित्र उपयान के पारदर्शी गवाक्षों में से पृथ्वीवासी चन्द्र-यात्रियों की वह युगल जोड़ी चकित-थकित हो चन्द्रलोक के उस निरभ्र काले आसमान के नीचे फैले अद्भुत दृश्य को पहले-पहल निहार रही थी। दूसरी ओर, उसी क्षण साठ मील की ऊँचाई पर मुख्य यान –'कोलंबिया'–में उनका तीसरा साथी (माइकेल कोलिन्स) उनके वापस लौटने की प्रतीक्षा में चांद की लगातार परिक्रमा लगा रहा था ! और तीसरे, अपनी विलक्षण संचार-व्यवस्था की बदौलत पृथ्वी के नियंत्रण-केन्द्र के वैज्ञानिक उसी घड़ी ढाई लाख मील की दूरी से क्षण-क्षण की उनकी गतिविधि का संपूर्ण लेखा-जोखा ले रहे थे !

अंत में वह ऐतिहासिक क्षण भी आ उपस्थित हुआ, जब कि 'ईगल' का द्वार खुला और उसमें से पनडुब्बे जैसी पोशाक पहने एक व्यक्ति ने बाहर आकर सावधानीपूर्वक उपयान से लगी हुई सीढ़ी से नीचे उतरना शुरू किया ! यह सौभाग्यशाली व्यक्ति था आर्मस्ट्रांग, जिसका नाम चन्द्रमा पर प्रथम कदम रखनेवाले गौरवशाली अन्तरिक्ष-यात्री के रूप में इतिहास में अजरामर हो गया है। सीढ़ी के अंतिम सोपान से पैर नीचे बढ़ाकर, जैसे ही उसने चन्द्र-पृष्ठ का स्पर्श किया और अपना पहला कदम आगे रक्खा, वैसे ही एक अनिर्वचनीय भावतरंग से वह मानो गद्गद हो उठा और आत्मविभोर हो उसके मुख से अपने आप ही ये चिरस्मरणीय शब्द निकल पड़े–**'एक व्यक्ति का तो छोटा-सा कदम है यह, पर समस्त मानव-जाति की है यह लंबी छलांग।'**

आर्मस्ट्रांग के अवतरण के बीस मिनिट बाद एल्ड्रिन भी यान से उसी तरह उतरकर चन्द्रमा की सतह पर आ खड़ा हुआ। ये युगल यात्री कुल २१ घण्टे ३७ मिनिट तक चाँद पर रहे थे और इस बीच काफी समय उन दोनों ने चन्द्रपृष्ठ पर चहलकदमी करते हुए बिताया था। उन्होंने संभल-संभलकर महीन बुकनीनुमा धूलि से आच्छादित चन्द्र-धरातल पर अपने कदम जब बढ़ाये, तो उनके पद-चिह्न इतने स्पष्ट उभर आए कि पृथ्वी पर से टेलिविजन द्वारा लाखों दर्शकों ने उन्हें बखूबी देखा। निश्चय ही,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन युगल चन्द्रयात्रियों ने अपने उन पदचिह्नों को अंकित कर विश्व-ब्रह्माण्ड के नए-नए परदे खोलने की दिशा में एक ऐसी नई स्वर्णमय पगडण्डी का निर्माण कर दिया है, जिसका अनुसरण करके भावी पीढ़ियाँ सचमुच ही माता वसुन्धरा की सन्तान के पद से ऊपर उठकर 'विश्व-मानव' कहलाने की अधिकारिणी हो सकेंगी।

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि 'ईगल' के चन्द्रपृष्ठ पर स्थापित होते ही, उसके युगल यात्री तत्काल बाहर आकर चन्द्रमा के धरातल पर नहीं खड़े हुए; प्रत्युत कुछ समयोपरान्त ही वे यान से निकल पाए। कारण, एक तो उन्हें इस बीच कुछ विश्राम कर लेने का आदेश दिया गया था, दूसरे ठोक-बजाकर अपने यंत्र उपकरणों की जाँच करने तथा पनडुब्बे जैसी अपनी विशिष्ट पोशाक को पहनने में भी उन्हें पर्याप्त समय लगा था। यह भी बता देना जरूरी है कि ये लोग इतनी जोखिम उठाकर यहाँ तक मात्र चन्द्रमा के दृश्य देखने ही नहीं आए थे—उन्हें कई एक वैज्ञानिक महत्व के कार्य भी संपन्न करने थे। इनमें वस्तुतः सबसे महत्वपूर्ण काम तो था चन्द्रमा की धूल-मिट्टी, कंकड़-पत्थर, चट्टानों के अंश तथा खनिज द्रव्यों के नमूने बटोरकर अपनी वापसी यात्रा में पृथ्वी तक लिवा लाने का महान् कार्य, जिसे बड़ी सावधानी और मुस्तैदी से पूरा किया गया। इसके अलावा, उन्होंने साथ में लाए गए अनेक विशिष्ट सूक्ष्मग्राही यंत्र-उपकरणों को भी चन्द्रपृष्ठ पर स्थापित किया, जिनमें सबसे उल्लेखनीय थे—एक भूकम्प-तरंगमापी 'सिस्मोग्राफ', सूर्य-रश्मियों के कणों को बटोरने वाली एक विशिष्ट स्क्रीन, पृथ्वी से प्रेषित लेजर-रश्मि-बिंब को ग्रहण करने वाली एक प्रकार की दर्पण - शृंखला एवं चन्द्रलोक की झाँकियों के फोटो-चित्र पृथ्वी तक प्रेषित करने में सक्षम एक शक्तिशाली टेलीविजन - कैमरा ! ये सभी यंत्र यात्रा की समाप्ति पर चन्द्रपृष्ठ पर ही छोड़ दिए गए थे !

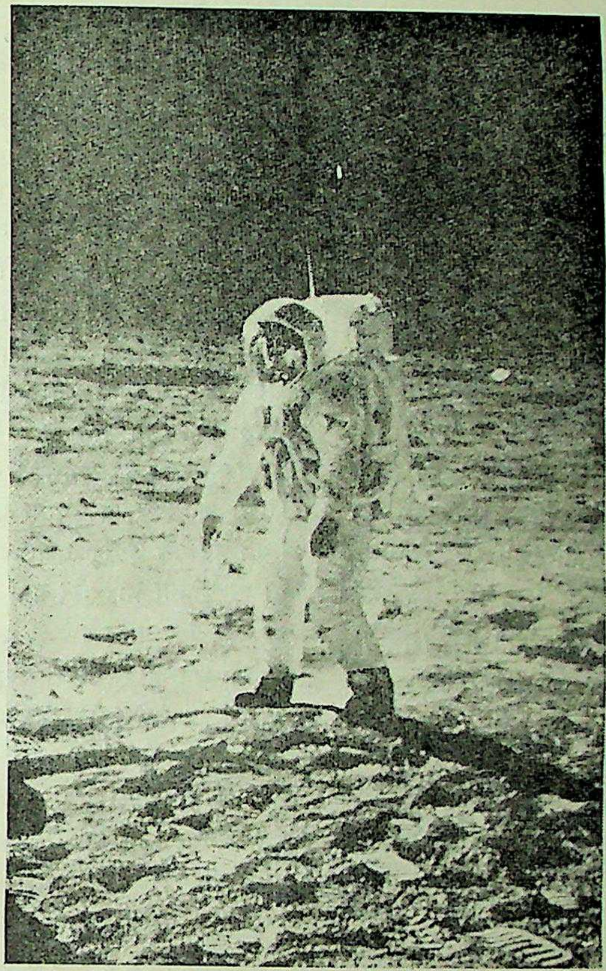

चन्द्रपृष्ठ पर मानव के प्रारम्भिक पदचिह्न

इस फोटो में 'अपोलो–११' के युगल चन्द्रयात्रियों में से एक चन्द्रमा के धरातल पर चलते हुए दिग्दर्शित हैं।

उपर्युक्त यंत्र-उपकरणों को उपयुक्त स्थलों पर स्थापित करने के साथ-साथ, दोनों व्यक्तियों ने 'ईगल' से काफी दूरी तक चन्द्रपृष्ठ पर पदयात्राएं करके वहाँ के ठंडे पड़ चुके ज्वालामुखों जैसे गड्ढों, चट्टानों के कोर-कगारों, कंकड़-पत्थरों आदि का पर्यवेक्षण भी किया तथा चन्द्रलोक की झाँकियों के अनगिनत फोटो-चित्र भी लिए। यही नहीं, अपने विस्तृत कार्यक्रम के अधीन, उन्होंने एक विशिष्ट यंत्र द्वारा सतह को भेदकर चन्द्रपृष्ठ की भीतरी खनिज-सामग्री के नमूने भी प्राप्त किए। साथ ही, चन्द्रमा पर निज देश का झंडा भी फहराया तथा एक स्मारक अभिलेख-पट्टी भी वहाँ स्थापित की जिस पर तीनों अन्तरिक्ष-यात्रियों के हस्ताक्षर सहित निम्न स्मृति-वाक्य अंकित थे—**'यहाँ १९६९ ई० के जुलाई मास में पृथ्वी ग्रह से आकर मनुष्य ने चन्द्रमा पर अपना पहला कदम रक्खा ! हम यहाँ शांति के लिए आए!'**

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अंत में, वह जोखिम से भरा कार्यक्रम भी सफाई के साथ निर्विघ्नतापूर्वक पूरा हुआ, जबकि 'ईगल' (इंजिनों के चालू होते ही) बिना विघ्न-बाधा के सरसराता हुआ चन्द्रपृष्ठ से ऊपर उठ गया एवं (निर्धारित विधि से कक्षा में स्थापित हो) इंतजार कर रहे मुख्ययान 'कोलंबिया' से जा मिला, जिसमें कि तृतीय अन्तरिक्ष-यात्री कोलिन्स इस अवधि भर चाँद का चक्कर काटता रहा था। इसके बाद की पृथ्वी तक की वापसी यात्रा तो और अधिक आसानी से बेखटके पूरी हो गई, क्योंकि एक तो यान अपने समस्त अनावश्यक सामान से छुटकारा पाकर (यहाँ तक कि 'ईगल' को भी निज कार्य पूरा होने पर चन्द्रपृष्ठ पर गिराकर) अब बहुत-कुछ हल्का हो चुका था। दूसरे पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण-शक्ति का बल भी वापसी में यान को मदद दे रहा था। इस प्रकार आठ दिन पूर्व धरती से अपनी रवानगी के १९५ घंटे १८ मिनट बाद, 'अपोलो–११' के तीनों यात्री निज यान को विधिवत् प्रशान्त महासागर में सही सलामत उतारकर पृथ्वी पर वापस लौट आए।

अपोलो-चन्द्र-अभियान-शृंखला की अन्य सफलताएँ: मनुष्य पुनः कई बार चन्द्रपृष्ठ पर उतरा !

संयुक्त राज्य (अमेरिका) द्वारा नियोजित चन्द्रलोक की यात्रा का वृहत् अनुष्ठान उपर्युक्त 'अपोलो–११' की सफलता के साथ ही समाप्त नहीं हो गया, अपितु इसके बाद भी इस शृंखला में छः और चन्द्र-अभियान आयोजित हुए। इनमें केवल 'अपोलो–१३' को छोड़कर शेष सभी ने उत्तरोत्तर अधिक सफलता प्राप्त की। संक्षेप में, इन अभियानों का विवरण इस प्रकार है:—

अपोलो–१२ (नवम्बर, १९६९ ई०)—इस अभियान में कानरेड और डीन ये दो यात्री ३१ घंटे ३२ मिनट तक चन्द्रपृष्ठ पर रहे।

अपोलो–१३ (अप्रैल, १९७० ई०)—यान की ऑक्सिजन-टंकी के विस्फोट के कारण अभियान विफल हो गया! पर यात्री सुरक्षित वापस आ गए।

अपोलो–१४ (जनवरी-फरवरी, १९७१ ई०)—शेपर्ड और मिशेल ने ३३ घंटे ३१ मिनट तक चन्द्रमा पर रहकर वहाँ के पर्वतीय क्षेत्र का पर्यवेक्षण किया।

अपोलो–१५ (जुलाई-अगस्त, १९७१ ई०)—स्कॉट और अरविन इन दो यात्रियों ने एक विशिष्ट गाड़ी को पहले-पहल चन्द्रपृष्ठ पर उतारकर उसमें दूर तक की सैर की। ये ६६ घंटा ५५ मिनट वहाँ रहे।

अपोलो–१६ (अप्रैल, १९७२ ई०)—यंग और ड्यूक नामक युगल यात्रियों ने ७१ घंटे चन्द्रमा पर बिताए।

अपोलो १७ (दिसम्बर, १९७२ ई०)—इस अंतिम अभियान में सेर्नान एवं स्मिथ नामक यात्री-जोड़ी ने ७५ घंटे तक पुनः एक गाड़ी में कई मीलों की चन्द्रपृष्ठ की सैर की। ये लोग २४९ पौंड खनिज द्रव्य और मिट्टी-पत्थर चन्द्रमा से अपने साथ पृथ्वी तक लाए!

चन्द्रलोक के इन सफल अभियानों के फलस्वरूप जहाँ चन्द्रमा के विषय में वैज्ञानिकों की अनेकानेक प्रस्थापनाएँ शतशः सही सिद्ध हुई हैं (जैसे कि चन्द्रमा पर वायु, जल, जीव-जन्तु, पेड़-पौधे आदि का सर्वथा अभाव होना), वहाँ उसके खनिजों की प्रत्यक्ष जाँच-परख से अब इस बात में संदेह किया जाने लगा है कि पृथ्वी का यह उपग्रह कभी माता वसुन्धरा के ही गर्भ से पैदा हुआ था। वस्तुतः पृथ्वी के खनिज पदार्थों से चन्द्रमा के खनिजों की विभिन्नता को देखते हुए अब अधिक संभावना यही मानी जा रही है कि या तो चन्द्रमा भी सौर ग्रहों की उत्पत्ति के समय साथ ही साथ पैदा हुआ एक स्वतंत्र पिण्ड है, जो कि पृथ्वी के जुड़वाँ भाई-सा है, अथवा वह ऐसा आकाशीय पिण्ड है, जो कि पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण-पाश में बँधकर उसका उपग्रह बन गया है। इसी तरह चन्द्रमा का अदृष्ट छिपा हुआ पृष्ठ भी अब हमारे लिए रहस्य की वस्तु नहीं रह गया है। कारण, उसके फोटो-चित्र अमेरिका और रूस दोनों ही के द्वारा राकेटयानों द्वारा कई बार लिए जा चुके हैं। उनसे ज्ञात हुआ है कि चन्द्रमा का छिपा हुआ पृष्ठ भी दिखाई दे रहे पृष्ठ जैसा ही है।

[यहाँ यह बता देना अप्रासंगिक न होगा कि मनुष्य चन्द्रमा पर योंही एकाएक नहीं पहुँच गया। प्रत्युत उसकी इस युग-प्रवर्तक सिद्धि एवं सफलता के पीछे वस्तुतः अन्तरिक्ष पर विजय प्राप्त करने के पिछले अनेक वर्षों के उसके सतत प्रयासों की एक लम्बी शृंखला की पृष्ठभूमि फैली हुई है, जिसके निर्माण में सोवियत रूस और संयुक्त राज्य (अमेरिका) दोनों का ही गौरवपूर्ण हाथ रहा है। यह स्मरणीय है कि सोवियत रूस ने ही ४ अक्टोबर, १९५७ ई०, को प्रथम कृत्रिम उपग्रह ('स्पुतनिक प्रथम') अन्तरिक्ष की भ्रमण-कक्षा में स्थापित किया था तथा उसी ने चन्द्रमा पर पहला मानवरहित रॉकेट भी उतारा था एवं छिपे हुए चन्द्रपृष्ठ का प्रथम बार फोटो लिया था! इसी प्रकार से (गैगेरिन के रूप में) पहले-पहल मानव को अन्तरिक्ष में भेजने का भी श्रेय रूस को ही है।—सं०]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh